अतीत और परंपरा

षष्ठ श्रेणी

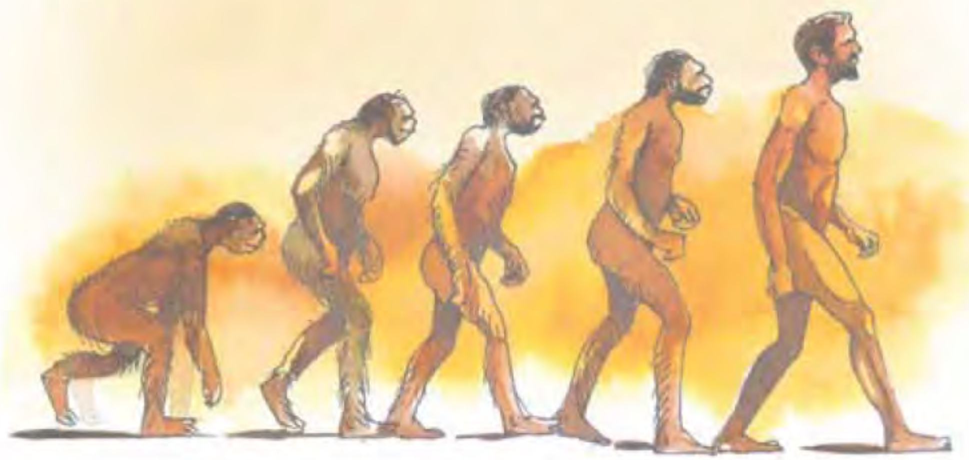

पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

संस्करण

दिसम्बर, २०१३

द्वितीय संस्करण

दिसम्बर, २०१४

पुस्तक–अधिकार

पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

प्रकाशक

प्राध्यापिका नवनीता चटर्जी
सचिव, पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद
७७/२, पार्क स्ट्रीट, कोलकाता – ७०००१६

मुद्रक

वेस्ट बेंगल टेक्सबुक कारपोरेशन
(पश्चिमबंग सरकार का उपक्रम)
कोलकाता – ७०००५६

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान

प्रस्तावना

हम, भारत के लोग, भारत के एक संपूर्णप्रभुत्वसंपन्न धर्मनिरपेक्ष समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय— सामाजिक, आर्थिक और —राजनीतिक, स्वतंत्रता, विचार की अभिव्यक्ति की विश्वास, की धर्म एवं पूजा की समानता- प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में, भ्रातृत्व- जिसमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित रहे का वर्धन करने के लिए इस संविधान सभा में आज २६ नवम्बर १९४९ को इसके द्वारा इस संविधान को स्वीकार करते है, कानून का रूप देते हैं और अपने-आप को इस संविधान को अर्पण करते है।

THE CONSTITUTION OF INDIA

PREAMBLE

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens : JUSTICE, social, econnomic and political; LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship; EQUALITY of status and of opportunity and to promote among them all – FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the Nation; IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November 1949, do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

भूमिका

'परिवेश एवं इतिहास' के अन्तर्गत षष्ठ श्रेणी की पाठ्य-पुस्तक 'अतीत और परंपरा' प्रकाशित हुई। इतिहास विषय के विद्यार्थियों की जिज्ञासा बढ़ाने के लिए 'अतीत और परंपरा' पुस्तक में धीरे-धीरे अतीत विषयक विभिन्न विचारों को प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा २००५ एवं शिक्षा अधिकार कानून २००९ इन दोनों को ध्यान में रखकर अनोखी परिकल्पना की गई है। वर्ष २०११ में पश्चिम बंगाल सरकार के नेतृत्व में गठित एक 'विशेषज्ञ समिति' को विद्यालय स्तर पाठ्यक्रम का पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा एवं पुनर्विवेचन का दायित्व दिया गया। उनके अथक प्रयत्न एवं श्रम से पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची के अनुसार 'अतीत और परंपरा' पुस्तक को तैयार करना सम्भव हो सका है।

इस पुस्तक में विभिन्न प्रमाणों के अनुरूप चित्र एवं मानचित्र प्रत्येक अध्याय में दिया गया है। इस माध्यम से विद्यार्थी अतीत और परंपरा के सम्बंध में स्पष्ट विचारधारा बनाने में सक्षम हो सकेंगे। दूसरी तरफ पूरी पुस्तक में आकर्षणीय पद्धति से विभिन्न सरणियों का प्रयोग किया गया है। आशा करता हूँ कि नवीन पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों को समृद्ध करेगा।

विभिन्न शिक्षाविद, शिक्षक-शिक्षिका, विषय विशेषज्ञ एवं अलंकरण के लिए प्रसिद्ध कलाकार- जिनके निरंतर श्रम एवं अथक प्रयास से इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को तैयार करना सम्भव हो सका। उन सभी को मेरा आंतरिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता।

पश्चिम बंगाल सरकार प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर समस्त विषयों की पुस्तक छापकर छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क वितरण करती है। इस योजना के कार्यान्वयन में पश्चिम बंगाल सरकार का शिक्षा विभाग, पश्चिमबंग शिक्षा अधिकार एवं पश्चिमबंग सर्वशिक्षा मिशन ने विभिन्न प्रकार से सहायता की है। इनकी भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

'अतीत और परंपरा' पुस्तक की उत्कृष्टता के लिए सबके विचार एवं परामर्श का आह्वान करते है।

कल्याणमय गांगुली
प्रशासक
पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

जुलाई, २०१४
७७/२, पार्क स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ०१६

प्राक्कथन

पश्चिम बंगाल की माननीया मुख्यमंत्री सुश्री ममता बंदोपाध्याय ने २०११ में विद्यालय की शिक्षा के लिए एक 'विशेषज्ञ समिति' का गठन किया। इस विशेषज्ञ समिति को यह दायित्व दिया गया कि विद्यालय स्तर के समस्त पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तक की पुनः आलोचना पुनर्विवेचना एवं पुनर्विन्यास प्रक्रिया को संचालित करे। उस समिति की सिफारिश के अनुसार नवीन पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तक तैयार किया गया है। इस पूरी प्रक्रिया में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा २००५, शिक्षा अधिकार नियम २००९ (RTE Act, 2009) इन दोनों को ध्यान में रखा गया है। इसके साथ ही समग्र परिकल्पना में रवीन्द्रनाथ टाकुर के शिक्षा दर्शन की रूपरेखा को आधार के रूप में ग्रहण किया है।

उच्च माध्यमिक स्तर की इतिहास पुस्तक का नाम 'अतीत और परंपरा' है। नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार इस पुस्तक में परिवेश और इतिहास को शामिल किया गया है। षष्ठ श्रेणी में अलग विषय के रूप में इतिहास के साथ विद्यार्थी परिचित होंगे। इस पुस्तक में आख्यानमूलक विवरण के माध्यम से कहानी के रूप में समय विशेष की घटनाओं को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ यह ध्यान दिया गया है कि तथ्यों के अतिरिक्त भरमार विद्यार्थी को बोझिल न करें तो दूसरी तरफ अत्यधिक सरल करने के प्रयास में इतिहास की आवश्यक चीजे उनके सामने अस्पष्ट न रह जाए। उस विशेष स्थान और समय में समाज, राजनीति, धर्म. संस्कृति, जीवन-यापन का ढंग मूर्त्त रूप से उनके सामने स्पष्ट हो जाये। इतिहास की मूल धारणा के निर्माण में इस पाठ्य पुस्तक पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रासंगिक विषय-घटना की पुनः आलोचना के माध्यम से विद्यार्थी इतिहास पर जीवंत एवं अर्थपरक ढंग से विचार करना सीखेंगे? कुछ प्रमाणित चित्रों एवं मानचित्रों का इसीलिए इस पुस्तक में समावेश किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अंत में प्रश्नावली दिया गया है। जैसे :- सोचकर देखो, ढूढ़कर देखो। इसके माध्यम से अपने तथा अपने-अपने अनुभव के आधार पर विद्यार्थी इतिहास पर अनेक तरह के विचार प्रस्तुत कर सकेंगे। पुस्तक के अंत में 'सीखने की पद्धति' के जरिए कक्षा कक्ष में पुस्तक के प्रयोग से सम्बंधित कुछ मूल्यांकन प्रस्ताव दिए गये है। निपुर्ण चित्रकार ने विभिन्न रंग-रेखाओं से पुस्तक को आकर्षणीय बनाया है। उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। आशा करते है कि नवीन दृष्टियों से निर्मित यह पाठ्य-पुस्तक इतिहास जानने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी।

चयनित शिक्षाविद, शिक्षक-शिक्षिका एवं विषय-विशेषज्ञों ने अल्प समय में इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पश्चिम बंगाल के माध्यमिक शिक्षा-व्यवस्था के विद्वत लोगों ने पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद के पाठ्य-पुस्तक का अनुमोदन कर हमें कृतज्ञ किया है। समय-समय पर पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद, पश्चिम बंगाल सरकार का शिक्षा विभाग, पश्चिम बंगाल सर्वशिक्षा अभियान एवं पश्चिम बंगाल शिक्षा अधिकार ने जो सहायता प्रदान किया है, उन्हें भी धन्यवाद देना चाहूँगा।

पश्चिम बंगाल के माननीय शिक्षा मंत्री डॉ. पार्थ चटर्जी ने आवश्यक विचार एवं परामर्श देकर हमें कृतज्ञ किया है। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते है।

पुस्तक की उत्कृष्टता के लिए शिक्षा अनुरागी लोगों के विचार-परामर्श हम सादर ग्रहण करेंगे।

जुलाई, २०१४
निवेदिता भवन, पंचम तल्ला
विधाननगर, कोलकाता - ७०००९१

अभीक मजूमदार
चेयरमैन
विशेषज्ञ समिति
विद्यालय शिक्षा विभाग,
पश्चिम बंगाल सरकार

विशेषज्ञ समिति द्वारा संचालित पाठ्य-पुस्तक निर्माण पर्षद

सदस्य

प्राध्यापक अभीक मजूमदार (चेयरमैन, विशेषज्ञ समिति)
प्राध्यापक रथीन्द्रनाथ दे (सदस्य सचिव, विशेषज्ञ समिति)

परिकल्पना, तत्वावधान तथा संपादन

शिरीन मासूद (प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

पांडुलिपि निर्माण एवं परिकल्पना, तत्वावधान तथा संपादन-सहायता

अनिर्वाण मण्डल
कौशिक साहा
प्रदीप कुमार बसाक
सत्य सौरभ जाना
संजय बड़ुआ
सुगत मित्र

पुस्तक-सज्जा

आवरण : सुब्रत माझी
अलंकरण : प्रणवेश माईति और सुब्रत माझी
मानचित्र निर्माण : हीराव्रत घोष
मुद्रण सहायता : अनुपम दत्त और विप्लव मण्डल

सूची पत्र

	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	**इतिहास की अवधारणा**	२
२.	**भारतीय उपमहादेश के आदिमानव** यायावरी जीवन से स्थायी बस्ती की स्थापना	१६
३.	**भारतीय उपमहादेश के प्राचीन इतिहास की धारा** प्रथम पर्याय : लगभग ईसा पूर्व ७००–१५०० तक	२८
४.	**भारतीय उपमहादेश के प्राचीन इतिहास की धारा** द्वितीय पर्याय : लगभग ईसा पूर्व १५००–१६०० तक	४४
५.	**ईसा पूर्व शताब्दी के भारतीय उपमहादेश** राष्ट्र व्यवस्था और धर्म का विवर्तन – उत्तर भारत	६४
६.	**साम्राज्य विस्तार और शासन** अनुमानिक : ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से ईसा के साँतवी शताब्दी तक	७८
७.	**अर्थनीति और जीवन यात्रा** अनुमानिक : ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से ईसा के सप्तम शताब्दी का प्रथम भाग	९८
८.	**प्राचीन भारतीय उपमहादेश के संस्कृति चर्चा के विभिन्न पहलू** शिक्षा, साहित्य, विज्ञान और शिल्प	११०
९.	**भारत और समकालीन वहिर्विश्व** ईसा के बाद सप्तम शताब्दी के प्रथम भाग तक	१३२

आपका पन्ना

सीखने की पद्धति

१ इतिहास की अवधारणा

वर्ष के आरम्भ में एक नयी किताब, वह भी इतिहास की। अधिकांश लोग यह समझते है कि इतिहास को कुछ ज्यादा ही पढ़ना होगा। असंख्य नाम, साल–दिनांक को याद रखना होगा। लेकिन कहानी की तरह इसे आसानी से पढ़ा जा सकता है ? अगर उसमें विभिन्न चित्र, आकर्षक एवं अज्ञात बातें हो तो। तब तो मनोरंजक ढंग से इतिहास की किताब पढ़ी जा सकती है। इतिहास शब्द की एक पुरानी अवधारणा है बीते हुए दिनों की बातें और बीते हुए दिनों की बातों को सुनना आपलोग निश्चय ही पसंद करते होंगे। चलिए प्रयास किया जाए कि कहानी की तरह आनन्द की प्राप्ति होती है कि नहीं, इतिहास को पढ़कर।

कक्षा ५ में 'हमारा परिवेश' पुस्तक में रुबी के दादाजी की बातें अवश्य ही सबको याद होगा। दादाजी ने एक दिन रुबी के सभी दोस्तों को अपने घर पर बुलाया। शाम के समय सभी समूहबद्ध होकर दादाजी के पास गए। कहानी के बीच में ही दादाजी उठकर तीन वस्तुओं को लेकर आए। एक पत्थर का सीललोड़ा, दूसरा लोहे का ओखली और तीसरा एक मशीन। पलाश ने जानना चाहा कि यह मशीन किस कार्य में लगता है। दादाजी ने कहा इससे भी मसाले पीसे जा सकते हैं। यह बिजली (विद्युत) से चलती है। इसे मिक्सर मशीन कहा जाता है। रिया बोली, इसे तो पहले मैंने कभी भी नहीं देखी। दादाजी ने कहा, हमलोग भी अपने बचपन में इस मशीन को नहीं देखा। केवल सीललोड़ा और ओखली देखा था। उस समय निश्चित तौर पर लोहे की ओखली था।

१.१ कब, क्यों, कैसे, कहाँ ?

कक्षा में एकदिन पत्थर और धातु व्यवहार के बारे में बातचीत हो रही थी। उस समय सलाम ने रूबी के दादाजी की बातों को शिक्षिका को बतलाया। इसे सुनकर शिक्षिका ने ब्लैक बोर्ड पर सीललोड़ा, ओखली और मिक्सर मशीन का चित्र बनाने को कहा और पृथा ने इन चित्रों को बनायी। शिक्षिका ने इसके पश्चात् तन्मय को बुलायी। उससे पूछी कि बताओ तो इन तीनों में से किसका व्यवहार करना मनुष्य ने सबसे पहले सीखा ? तन्मय ने तुरंत कहा, सीललोड़ा का व्यवहार। क्योंकि पत्थर का प्रयोग करना मनुष्य ने सबसे पहले सीखा। शिक्षिका ने कहा, उसके बाद किसका ? सलाम बोला, धातु के पत्थर के बाद मनुष्य ने धातु का व्यवहार सीखा। लेकिन दादाजी ने कहा था कि पहले पत्थर के ओखली का प्रयोग भी होता था। शिक्षिका ने कहा, उन्होंने ठीक ही कहा है। बहुत पहले मनुष्य पत्थर की ओखली का प्रयोग करना जानते थे। लेकिन आज भी पत्थर की ओखली का प्रयोग किया जाता है। पृथा बोली, तो मिक्सर मशीन सबसे अंत में आया है। क्योंकि बिजली (विद्युत) का व्यवहार करना मनुष्य ने बाद में सीखा है। शिक्षिका बोली, यही तो इतिहास की कहानी बनाने की बातें है। कौन पहले, कौन बाद में। मतलब समय अनुसार कौन पहले आया है, उसे जानना। मनुष्य, घटना और वस्तु – वह सब कब आया ? इसके साथ तुमलोगों ने एक और काम किया है। क्योंकि यह तीनों वस्तु पहले-बाद में आया है, उसके कारण को भी बताएं। पहले-बाद में आने का कारण, मतलब क्योंकि पहले-बाद में, इसे जानना होगा। इतिहास की कहानी के अगले चरण में यही है। अरुण ने कहा, इसके बाद क्या है ? शिक्षिका ने कहा, अब प्रश्न करना होगा, यह कैसे हुआ ? मतलब, कैसे मनुष्य पत्थर के सीललोड़ा का प्रयोग करना सीखा। फिर किस तरह धातु के ओखली को बना पाया ? इसके साथ यह भी जानना होगा कि यह सब कार्य कहाँ हुआ। क्योंकि, एक स्थान पर मनुष्य एक समय एक ही प्रकार का कार्य करता था। वही दूसरे स्थान पर दूसरे लोग एक ही समय में दूसरे प्रकार का कार्य करते थे। इसलिए कब, क्यों, कैसे, कहाँ से ही इतिहास की कहानी शुरु हाती है।

पुराने दिनों की बातें

श्यामल ने एक कहानी की पुस्तक में पढ़ा था कि बहुत दिन पहले वहाँ पर जंगल नहीं था। एक सुन्दर घर था। श्यामल को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि पुराने दिनों की बात को कैसे जाना जाए ? इतिहास की कक्षा और शिक्षिका से वह वही जानना चाहा। शिक्षिका ने कहा, पुराने दिनों की सभी बातों को नहीं जाना जा सकता है। बीते दिनों की बातों को पढ़कर एवं चित्रों को देखकर कुछ बातों को जाना जा सकता है। व्यस्क व्यक्तियों की बातें सुनकर भी कुछ जाना जा सकता है। लेकिन यदि काफी पुरानी दिनों की बातें हो तो ? उस समय की कोई चित्र या लिखावट नहीं हो तो ? उस समय के कोई मनुष्य अब जीवित भी नहीं है। उन सब बातों को इतिहास की पुस्तक को पढ़कर जाना जा सकता है। फिर कहानी में भी काफी पुरानी दिनों की बातें लिखी जा सकती है। लेकिन याद रखना होगा कि कहानी की पुस्तक में लिखी हुई पुराने (बीते) दिनों की सारी बातें इतिहास नहीं है। जैसे कि आपलोग रूपकथा की कहानी डैनावाला पक्षीराज घोड़ा की कहानी पढ़ते हो। लेकिन घोड़ा बहुत पहले तक नहीं था। वह तो मानव मन की कल्पना है। इतिहास की बातें मनगढ़त थी काल्पनिक नहीं होती है। इसलिए बीतों दिनों की जो सभी बातें कहानी में रहती है, वास्तव में वह इतिहास नहीं है। उदाहरण के तौर पर आदिमानव डैनावाला घोड़े पर सवार होकर इधर-उधर उड़ते रहते थें। इस तरह की बातें किसी भी इतिहास की पुस्तक में लिखी हुई नहीं मिल सकती है। इसलिए इतिहास की बातें कहानी जैसा होने के बावजूद सत्य है।

१.२ इतिहास की बातें, लोगों की बातें

फिर एकदिन शाम के समय सभी मिलकर रूबी के दादाजी के पास गए। दादाजी को कहा कि शिक्षिका ने कहानी और इतिहास को लेकर क्या जानते है कहा। दादाजी ने कहा, तभी तो कहानी की पुस्तक में केवल बीते हुए दिनों के बारें में कहा गया है। वह बातें कब की है यह सठीक तौर पर नहीं बताया जाता है। लेकिन इतिहास की पुस्तक में किसी समय का उल्लेख रहता है।

अरूण ने कहा, अच्छा दादाजी, आप बताइएं तो इतिहास में केवल लोगों के ही बारें में क्यों कहा जाता है ? दादाजी ने कहा, मनुष्य के अलावा और कोई भी बीते हुए बातों के बारें में नहीं जानना चाहता है। बाघ-सिंह, गाय-बकरी के तो पिता माता एवं दादाजी का नाम भी कोई जानना नहीं चाहता हैं। लेकिन मनुष्य को यह सब जानने की जरुरत है। इसलिए मनुष्य को बीते हुए दिनों की बातों को जानना पड़ता है। बीते हुए दिनों की बातें ही इतिहास की बातें है। इसलिए इतिहास में अधिकांशतः लोगों की ही

कुछ बातें

नदी मातृक सभ्यता

बहुत पहले से ही मनुष्य नदी के किनारें रहना शुरु किया था। नदी द्वारा ही उनके रोजमर्रा का अधिकांश कार्य चलता था। पुराने दिनों की अनेक सभ्यता (सभ्यता किसे कहते है, यह तृतीय अध्याय में जानोगे) नदी के ऊपर निर्भर करके ही बना था। उन सभी सभ्यता के लिए नदी माता के समान थी। इसलिए उन सभी नदी को मातृक सभ्यता कहा जाता है। मातृक मतलब माता के समान। वहाँ के लोगों के कार्यो में नदी का महत्त्व सबसे ज्यादा था।

बातें रहती है। लेकिन उसके साथ परिवेश की भी बातें रहती है। मनुष्य किस तरह परिवेश के साथ तारतम्य बैठाकर जीवन-यापन करता है, यह सब बातें भी है। इसके साथ-साथ मनुष्य के विभिन्न कार्य अथवा क्रिया-कलाप की भी खोज खबर रहती है। किस तरह मनुष्य आग जलाना सीखा। किस तरह पोशाक पहनना सीखा। किस तरह चित्र बनाना, पढ़ना-लिखना सीखा। एकजुट अथवा समूह बनाकर रहना कैसे सीखा। किस तरह भोजन बनाना सीखा, घर बनाना, गाँव-शहर कैसे तैयार किया। नदी पर कैसे बाँध बनवाया। कैसे खेती-बारी की। गीत कैसे गाया, बांद्य यंत्र को कैसे बजाया। रॉकेट कैसे तैयार किया। उस समय के आदिमानव स्कूल नहीं जाते थे और आज आपलोग कितने कठिन गणित करते हो। कम्प्यूटर पर कार्य करते हो। यह सब कब ? क्यों ? कैसे हुआ ? यह सब बातें ही इतिहास की बातें है।

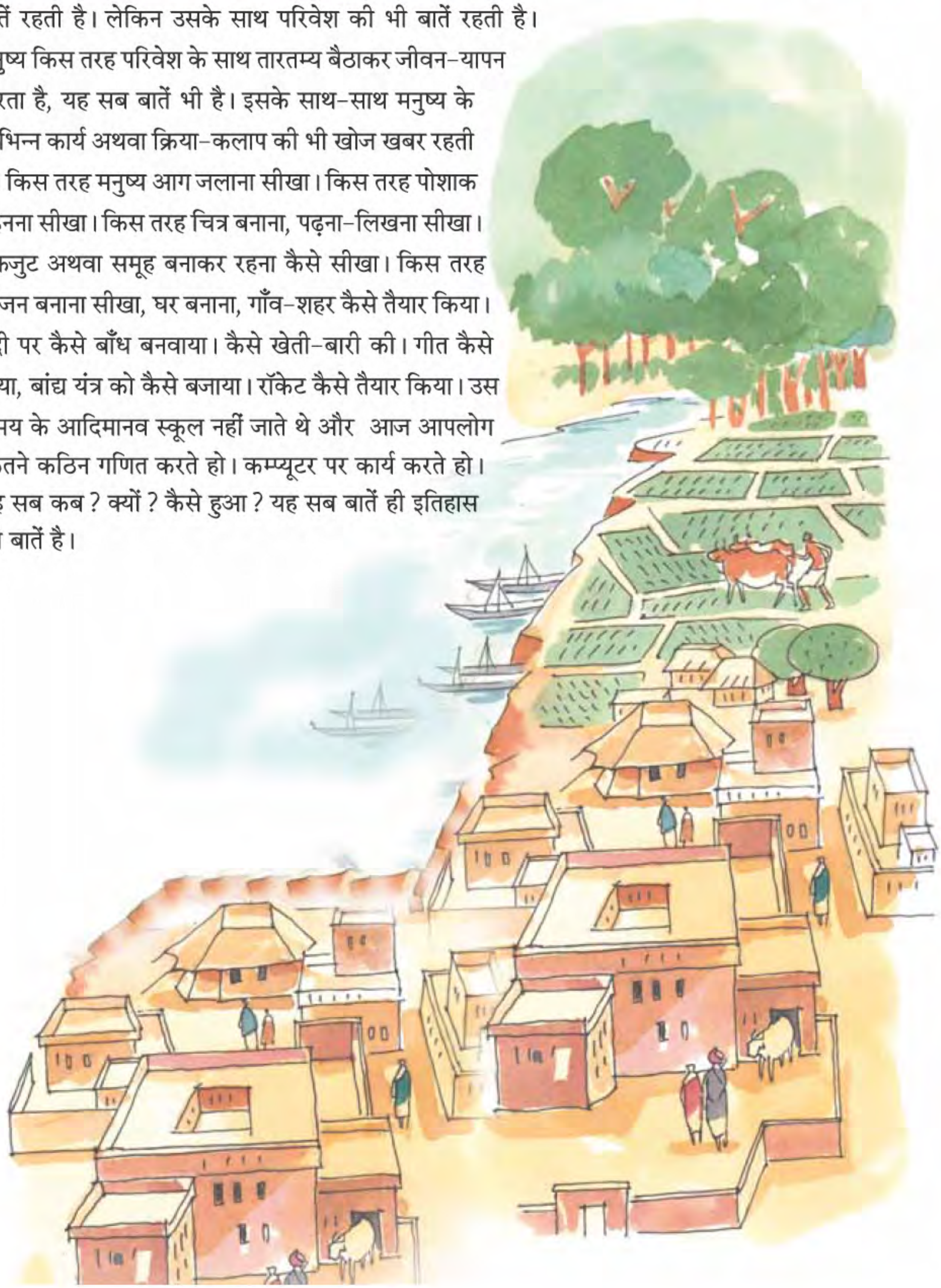

१.३ इतिहास और भूगोल

दूसरे दिन कक्षा में शिक्षिका ने कहा, इतिहास को समझने के लिए भूगोल जानना जरुरी है। इस बात को सभी सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। उनकी इतिहास और भूगोल की अलग-अलग पुस्तक है। अलग कक्षाएं होती है। इसके बावजूद शिक्षिका ने ऐसा क्यों बोली ? पृथा वह जानना चाहती थी। शिक्षिका ने कहा वास्तव में मनुष्य का क्रिया-कलाप ही तो इतिहास का विषय है। मनुष्य का बहुत सारा कार्य तो उसके परिवेश और भूगोल से ही ठीक होता है। उदाहरण के तौर पर, नदी के आस-पास जो लोग रहते है, वे एक तरह से जीवित रहते है, उनके रोजमर्रा के क्रिया-कलाप में नदी की भूमिका है। वही कुछ लोग मरूभूमि क्षेत्र में रहते है। उनके जीवन-यापन में नदी का महत्व अपेक्षाकृत कम है। मरूभूमि (रेगिस्तान) के अधिकांश लोग ऊँट पर सवार होकर यातायात करते है और जो नदी के किनारे रहते है, वे नौका द्वारा यातायात करते है। अब आपलोग सोचिए कि हमलोग नदी को पार करने के लिए नौका पर चढ़ते है तो वही मरूभूमि (राजस्थान) में ऊँट है। वहाँ के लोग मरूभूमि को पार करने के लिए ऊँट पर चढ़ते है। यह बहुत पहले से ही होता आ रहा है। इसलिए पश्चिम बंगाल के यातायात के इतिहास से ही नौका के बारें में जाना जाएगा। वही दूसरी ओर राजस्थान के इतिहास में ऊँट की बातें रहेगी। अब एक-एक स्थान के यातायात का इतिहास अलग क्यों हुआ ? कारण यह है कि दोनों का परिवेश और भूगोल अलग-अलग है। इसलिए एक-एक परिवेश एवं क्षेत्र का इतिहास अलग-अलग है। भोजन, पोशाक, यातायात, व्यापार-वाणिज्य एवं क्रिया-कलाप में काफी अंतर है। छोटी जगह हो या बड़ी जगह सभी जगह यह होगा। उदाहरण के तौर पर समतल क्षेत्र के लोग ज्यादा क्यों है ? राहुल ने कहा, समतल में धान की खेती चावल ज्यादा होती है, इसलिए। शिक्षिका ने कहा, एकदम ठीक। पलाश ने कहा, लेकिन मेरे चाचा तो राजस्थान में रहते है, वहाँ पर ज्यादा धान की भी खेती नहीं होती है। चाचा के घर में रोटी ही ज्यादा खाते हैं। शिक्षिका ने कहा, इसी तरह से ही मनुष्य की अधिकांश क्रिया-कलाप उसके परिवेश और भूगोल के अनुसार होता है। इसलिए इतिहास को समझने के लिए हमेशा भूगोल भी जानना जरुरी है। याद है न, इतिहास की कहानी में मूल दो बातें थी — क्यों और कहाँ ? यह क्यों और कहाँ जानने के लिए परिवेश और भूगोल जानना जरुरी है।

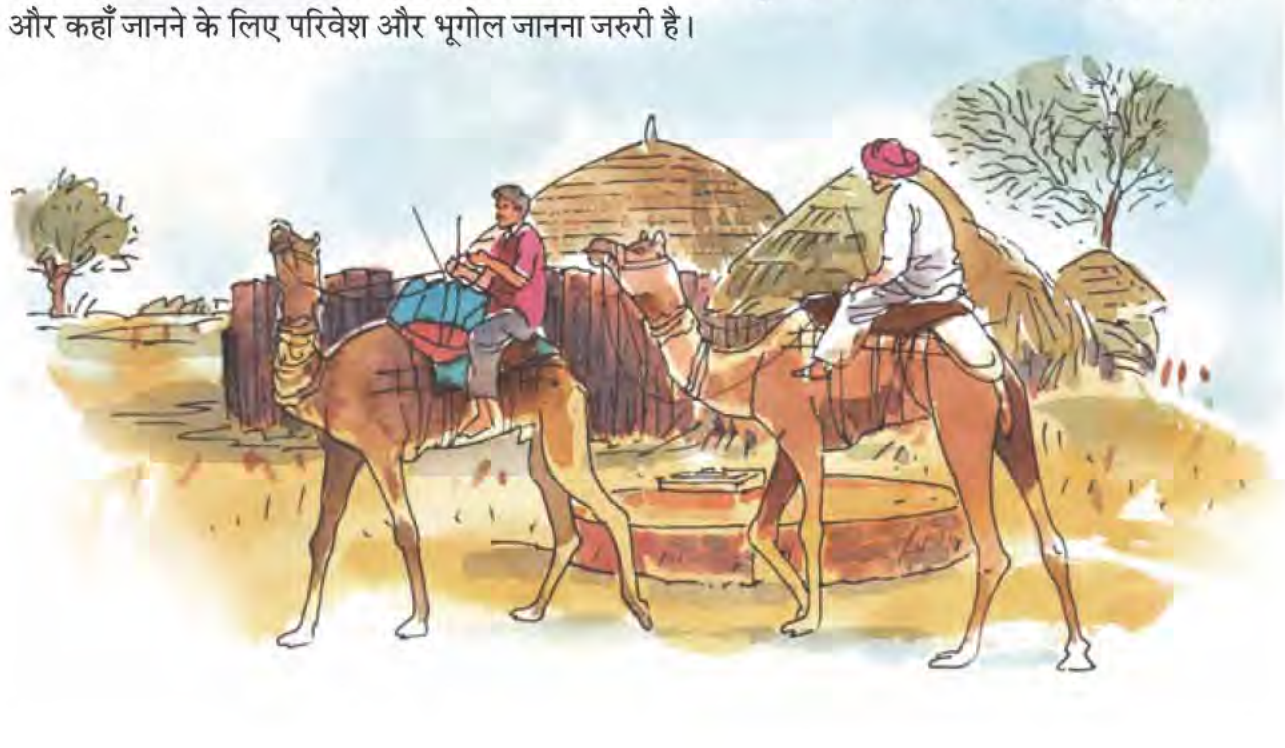

भारतीय उपमहादेश का भूगोल–इतिहास

शिक्षिका ने कहा, आप सभी ने भारत के मानचित्र को देखा है। लेकिन यह मानचित्र हमेशा एक ही तरह का नहीं था। बहुत समय पहले भारत का मानचित्र दूसरी तरह का था। विशाल इस अंचल (क्षेत्र) को एक साथ भारतीय उपमहादेश कहा जाता था। उपमहादेश यानी कि प्रायः एक महादेश जैसा ही बड़ा क्षेत्र। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के परिवेश और लोग। पहाड़, नदी, समुद्र, मरूभूमि (रेगिस्तान) सब मिलाकर उपमहादेश का परिवेश है। मनुष्य का भोजन, पोशाक, घर–द्वार विभिन्न प्रकार का है। यहीं विभिन्न प्रकार के मिले–जुले विशाल इलाका को लेकर ही भारतीय उपमहादेश था। उसका उत्तरी और पहाड़ी क्षेत्र था। सिंधु और गंगा नदी के दोनों किनारे विशाल समभूमि (समतल) भूमि था। विंध्यांचल पर्वत के दक्षिण की ओर त्रिकोण क्षेत्र है। इसी को लेकर भारतीय उपमहादेश का भूगोल तैयार हुआ था।

भारतीय उपमहादेश को एक समय भारतवर्ष कहा जाता था। भरत एक पुरानी जातियाँ (समूह) थी। यह जातियाँ जिस क्षेत्र में रहती थी, उसे भारतवर्ष कहा जाता था। भरत शब्द का अर्थ है भरत के वंशज। लेकिन भारतवर्ष कहने पर उस समय पूरा भारतीय उपमहादेश नहीं समझा जाता था।

मानचित्र १.१ :
भारतीय उपमहादेश का भौगोलिक मानचित्र

१.४ बीते दिनों का हिसाब-किताब

एकदिन शिक्षिका ने कहा आज हमलोग बीते दिनों का हिसाब किताब करना सीखेंगें। आप लोगों को याद है इतिहास सीखने का प्रथम चरण क्या है ? सभी ने कहा, कब- यह प्रश्न करना। शिक्षिका ने कहा, बताओं तो भारत में प्रथम यात्री को लेकर ट्रेन कब चला ? सभी ने कहा, १६ अप्रैल १८५३ में। शिक्षिका ने कहा, बहुत अच्छा। वाह: ! आपलोगों को तो याद है। अब बताओं मनुष्य ने पहिया का आविष्कार कब किया था, आग जलाना कब सीखा था ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर वह नहीं जानते थे। शिक्षिका ने कहा, इसका उत्तर आप सब को ढूढ़कर निकालना होगा। ढूढ़ पाओगे तो ? सभी राजी हो गए। शिक्षिका ने कहा, एक समय ऐसा था, जब घड़ी नहीं थी, कलेण्डर भी नहीं था। मनुष्य लिख नहीं सकते थे। इसलिए किसी ने भी साल-तारीख देकर नहीं लिखा कि मनुष्य ने सबसे पहले कब आग जलाना सीखा था। बीते दिनों के हिसाब को लेना काफी मुश्किल है। लेकिन कार्य की सुविधा के लिए बीते हुए समय को विभिन्न भागों में बांटना पड़ता है। इन भागों का हिसाब भी अलग-अलग है। उदारहण के तौर पर— हजारों हजार साल मनुष्य केवल पत्थर का व्यवहार करना जानते थे। लेकिन, निश्चित तौर पर पत्थर का व्यवहार कब से शुरु हुआ, यह बातें कही भी लिखी हुई नहीं है। इसलिए इस हजारों हजार साल को समझाने के लिए एक शब्द का प्रयोग किया जाता है। वह है – युग। पूरी तरह से एक लम्बे समय को समझाने के लिए युग शब्द का प्रयोग किया जाता है। एक समय मनुष्य ताँबा, ब्रोंज, लोहा इत्यादि धातु का प्रयोग सीखा। उस समय को समझाने के लिए उसे धातु का युग कहा गया। लेकिन धातु युग के मध्य भी विभाजन (भाग) है। जब मनुष्य केवल ताँबा का प्रयोग करता था तो उसे, ताँबा युग कहा जाता था वहीं बाद में जब वह लोहा का प्रयोग सीखा तो, उस समय लोहा युग आरम्भ हुआ। लेकिन लोहे के युग में भी ताँबा और पत्थर इत्यादि का प्रयोग पूरी तरह से बन्द नहीं हो गया था। लेकिन लोहा उस समय सबसे अधिक काम आता था। लोहे के यंत्रों का प्रयोग करके ही मनुष्य सहज तरीके से काम को कर पाया। इसलिए इस समय का नाम लोहा युग पड़ा।

लेकिन, कौन सा युग कब समाप्त हुआ ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर देना भी सहज नहीं है। इसलिए यह सब उत्तर देते समय यह जोड़ दिया जाता है — अनुमानिक। इसका मतलब हुआ-उसका अनुमान या अंदाज लगाया गया है। कभी-कभी बीते दिनों के साल तारीख को अंदाज करके बतलाया जाता है। समय हिसाब के साथ अनुमानिक शब्द का प्रयोग करना पड़ता है।

कुछ बातें

आर्यावत और दक्षिणात्य

भारतवर्ष के उत्तर और दक्षिण भाग को विंध्यांचल पर्वत ने बांटा था। साधारण तरीके से आर्य उत्तर भाग में निवास करते थे, इसलिए इस क्षेत्र को आर्यावत कहा जाता। आर्यो की सीमा-रेखा विभिन्न समय में बदला। एक समय आर्यावत कहने पर प्राय: पूरा उत्तर भारत को समझा जाता था। विंध्यांचल पर्वत के दक्षिण की ओर आर्यो का विशेष कोई प्रभाव नहीं था। इसी दक्षिण भाग को दक्षिणात्य कहा जाता था। विंध्यांचल पर्वत से लेकर कन्याकुमारी तक इसका क्षेत्र था। द्रविड़ जातियों का निवास दक्षिणात्य में था। काबेरी नदी के दक्षिण भाग को द्रविड़ देश भी कहा जाता था। दक्षिणात्य क्षेत्र की भाषा को द्रविड़ भाषा कहा जाता था।

कुछ बातें
प्राक इतिहास, प्राय–इतिहास, इतिहास

इतिहास कितनी पुराने दिनों की बात कहती है ? एक समय मनुष्य इसे लिख नहीं पाते थे। उस समय की बातों को हमलोगों को अनुमान कर लेना पड़ता है। इस समय को बहुत से लोग प्राक ऐतिहासिक युग कहते है। प्राक् मतलब–पहले का। इसका मतलब प्राक्–इतिहास का अर्थ है इतिहास के पहले का समय। फिर एक समय मनुष्य लिखना सीखा। लेकिन उस समय पाए गए सभी लिखावट को आज भी पढ़ा नहीं गया है। अर्थात पुराने (बीते) समय का लिखावट तो मिलता है, लेकिन उसे पढ़ा नहीं जा सकता है। उसी पुराने समय को प्राय–ऐतिहासिक युग कहा जाता है। जिस समय की लिखावट मिलती है और वह पढ़ा जाए तो उसे ऐतिहासिक युग कहा जाता है। लेकिन इस विभाजन को केवल कार्य करने हेतु किया गया है। इतिहास बीते हुए दिनों की बातें कहती है। जो जितनी ही पुरानी हो। उस समय मनुष्य लिखना जानते हो या नहीं। वह सब पढ़ा जाए या नहीं। बीते दिनों की बातें ही इतिहास की बातें है।

??? **सोचकर देखो**

एक कैलेण्डर को लो। उसे अच्छी तरह देखो। किस बंगाब्द किस शकाब्द एवं किस ईसा के कैलेण्डर है वह ?

साल–तारीख के विभिन्न प्रकार

मनुष्य द्वारा लिखना सीखने के बाद ही बीते दिनों की बातों को जानना आसान हुआ। लेकिन कब ? प्रश्न का उत्तर सहजता से ही मिलने लगा। अनुमानिक शब्द का प्रयोग धीरे–धीरे कम होने लगा। समय का हिसाब करना सहज हुआ। साल शब्द को आप लोग सभी जानते हो। साल को समझाने के लिए अब तक और वर्ष शब्द का प्रयोग होता है। इतिहास के विभिन्न प्रकार के साल का प्रयोग देखा जाता है। कोई बड़ी या जरुरी घटना को पकड़कर गिना जाता था। राजाओं के शासन को लेकर भी साल गिनना चालू था। जैसे:– कनिष्काब्द, गुप्ताब्द, हर्षाब्द इत्यादि। कुषाण सम्राटों में सबसे महान कनिष्क थे। उन्होंने सिंहासन पर बैठकर एक नया साल गिनना शुरु किया। उसी साल गणना को कनिष्काब्द (कनिष्क + अब्द) कहते है। कनिष्काव्द का एक और नाम शकाब्द है। मान लिया जाता है ७८ ईसा. पू० में कनिष्क सिंहासन पर बैठा। इसका मतलब ईसा. पू० से ७८ बाद देने पर कितना शकाब्द वह ज्ञात होगा।

गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम ने एक साल गणना शुरु किया। उसे गुप्ताब्द कहा जाता है। ३१९–३२० ईसा के बाद लगभग गुप्ताब्द गणना आरम्भ हुआ। हर्षवर्द्धन भी राजा बनते समय (६०६ ईसा के बाद) से हर्षाब्द गणना आरम्भ किया।

संक्षिप्त बातें

ईसा पू० और ईसा के बाद

यीशु ईसा० के जन्म को लेकर जो अब्द अथवा साल गिना जाता है, वह है ईसा के बाद (ईसा + साल)। ईसा के बाद के अनुसार ही साधारण तरीके से इतिहास के साल-तारीख का हिसाब किया जाता है। यीशु के जन्म के पहले समय को ईसा० पू० कहा जाता है। पूर्व मतलब यहाँ पर पहले है। इसका मतलब ईसा के पू० का मतलब हुआ ईसा के जन्म के पहले अब्द गणना। (ईसा + पूर्व (पहले) + अब्द (साल गिनना))। मजे की बात यह है कि ईसा के पू. बड़ा से छोटा की ओर गिना जाता है। मतलब वहाँ पर ५, ४, ३, २, १- इस प्रकार गिना जाता है और ईसा के बाद गिना जाता है छोटा से बड़ा की ओर। जैसे:- १,२, ३, ४, ५। इसलिए २०१४ ईसा० - पू. के पहले का वर्ष २०१३ ईसा० पू. होगा। बाद का वर्ष २०१५ ईसा० पू. होगा और ईसा० पू. होने पर यह उल्टा होगा २०१४ ईसा० पू. के पहले का वर्ष २०१५ ईसा० पू. ईसा के बाद होगा। बाद का वर्ष २०१३ ईसा० पू. होगा।

यहाँ पर और एक मजे की बात है। ईसा के शताब्दी को गिनते समय देखिएगा कि एक बढ़ाकर गिना जाता है। जैसे १९४९ ईसा के बाद। लेकिन यह ईसा० पू. उन्नीसवी सदी नहीं, ईसा के बाद बीसवीं सदी है। क्यों? कारण बहुत ही सहज है। यीशु के जन्म से प्रथम १०० वर्ष ईसा के बाद प्रथम शताब्दी हुआ। यीशु के जन्म के १०१ साल से २०० साल ईसा के बाद द्वितीय शताब्दी हुआ। इसलिए हिसाब इस प्रकार होगा —

३००-२०१	ईसा० पू. तृतीय शताब्दी	१-१००	ईसा के बाद प्रथम शताब्दी
२००-१०१	ईसा० पू. द्वितीय शताब्दी	१०१-२००	ईसा के बाद द्वितीय शताब्दी
१००-१	ईसा० पू. प्रथम शताब्दी	२०१-३००	ईसा के बाद तृतीय शताब्दी

इसी तरह से १८०१-१९०० हुआ ईसा के बाद उन्नीसवी शताब्दी। १९०१-२००० हुआ ईसा के बाद बीसवीं शताब्दी और २०१४ ईसा के बाद हुआ इक्कीसवीं शताब्दी। याद रखो प्रथम ईसा के बाद का मतलब यीशु जिस वर्ष जन्म लिए थे और ईसा के बाद के प्रथम शताब्दी का मतलब यीशु के जन्म के बाद से एक सौ वर्ष।

समय गिनने का एक और हिसाब देखा जाता है। वह हुआ एक साथ कुछ सालों को गिनना। उदाहरण के तौर पर, हजार साल एक साथ होने पर सहस्त्राब्दी (सहस्त्र (हजार) + अब्द)। फिर एक सौ साल को समझाने के लिए शताब्दी (शत (एक सौ) + अब्द) शब्द प्रयोग होता है। शताब्द को शताब्दी अथवा शतक भी कहा जाता है। दस साल को एक साथ समझाने के लिए दशक शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेकिन इसे दशाब्द नहीं कहा जाता है।

१.५ बोलना, चित्र बनाना, लिखना

एकदिन शिक्षिका ने इतिहास की कक्षा में एक मनोरंजन का काम दी। बोली, मैं कुछ कहूँगी नहीं। बल्कि हाथ घुमाकर शरीर की भाव-भंगिमा करूँगी। आप लोग उसे देखकर बताओंगे कि मैं ठीक क्या कहना चाहती हूँ। सबको काफी आनन्द आया। शिक्षिका ने हाथों को घुमाकर विभिन्न कुछ समझायी। पहले सबको समझने में थोड़ी असुविधा हुई। लेकिन धीरे-धीरे वे पूरी तरह से समझने लगे। शिक्षिका ने कहा, अब मैं ब्लैक बोर्ड पर चित्र बनाऊँगी। चित्रों को देखकर समझना होगा कि मैं क्या कहना चाहती हूँ। पहले-पहले तो कोई भी चित्रों के अर्थ को नहीं समझ पाया। कुछ समय सोचने के पश्चात् पृथा पहले बोली। उसके बाद दूसरे भी पूरी तरह समझने लगे। शिक्षिका ने कहा, यही तो इतिहास की और एक कहानी है। एक समय ऐसा था, जब मनुष्य बात नहीं कर पाता था। उस समय हाथ-सिर को हिलाकर शरीर का हाव-भाव करते थे। उससे ही एक-दूसरे के मन के भाव समझते थे। उसके बाद वे चित्र बनाना सीखे। उस समय चित्र बनाकर उनकी मन की बातों को दूसरों को समझाया जाता था। सब लोग मिलकर जो करते थे, उसका चित्र बनाकर उनकी रखते थे। गुफा के पत्थरों की दीवारों पर मिट्टी का शरीर और धातु के बर्तन बनाते थे। इसके बाद एक समय चित्र बना-बनाकर अक्षर समझाते थे। उदाहरण के तौर पर 'क' और 'ख' आस-पास बैठे है। हो सकता है कि इसका मतलब भूख लगी हो। और 'क' और 'ग' आस-पास बैठे हैं। हो सकता है कि उसे नींद लग रही है, यही समझाया जा रहा है। इसी तरह से धीरे-धीरे लोगों की बातें कहना चित्र बनाना और लिखना सीखा था। वह सब चित्र और लिखावट कुछ-कुछ आज भी है। उससे ही उस समय के लोगों के बारें में पता चलता है।

धरती के ऊपर इतिहास, धरती के नीचे इतिहास

राहुल ने कहा, केवल चित्र और लिखावट से ही क्या इतिहास को जाना जा सकता है? पुराने दिनों की क्या अनेक लिखावट पायी जाती हैं? शिक्षिका ने कहा, नहीं, अनेक लिखावट नहीं पायी जाती है और जो लिखावट मिलता है, उसका सब कुछ पढ़ा नहीं जाता है। इसलिए तो पुराने दिनों की सब बातें नहीं जाना जा सकता है। लेकिन चित्र और लिखावट के अलावा और भी विभिन्न तरीके से इतिहास के बारें में जानकारी प्राप्त कर सकते है। जैसे उदाहरण स्वरूप— घर-द्वार, बर्तन, पोशाक।

कुछ बातें

जादूघर

जादूघर इस शब्द को आप सभी जानते हो। लेकिन इस घर में जादू नहीं दिखाया जाता है। धरती के नीचे से पाएं गए पुराने दिनों की विभिन्न प्राचीन वस्तु को यत्न करके रखा जाता है। इसमें धरती के ऊपर पाए जाने वाले विभिन्न वस्तुएं रखी जाती है। लुप्त होती हुई जन्तुओं की हड्डी। इसमे राजा-रानियों की पोशाक, अस्त्र-शस्त्र रहता है। विभिन्न प्रकार की मूर्ति, चित्र, पुस्तक और भी बहुत कुछ! पूरी दुनिया के विभिन्न जगह पर विभिन्न प्रकार के जादूघर है। अंग्रेजी में जादूघर को **Museum**(म्यूजियम) कहा जाता है। कोलकाता शहर में एक विशाल जादूघर है।

फिर मुद्रा, गहना, अस्त्र-शस्त्र इत्यदि। ऐसे विभिन्न वस्तुओं से पुराने दिनों की बातों को जाना जा सकता है। लेकिन यह सब वस्तु सब समय नहीं मिलता है। टूटकर अथवा मिट्टी के नीचे दबकर नष्ट हो गया। मि्टटी के नीचे दबे हुए वस्तुओं को अनेक समय खोजने पर मिल जाता है। यही सब वस्तु पुराने दिनों का प्रमाण (साक्षी) है। उदाहरण के तौर पर इतिहास एक शरीर है और यह सभी शरीर की हड्डियाँ है। वही टुकड़े-टुकड़े हड्डी को जोड़कर इतिहास का कंकाल तैयार होता है। इन सभी को इतिहास का उपादान कहा जाता है। मिट्टी के नीचे दबे हुए उपादानों को खोजकर बाहर निकालते है पुरातत्व अथवा पुरातत्ववेता अथवा पूरा मतलब पुराना। तात्विक मतलब ज्ञानी मनुष्य। लेकिन पुरातत्व का मतलब पुराना मनुष्य नहीं है।

खोजकर पाए हुए वस्तुओं को प्राचीन वस्तु अथवा ऐतिहासिक कहा जाता है। बीते हुए दिनों की इन सब वस्तुओं से बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन उनमें से प्राय: अन्दाज पर निर्भरशील है। क्योंकि, विगत् दिनों को हमलोग देखे नहीं है। लेकिन बीते दिनों की लिखावट को पढ़ने पर सुविधा होती है। लेकिन वह सब लिखावट पढ़ा नहीं जा सकता है ? उस समय की लिखावट भी पूरी तरह मिल नहीं पाती है ? उन सब दिनों की बातों को जानने के लिए मिट्टी को खोदकर प्राप्त किए हुए वस्तु ही काम में आती है। इस तरह घटना के ऊपर और नीचे इतिहास के विभिन्न उपादान बिखरे हुए है। वही टुकड़े-टुकड़े उपादानों को ढूंढकर उसे जोड़ देते है पुरातत्व और इतिहासकार। इससे ही बीते दिनों की बातों की जानकारी प्राप्त होती है।

१.६ टुकड़ों को जोड़ते-जोड़ते

स्कूल से छुट्टी होने के बाद शाम को सभी रूबी के घर गए। दादाजी आज एक मनोरंजन का खेल उन्हें दिखाएंगे। बहुत सारे टुकड़ों को जोड़कर एक चित्र बन रहा है। उस खेल का नाम जिग-स-पजल था। दादाजी ने कहा इतिहास भी इस खेल की भाँति है। टुकड़े-टुकड़े उपादान को जोड़-जोड़कर पूरे चित्र को बनाना पड़ता है। जहाँ पर टुकड़े नहीं मिलते है या टुकड़े खो गए है, वही पर कमी होती है।

दूसरे दिन शिक्षिका को उन लोगों ने जिग-स-पजल की बातें कही। शिक्षिका ने कहा, पुरातत्व और इतिहासकार इसी तरह से ही बीते दिनों की बातों को चित्र के माध्यम से सजाते है। सभी टुकड़े एक साथ नहीं मिलते है। उसे ढूंढना पड़ता है। उसके बारें में सोचना पड़ता है। इसलिए तो बीते हुए दिनों की बातों को जानने में आनन्द आता है। ठीक इस जिग-स-पजल खेल की भाँति। इस आपलोग इस साल आपलोग इस तरह असंख्य पजल स्वयं ही बना सकते हो। उस आदिमानव की बात से आपलोगों को आरम्भ करना होगा। इसके बाद भारतीय उपमहादेश के हजारों-हजार

सालों की बातों को आपलोग जान पाओंगे। आदिमानव तब तक सभ्य मनुष्य हो चूके थे। उनमें बहुत कुछ बदलाव आया है। वह सब बदलाव आए हुए बातों को आपलोग जान पाओंगे। आप देखोगे कि टुकड़ो को जोड़कर बीते दिनों की बातों की जानकारी प्राप्त होती है। अब आपलोग टुकड़ो को ढूंढने और जोड़ने का आरम्भ करो। यह पूरी इतिहास की पुस्तक ही एक विशाल जिग-स-पजल है।

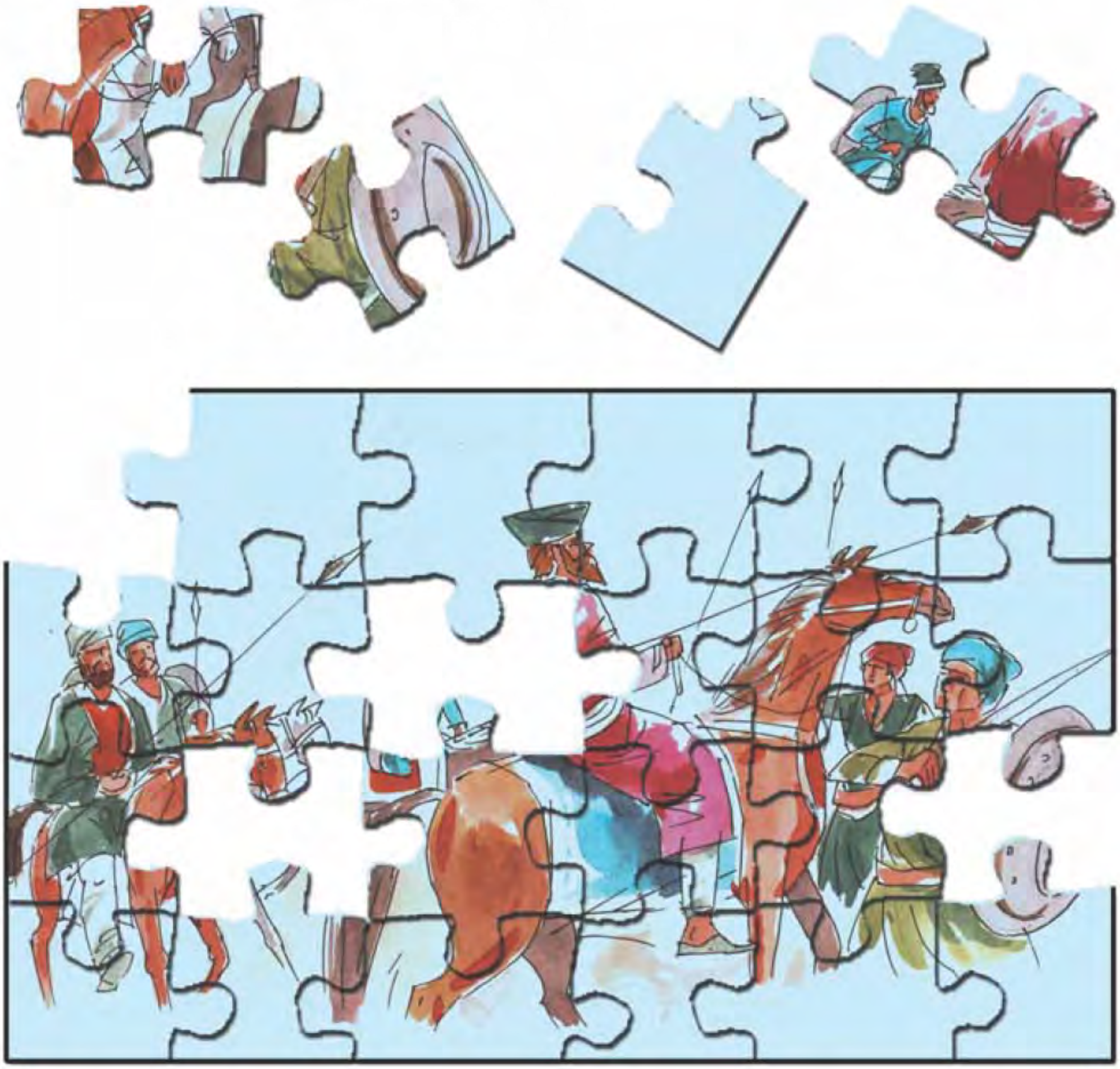

पढ़ते समय आनन्द का कार्य

एक पिचबोर्ड को लेकर उसके ऊपर सफेद कागज लगाओं। कागज के ऊपर अपनी पसन्द के अनुसार एक चित्र बनाओं। असामान कुछ टुकड़ों को करके चित्र को काट लो। इसके बाद सभी मिलकर टुकड़ों को सजाकर पूरे चित्र को बनाओं। इस तरह ही जिग-स-पजल का खेल होता है।

प्राचीन भारत के कुछ बातें

बीते दिनों की बातें अगर सजाकर लिखा हुआ रहता तो सहज ही बीते हुए दिनों (समय) के बारें में जानकारी मिल जाती। लेकिन प्राचीन भारतीय उपमहादेश का इतिहास वैसा सजाकर नहीं लिखा हुआ था, इतिहासकार और पुरातत्ववेता विभिन्न प्रकार से उस इतिहास को जानने का प्रयास करते है। प्रत्येक उपादान के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर पूरा चित्र बनाते है। इसके बावजूद

बीते दिनों के सभी लिखावट (लेख) को अब तक भी पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका है। इसलिए इस लेख से ही बीते समय के इतिहास को पूरी तरह नहीं जान सकते है। जैसे:- हड़प्पा लिपि को अब तक पढ़ा नहीं गया है। मिट्टी खोदकर पाए गए विभिन्न पुरातत्व उपादान ही हड़प्पा सभ्यता को जानने में सहायता प्रदान करती है। एक बड़े क्षेत्र (अंचल) में काफी समय तक पुरातत्व खुदाई का काम करते है। उस क्षेत्र को पुरातत्व कहा जाता है। वैसे ही पुरातत्व से विभिन्न प्रकार के प्राचीन वस्तु प्राप्त होता है। कभी ध्वंस हुए नगर के चिह्न मिलते है, तो कभी विभिन्न पात्र (बर्तन) सिलमोहर एवं मूर्ति मिलती है। कभी मिट्टी के बर्तन में लगे हुए सरसो का दाना (बीज) या छिलका। तो कभी मनुष्य और पशुओं के हड्डी और कंकाल मिलता है। प्राचीन भारत के इतिहास को जानने के लिए पुरातत्व का विशेष महत्त्व है। लेकिन लिखित इतिहास मिलने पर का महत्व कम नहीं हो जाता है, क्योंकि पुरातत्व परीक्षण से यह जांच किया जाता है कि इतिहास कितना सठीक है।

प्राचीन वस्तु के बाद ही सबसे महत्वपूर्ण उपादान लेखमाला है। प्राचीन काल में पत्थर अथवा धातु का बर्तन, लिपि खुदाई करके लिखा जाता था। उस लेख को भारतीय उपमहादेश के विभिन्न जगहों पर पाया गया है। पत्थर के ऊपर खुदे लेखों को शीला (पत्थर) लेख कहा जाता है। मौर्य सम्राट अशोक के लेख लेखमाला का सर्वश्रेष्ठ नमूना है। इतना ही नहीं अनेक शासकों के वीरता का गुणमान भी लेख के रूप में खुदाई किया जाता था। उसे प्रशस्ति कहा जाता था। प्रशस्ति का मतलब है गुणमान करना। इस प्रशस्ति लेख से भी उस शासक विशेष के बारे में बहुत कुछ ज्ञात होता है। जैसे:- गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का इलाहाबाद प्रशस्ति। इन लेख मालाओं में विभिन्न साल का प्रयोग देखा जाता है। उससे इतिहास के 'कब'-के बारें में बहुत कुछ जानकारी मिलती है। प्राचीन भारत के इतिहास को जानने के लिए मुद्रा भी उपयोगी है। मुद्रा में शासक का नाम, मूर्ति इत्यादि खुदाई किया हुआ रहता है। साल भी मुद्रा में पाया जाता है। इसके फलस्वरूप मुद्रा से विभिन्न प्रकार के तथ्य (सूचना) मिलता है। शक-कुषाणों के इतिहास के बारें में जानकारी उनकी मुद्रा से ही मिलती है।

प्राचीन भारत के विभिन्न शिल्प वस्तु से भी इतिहास के बारें में बहुत कुछ जाना जा सकता है। यह शिल्प वस्तु साधारण तरीके से तीन प्रकार के होते है। स्थापत्य, भाष्कर्य और चित्रकला, पत्थर धातु और जली हुई मिट्टी के ऊपर खुदाई करके बहुत कुछ बनाया जाता था। जैसे :- देवी-देवता, मनुष्य और पशुओं की मूर्ति। इसे ही भाष्कर्य कहा जाता है। मंदिर एवं प्रासाद के दीवार पर भाष्कर्य की खुदाई से बहुत सी जानकारी मिलती है। लेकिन प्राचीन भारत के चित्र शिल्प का नमूना पर्याप्त पैमाने पर नहीं मिलता है। भीमबेटका और अजन्ता जैसे गुफाओं के दीवारों पर बनाए गए चित्र आज भी मौजूद हैं। वहाँ पर चित्र के विषय वस्तु के अनुसार शासक और साधारण लोगों के जीवन के विभिन्न पहलू से अवगत होते है। प्राचीन समाज और जीवन को समझने के लिए यह बहुत ही जरुरी है। वही स्थापत्य के विभिन्न नमूने से भी बीते हुए दिनों के बारें में जानकारी मिलती है। घर-द्वार, प्रासाद, मन्दिर यही सब स्थापत्य का उदाहरण है।

इतिहास के उपादान

हमेशा चित्र पूरी तरह से बन नहीं पाता है। क्योंकि उपादान में कमी रह जाती है। प्राचीन भारतीय उपमहादेश के इतिहास के उपादानों को मूल छ: भागों में बाँटा गया है। इसके प्रत्येक भाग में पुन: भाग किया गया है। नीचे दी गई तालिका चक्र पर विशेष ध्यान दो।

उपादान के क्षेत्र में अनुमान के ऊपर ही निर्भर करना पड़ता है। लिखित साहित्य के क्षेत्र में पूरा अनुमान नहीं लगाना पड़ता है। प्राचीन भारत का इतिहास लिखने के क्षेत्र में अनेक प्रकार के साहित्यिक उपादान मिलता है। उन सभी को दो भाँगों में बाँटा जाता है। देशी और विदेशी लेखकों की रचना। देशी साहित्य को भी धर्म आधारित और धर्मनिरपेक्ष साहित्य में बाँटा जाता है। धर्म आधारित साहित्य में वैदिक साहित्य प्रधान है। अनुमानिक ईसा० पू० १५०० से ईसा० पू० ६०० तक के समय को इतिहास के बारें में जानने के लिए वैदिक साहित्य ही मूल उपादान है। प्राचीन भारत के इतिहास के बारें में जानकारी प्राप्त करने में महाकाव्य और पुराणों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। जैन और बौद्ध धर्म के विभिन्न लेखों से भी प्राचीन इतिहास के बारें में काफी जानकारी मिलती है। विशेषकर ईसा० पू० ६०० से इतिहास जानने के लिए यह लेख काफी जरुरी है।

धर्मनिरपेक्ष के विभिन्न विषयों से सम्बंधित लेखों से भी प्राचीन भारत के इतिहास का उपादान मिलता है। राजनीति, व्याकरण एवं विज्ञान की पुस्तक में भी उस समय के समाज, राजनीति एवं अर्थनीति से सम्बन्धित विभिन्न बातें है। साथ ही साथ काव्य, नाटक, अभिधान, चिकित्सा विषयक पुस्तक में भी इतिहास के उपादान मिलते है। कुछ जीवनीमूलक लेख-पत्र से भी प्राचीन भारत के इतिहास की जानकारी मिलती है। वार्णभट्ट का हर्षचरित लेख इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

प्राचीन भारत का इतिहास लिखने के लिए तीन प्रकार के विदेशी विवरण जरुरी है। ग्रीक, रोमन और चीन दूत और पर्यटकों का विवरण। लेकिन विदेशी साहित्य की भी कुछ समस्याएं है। विदेशी भारतीय उपमहादेश की संस्कृति को नहीं जानते थे। जिसके फलस्वरूप बहुत सारे अर्थ समझने में उनसे भूल हुई। इसके अलावा बहुत सारे लिखावट में पक्षपात था। देशी साहित्य में भी पक्षपात का उदाहरण मौजूद है। इसके अलावा काव्य-नाटक के जरिए समाज के निम्न वर्ग के लोगों के बारें में विशेष जानकारी नहीं मिलती है। अधिकांश साहित्य का विवरण मनगढ़त अथवा काल्पनिक है। लेकिन इसके बावजूद प्राचीन भारतीय उपमहादेश के इतिहास के बारें में जानकारी हासिल करने के लिए साहित्य के उपादानों का भी विशेष महत्त्व है।

२ भारतीय उपमहादेश के आदिमानव

यायावरी जीवन से स्थायी बस्ती की स्थापना

विद्यालय की ओर से समूह बनाकर सभी एकदिन चिड़ियाखाना गए। उनके साथ शिक्षक एवं शिक्षिकाएं भी थी। चिपांजी को देखकर तीतीर ने कहा, जानते हो मनुष्य पहले चिपांजी (वनमानुष) की ही तरह था। अनवर ने कहा, चिपांजी तो जन्तु है, शरीर में बड़े-बड़े रोएँ है। इसके अलावा तो चिपांजी ठीक तरह से खड़ा भी नहीं हो पाता है। सिद्धू ने कहा, आओं हमसब मिलकर शिक्षिका से पूछते है। अरूण ने कहा, मैडम क्या सच में मनुष्य पहले चिपांजी (वनमानुष) की तरह था? शिक्षिका ने कहा, आज आप सभी अच्छी तरह से चिड़ियाखाना घुमकर देखो। कल कक्षा में इस विषय पर बोलूँगी।

२.१ आदिमानव की बातें

मनुष्य और उसका क्रिया-कलाप को लेकर ही मनुष्य का इतिहास है, क्योंकि मनुष्य एक विशेष प्राणी है। शारीरिक विशिष्टता और बनावट के कारण ही मनुष्य की पहचान होती है। लाखों-लाख सालों से विभिन्न परिवर्तन के जरिए ही यह वैशिष्ट्य निर्मित हुआ है। दोनों पैरों पर चलना, हाथ का प्रयोग एवं लम्बा रीढ़ की हड्डी यही सब तो मनुष्य की विशिष्ट पहचान है। इसी गर्दन् के ऊपर है एक बड़ा-सा सिर।

मनुष्य ही एक मात्र ऐसा प्राणी है, जो हाथों की कानी अंगूली से भी कुछ पकड़ने के लिए प्रयोग करते है। इसके अलावा मनुष्य के सिर की खोपड़ी बड़े मस्तिष्क को पकड़कर रखती है। लाखों वर्षों के फलस्वरूप ही मनुष्य के शारीरिक बनावट में परिवर्तन हुआ था।

लाखों-लाख वर्ष पहले पृथ्वी का स्थल भाग घने जंगल से घिरा हुआ था। अफ्रीका महादेश के पूर्व भाग में भी घना जंगल था। इसी घने जंगल में विशाल आकार के भयानक प्राणी घूमते रहते थे। वहाँ के पेड़ों पर असंख्य प्रकार के पक्षी और बंदर रहते थे। वहाँ पर एक प्रकार का बड़ा बंदर रहता था, जिसकी पूंछ नहीं थी। इसे एप (Ape) कहा जाता है। काफी दिनों से धीरे-धीरे मौसम बदलता रहा। विभिन्न कारणों से पेड़-पौधों की संख्या कम होती गयी। पेड़ों पर घूमना उनके लिए कठिन होता गया। इसके अलावा पहले की तरह कंदमूल एवं फल मिलना मुश्किल हो गया था। तब एपो (Ape) का एक समूह घने जंगल की खोज में निकल पड़े।

दूसरा समूह भोजन की तलाश में पेड़ से धरती पर आ गए। वे दोनों पैरों पर खड़ा होने की कोशिश किए। भोजन सहजता से नहीं मिल पाया। इसलिए भोजन की खोज शुरू हुई। इसके बाद किसी तरह खड़ा हो पाने वाला मनुष्य आया। यह प्राय: तीस-चालीस लाख साल पहले की बात है। इसी तरह धीरे-धीरे एप (Ape) से मनुष्य का परिवार अथवा होमिनीड अलग हुआ। इस तरह से मनुष्य का विकास एवं उन्नति शुरू हुई।

कुछ बातें

विभिन्न प्रकार के आदिमानव

आदिम बातों का मतलब काफी पुराना और पहले की ओर। प्राचीन काल में मनुष्य को समझाने के लिए आदिमानव शब्द का प्रयोग किया जाता है। अभी तक सबसे प्राचीन आदिमानव की खोज पूर्व अफ्रीका में मिला है। आदिमानव के भी विभिन्न प्रकार के भाग है। मूलत: मस्तिष्क का आकार से ही इसको विभाजित किया गया है।

अस्ट्रोलोपिथेकास : एप से मनुष्य

- यह लगभग ४० लाख से ३० लाख वर्ष पहले था।
- यह किसी तरह से दोनों पैरों के बल पर खड़ा रहते थे।
- कठोर बादाम, सूखे फल को चबाकर खाते थे। इनका जबड़ा कठोर और सुगठित था।
- ये पेड़ की डाल से धक्का मारते तथा पत्थर फेंकने का प्रयास करते।

होमोहाबिलीस : दक्ष मनुष्य

- यह लगभग २६ लाख से १७ लाख वर्ष पहले था।
- यह समूह बनाकर रहते थे। यह चल भी सकते थे।
- कंद-मूल एवं फल के साथ-साथ यह सम्भवत: कच्चा मांस भी खाते थे।
- ये लोग सबसे पहले पत्थर को अस्त्र के रूप में प्रयोग करके एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर प्रहार करके पत्थर का अस्त्र बनाते थे।

होमोइरेक्टस : सीधा होकर खड़ा होने वाला मनुष्य

- यह लगभग २० लाख से लेकर ३ लाख ५० हजार वर्ष पहले थे।
- यह दोनों पैरों के बल सीधा होकर खड़े रहते थे। यह समूह बनाकर गुफा में रहते थे।
- यह शिकार करते थे। यह लोग ही सबसे पहले आग का प्रयोग करना सीखा।
- ये लोग ही सबसे पहले नुकीले पत्थर का अस्त्र (हथियार) बनाए थे। अंतिम समय में इन्होंने कुल्हाड़ी बनाया था।

होमो सापियन्स : बुद्धिमान मनुष्य

- यह लगभग २ लाख ३० हजार वर्ष पहले था।
- यह समूह बनाकर बड़े जानवरों का शिकार करते थे। विभिन्न कार्यों के लिए ये आग का प्रयोग करते थे। यह जानवरों के मांस को जलाकर (भूनकर) खाते थे। यह पशुओं का चमड़ा पहनते थे।
- ये लोग छोटे, नुकीले और धारदार पत्थर का अस्त्र (हथियार) बनाना सीखे थे। ये बर्छी (भाला) जैसे हथियार (अस्त्र) पत्थर से बनाना जानते थे।

लाखों-लाख साल से आदिमानव पत्थर से हथियार बनाते थे इसलिए पत्थर युग (पाषाण युग) मनुष्य के इतिहास का एक बहुत बड़ा भाग है। पत्थर के युग को साधारण तरीके से तीन क्रम (पर्याय) में बाँटा गया है। प्रत्येक भाग में पत्थर के हथियारों का अलग वैशिष्ट्य (महत्त्व) है। इसके अलावा जीवन-यापन में भी काफी परिवर्तन हुआ है

तालिका २.१ : एक नजर में तीनों पत्थर युग (पाषाण युग)

प्राचीन पत्थर युग (पाषाण युग)	मध्य पत्थर युग (पाषाण युग)	नवीन पत्थर युग (पाषाण युग)
लगभग ईसा० पूँ० २० लाख वर्ष से ईसा० पू० १० हजार वर्ष।	लगभग ईसा० पूँ० १० हजार वर्ष से ईसा० पू० ८ हजार वर्ष।	लगभग ईसा० पूँ० ८ हजार वर्ष से ईसा० पू० ११ हजार वर्ष।
टेढ़े मेढ़ा, बड़ा और भारी पत्थरों का हथियार। शिकार करके एवं जंगल के कंदमूल को इकट्ठा खाना।	हथियार पत्थरों का छोटा, हल्का और नुकीला। शिकार करना और जंगल से कंद मूल एवं फल का इकट्ठा करने के साथ-साथ पशु-पालन का काम शुरू किया।	हथियार काफी हल्का और नुकीला। विभिन्न प्रकार के हथियार पशुपालन और खेती-बारी शुरू हुआ। मिट्टी के बर्त्तन भी बनाना आरम्भ हुआ।
खुले आकाश के नीचे, तो कभी गुफा में रहना।	गुफा से बाहर निकलकर छोटी-छोटी बस्ती बनाना शुरू किया।	यायावरी जीवन को छोड़कर एक क्षेत्र में स्थायी बस्ती बनाना।

आग का प्रयोग करना सीखना मनुष्य के इतिहास का एक जरूरी विषय है। दूसरे सभी प्राणी आग से डरते है। प्राणियों के मध्य केवल मनुष्य ही आग जलाना एवं उसका प्रयोग कर सकते है। पहले जब जंगल में आग (दवानल) या दूसरी वजह से आग लगती थी तो वे उसे देखते थे। बाद में किसी समय जलती हुई पेड़ की तना (डाल) को लाकर गुफा में जलाकर रखते थे। उस आग को बूझने नहीं देता था। इसके बाद अचानक एकदिन आदिमानव आग जलाना सीखा। हो सकता है कि पत्थर का हथियार बनाते समय चमकते हुए पत्थरों के टक्कर से अचानक आग जल उठा होगा अथवा लकड़ी से लकड़ी को घिसकर आग जलाया था।

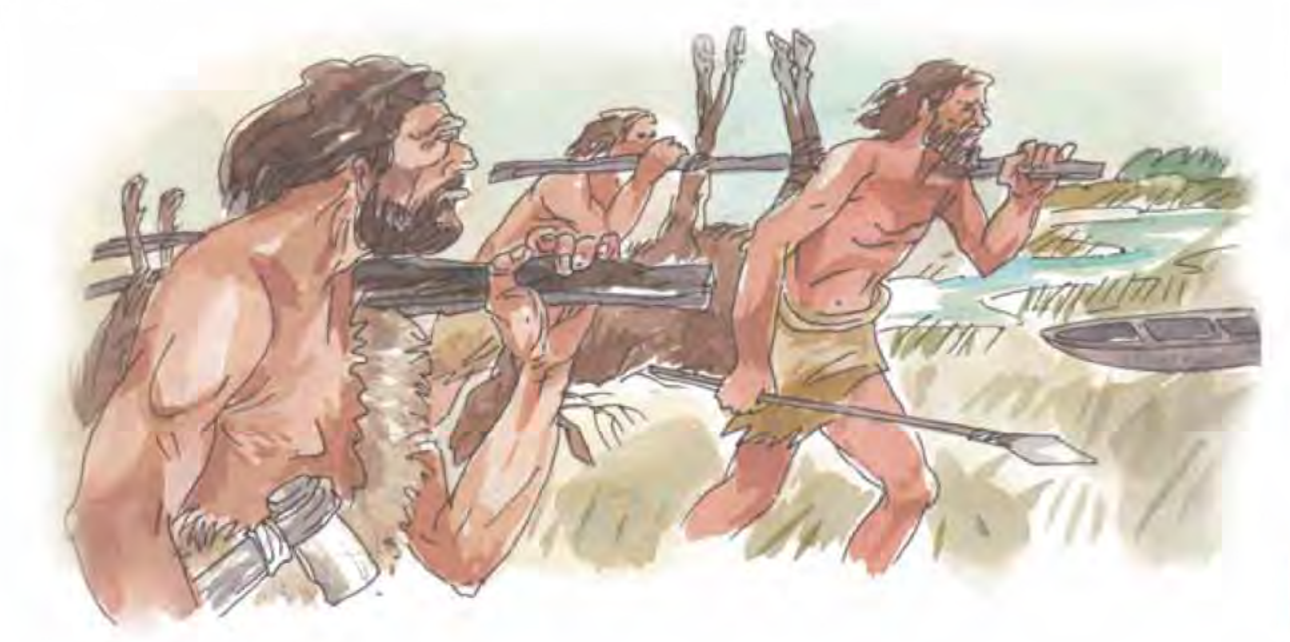

कुछ बातें
लूसी

अफ्रीका महादेश के यूथोपिया हदार (Hadar) नाम एक जगह है। वहाँ पर १९७४ साल में एक अस्ट्रोलोपिथेकाम के कंकाल का कुछ अंश पाया गया है। कंकाल प्रायः ३२ लाख वर्ष पहले एक छोटी लड़की की है। इसी कंकाल का नाम लूसी रखा गया था। लूसी प्राणियों की तुलना में काफी बड़ा था। फिर भी धीरे-धीरे आदिमानव का मस्तिष्क और भी बड़ा होगा गया।

चित्र २.१: लूसी का कंकाल

आग का प्रयोग करने के फलस्वरूप उनमें कुछ बदलाव देखा गया। एक ओर कड़ाके की ठण्ड से मनुष्य को आग बचाती थी। साथ-साथ ही विभिन्न जन्तुओं के आक्रमण से मुकाबला करने के लिए भी आग का प्रयोग आरम्भ हुआ। इसके अलावा आग का प्रयोग आदिमानव को खाने के अभ्यास को भी बदल डाला। इस समय कच्चा भोजन खाने के बजाए वे आग में जलाकर (भूनकर) खाना शुरू किया। जले हुए नरम माँस खाने में उनके जबड़े और दाँत पर कम दवाब पड़ता था। इसलिए धीरे-धीरे उनका जबड़ा पतला हो गया। सामने का निकला हुआ ऊँचा दाँत छोटा हो गया। इसके अलावा विभिन्न प्रकार का बदलाव भी चेहरे पर हुआ। आदिमानव के शरीर की चेहरे पर हुआ। आदिमानव के शरीर की शक्ति बढ़ी और बुद्धि का भी विकास हुआ।

२.२ भारतीय उपमहादेश के आदिमानव : हथियार और जीवन यापन के विभिन्न पहलू

अफ्रीका, चीन और जावा में काफी पुरानी मनुष्य का कंकाल और हड्डियों की खोज मिली। भारतीय उपमहादेश में इतना पुराना मनुष्य का जिक्र नहीं है। सम्भवतः अफ्रीका देश से ही आदि मानव भारतीय उपमहादेश में आए थे। आदिमानव के हड्डियों का कुछ नमूना ही उपमहादेश में पाया जाता है। लेकिन उनके द्वारा व्यवहार किए हुए पुराने हथियार कुछ क्षेत्रों में मिला है। उन सब से ही उपमहादेश में आदिमानव की बातें जानने को मिलती है।

२.२.१ उपमहादेश में प्राचीन पत्थर युग (पाषाण युग)

भारतीय उपमहादेश में सबसे पुराना पत्थर का अस्त्र काश्मीर के सोयान घाटी में मिला है। इसके अलावा पाकिस्तान के पट्वार मालभूमि और हिमाचल प्रदेश के शिवालिक पर्वत अंचल (क्षेत्र) में भी पुराने पत्थरों का हथियार मिला है। इन हथियारों में अधिकांशतः कुल्हाड़ी और दाव है। हथियारों में अधिकांशतः भारी नूड़ी पत्थर से तैयार किया गया था।

होमो इरेक्टस प्रजाति के आदिमानव उपमहादेश के विभिन्न भागों में फैल गए थे। कर्नाटक के हुगंसी घाटी, राजस्थान का दिदवाना और महाराष्ट्र का नेभासात उसका प्रमाण है। इन सब केन्द्रों में नर्मदा घाटी में एक लाख तीस हजार साल से भी पहले का मनुष्य के सिर की खोपड़ी पायी गयी है।

भारी नीरेट पत्थर के कुल्हाड़ी का जो प्रयोग करते थे, वे ही भोजन को इकट्ठा करते थे। अपने लिए खाने का भोजन वे स्वंय नहीं बना पाते थे। पशु-पालन भी वे नहीं जानते ते। शिकार करके और कंदमूल का जुगाड़ करके ही वे अपना पेट भरते थे।

जिसके कारण विभिन्न जगहों पर घुम-घुमकर दिन बीताना पड़ता था। उस यायावरी जीवन में पूरी तरह से एक अंचल (क्षेत्र) में बस्ती भी आदिमानव नहीं बनाए। कुछ समय रहने के लिए वे किसी प्राकृतिक गुफा का चुनाव करते थे। अगर गुफा नहीं मिलती तो वे खुले आकाश के नीचे ही दिन बीताते थे। प्राचीन पत्थर युग (पाषाण युग) में आदि मानव का जीवन काफी कठिन एवं कष्ट भरा था। दल (समूह) बनाकर पशुओं का शिकार करते थे। मिल-जुलकर भोजन को बाँटकर सभी खाते थे। कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए पशुओं का चमड़ा पेड़ के छाल को पहनते थे। आदिमानव कभी भी पोशाक बनाना नहीं सीखा। उपमहादेश के कुछ भाग में ऐसे पुराने गुफा एवं बस्ती मौजूद है। जैसे उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान का सांधाओं, कर्नाटक का कुर्नल और मध्य प्रदेश का भीमबेटका का।

कुछ बातें

भीमबेटका

चित्र २.२ : भीमबेटका की गुफा में चित्रित चित्र।

मध्यप्रेदश के भोपाल से कुछ दूरी पर विंध्यांचल पर्वत के पास ही एक निर्जन जंगल है। वहाँ पर १९६७ साल, भीमबेटका में कुछ गुफाओं की खोज मिली। इन गुफाओं में ही प्राचीन पत्थर युग पाषाण युग से ही आदिमानव रहना शुरू किया था। गुफा की दीवार पर उनके द्वारा बनाए गए चित्र भी मिला है। प्राय: सभी में केवल शिकार का दृश्य हैं। विभिन्न प्रकार के जंगली पशु का भी चित्र है। इसके अलावा पक्षी, मछली कठबिड़ाल जैसे प्राणियों के भी चित्र है। इसके अलावा देखा गया है कि मनुष्य अकेले अथवा समूह (दल) बनाकर शिकार कर रहे है। उनमें से कुछेक के मुहँ पर मुखौटा लगा हुआ है। हाथ-पैर में गहना है। उस समय मनुष्य के साथ कुत्ते का भी चित्र देखा गया। चित्रों में हरा और पीला रंग का व्यवहार होने के बावजूद अधिकांशत: सफेद और लाल रंग देखा जाता है।

चित्र २.३ : भीमबेटका की गुफा

कुछ बातें

हुसंगी घाटी

कर्नाटक के गुलवर्ग जिला के उत्तर-पश्चिम में हुसंगी घाटी में इसामपुर गाँव है। उसके पास से ही काथटा हाल्ला खाल (नाला) बहता है। १९८३ ईसा०पू० में मिट्टी की खुदाई करके वहाँ पर प्राचीन पत्थर युग (पाषाण युग) का हथियार मिला है। यह सभी आज से लगभग पाँच से छः लाख वर्ष पहले की है। इनमें से अधिकांशत: कुल्हाड़ी चाकू इत्यादि है। विद्वानों के मतानुसार हुसंगी में भी पत्थर का हथियार बनता था। नाले का पानी विभिन्न प्रकार के जंगली जीव-जन्तु एवं पेड़-पौधे इस अंचल (क्षेत्र) में था। सम्भवत: इसी कारण इस स्थान का चुनाव आदिमानव ने किया था।

पत्थर से हथियार बनाने की पद्धति धीरे-धीरे बदल रही थी। हथियार धीरे-धीरे हल्का, छोटा और नुकीले हो रहे थे। एक बड़े पत्थर पर प्रहार करके उनके नुकीले अंश को बनाया जाता था। उस छोटे एवं हल्के नुकीले भाग को हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता था। जिसके परिणाम स्वरूप भारी नूड़ी पत्थर का प्रयोग कम होने लगा। **पत्थर का हथियार बनाने के कौशल के इसी अंतर से ही प्राचीन पत्थर (पाषाण) युग के विभिन्न भाग को अलग किया जाता है।** प्राचीन पत्थर (पाषाण) युग के मध्य तक छूरी एक प्रधान हथियार था। प्राचीन पत्थर युग के अंत तक इस प्रकार के छूरी (चाकू) का प्रयोग होता था।

२.२.२ उपमहादेश में मध्य पत्थर युग (पाषाण युग)

इसके बाद तो मध्य पत्थर युग में और भी अधिक उन्नत पैमाने का हथियार बनाया गया। इस समय के छूरी (चाकू) पहले की तुलना में काफी छोटा और नुकीला हो गया था। इसलिए उसे छोटा पत्थर का हथियार कहा जाता है लगभग ईसा०पू० दस हजार साल के लगभग उपमहादेश में मौसम गर्म होना शुरू किया। जिसके कारण पहले से गर्म मौसम मनुष्य को रहने के लिए अच्छा परिवेश तैयार किया था। मध्य पत्थर युग में छोटे हथियार को पेड़ो की डाल के साथ जोड़ या बांधकर रखा जाता था। जिससे कि हथियार पकड़ने में सुविधा हो। उत्तर प्रदेश के महादहा, मध्यप्रदेश का आदमगढ़ इत्यादि क्षेत्रों में इस युग के मनुष्यों का हथियार मिला है।

उत्तर प्रदेश के सरयू नहर के राई के दोनों किनारे धारदार छूरी (चाकू) पाया गया है। इसके अलावा हड्डी से तैयार तीर और भाले भी मिला है। विभिन्न प्रकार के पशुओं की हड्डी भी वहाँ पर है। जानवरों के मांस को भूनने के लिए आग का प्रयोग किया जाता था। भेड़ अथवा बकरी इत्यादि किसी भी प्रकार के पशु की हड्डी वहाँ

कुछ बातें

टैरो-टैरो

यूरोप के स्पेन में एक पहाड़ी इलाका आल-तमिरा है। वहाँ पर कुछ प्राचीन गुफा की खोज मिली है। एक पुरातत्ववेता अपनी छोटी लड़की को लेकर गुफा देखने गए थे। उनके हाथ में लाईट थी। अचानक लड़की टैरो-टैरो अर्थात् साँड़-साँड़ करके चिल्लाने लगी। वहाँ देखा गया कि गुफा के छत्त के ऊपर एक विशाल साँड़ का चित्र है। प्राय: ५० से ६० हजार वर्ष पहले के गुफावासी द्वारा बनाएं गये चित्र है।

नहीं मिली है। इसके यह पता चलता है कि आदिमानव उस समय भी शिकारी थे। सरयू नहर के राई पर जाँता जैसा यंत्र देखा गया। खाद्य गुड़ा करने के लिए इस जाँता का प्रयोग किया जाता था। लेकिन सरयू नहर के बाहर के लोग भी जंगल से खाद्य लाकर जाँता में पीस लेते थे। लेकिन वे उत्पादन करना नहीं जानते थे। इस प्राचीन क्षेत्र में आदिमानव की समाधि और कंकाल पाया गया है। महादहा में भी समाधि पायी गयी है। वहाँ के कंकालों से यह जानकारी मिलती है कि कम उम्र में वे सभी मारे गए थे।

नर्मदा घाटी आदमगढ़ में आठ हजार वर्ष पुराना जंगली पशुओं की हड्डी मिली है। साथ ही साथ कुछ पालतू पशु और कुत्ते की हड्डी पर आघात (चोट) के निशान नहीं है। अर्थात् उसे मारा नहीं गया था। इससे यह पता चलता है कि आदमगढ़ के मनुष्य पशुपालन करना सीखे थे, लेकिन वे भी शिकार करके ही भोजन प्राप्त करते थे।

पशुपालन के फलस्वरूप भोजन और दूध ज्यादा मिलता था। फलस्वरूप उसे रखने के लिए बर्त्तन की आवश्यकता पड़ी। हो सकता है कि झूड़ी जैसा कुछ मिट्टी ढालकर हाथ से लेप लगाकर मिट्टी का बर्त्तन बनाया जाता था। कुम्हार के चक्के का तब तक विकास नहीं हुआ था।

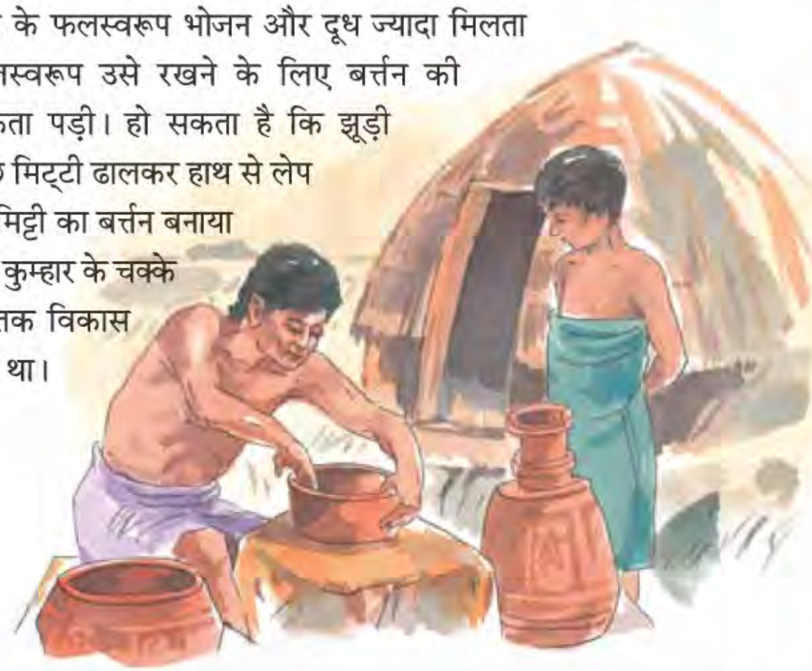

२.२.३ उपमहादेश में नवीन पत्थर युग (पाषाण युग)

आदिमानव के इतिहास में नवीन पत्थर का युग अनेक दृष्टिकोण से नया था। पत्थर से हथियार बनाने के कौशल में काफी उन्नति हुई थी। विभिन्न प्रकार के पत्थर के हथियार बनाना शुरू हुआ। साथ ही साथ छोटे पत्थरों के हथियार भी इस समय प्रयोग किया जाता था। इस पर्याय में पहले आदिमानव कृषि कार्य सीखा। जिसके परिणाम स्वरूप वे स्वंय अपने लिए खाद्य उत्पादन आरम्भ किया। नवीन पत्थर युग (पाषाण युग) में शिकार करने अथवा पशु को चराने के लिए पुरूष समूह बनाकर जाते थे। महिला बच्चों की देखभाल करती थी।

कुछ बातें

बागोड़

राजस्थान के बागोड़ में आदिमानव के बस्ती के चिह्न मिले है। पहले पहल बागोड़ के निवासी शिकार करके ही भोजन इकट्ठा करते थे कुछ-कुछ पशु-पालन का कार्य भी वे जानते थे बागोड़ में कुछ पशुओं की हड्डी मिली है। इससे ही अनुमान लगाया जाता है कि बाद में गृहपालन की संख्या काफी बढ़ी थी। साथ ही साथ शिकार करने वाले पशुओं की संख्या भी धीरे-धीरे कम होती गयी। अर्थात् बागोड़ के लोग धीरे-धीरे गृहपालित (पालतू) पशुओं के महत्त्व का समझ गए थे। अगर इस तरह देखा जाए तो बागोड़ में शिकार और पशुपालन दोनों ही होता था।

चित्र २.४ : विभिन्न पत्थर युग अथवा पाषाणयुग में आदिमानव के हथियार

कंदमूल का जुगाड़ करती। इस तरह एक समय पेड़-पौधो को देखकर-देखकर महिलाएँ समझ गयी कि कैसे बीज से चारा, और चार से पेड़ बनता है। उस समय केवल भोजन की ही तलाश नहीं, बल्कि वे भोजन बनाना भी सीखे। मनुष्य कृषि कार्य सीखी। कृषि-कार्य शुरू होने के फलस्वरूप कृषि अंचल (क्षेत्र) में ही स्थायी बस्ती बनाकर वे रहना शुरू किए। इससे ही खेती के नजदीक बस्ती बनाने के महत्त्व से परिचित होते है। शिकार और पशुपालन के लिए मनुष्य को विभिन्न जगहों पर इधर - उधर घूमना पड़ता था। कृषि कार्य शुरू होते ही इधर - उधर घूमना बंद हो गया। इसके अलावा कृषि कार्य ने खाद्य उत्पादन को निश्चित किया। शिकारी की भाँति यह अनिश्चित नहीं है। फलस्वरूप यायावर मनुष्य धीरे-धीरे कृषि और स्थायी बस्ती बनाने की ओर अग्रसर हुए। खेती करने के फलस्वरूप पशुपालन भी सहज हो गया। सहजता से भूमि और बिचाली मिल गई, जिससे पालतू पशुओं की संख्या भी बढ़ गई।

शिकार और पशुपालन करके जो मिलता था, उसे समूह के सभी लोग बांटकर लेते थे। इसलिए उस समाज में विशेष भेदभाव नहीं था। तुलनात्मक रूप से कृषि समाज काफी जटील था। उस समाज में जमीन और फसल का बँटवारे एक समान नहीं था। साथ ही साथ खेती में अधिक फसलों की पैदावर होती, फलस्वरूप खेती के बदले कुछ लोग कारीगर अथवा दूसरा कार्य करने लगे। खेती के कार्य में विभिन्न प्रकार के यंत्रों की जरूरत पड़ती थी। पत्थर और लकड़ी से वे सभी यंत्र कारीगर बनाते थे। फलस्वरूप क्रमश: आदिमानव के समाज से जटिल और उन्नत समाज व्यवस्था देखा गया।

अब सोचकर देखिए कि मनुष्य से भी अधिक शक्तिशाली प्राणी अनेक है। लेकिन वह शक्तिशाली प्राणी में अधिकांशत: एक समय गायब हो गए। आप लोग तो डायनाशोर की बातें तो जानते हो। लेकिन मनुष्य आज भी ठीक है। दूसरे प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य ने काफी उन्नति की है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार टीके और उन्नति करना कैसे सम्भव हुआ। इसके लिए मनुष्य की संस्कृति ही उत्तरदायी है। संस्कृति कहने से सब लोग नृत्य, गीत, पोशाक, शिल्प-साहित्य समझते है, लेकिन संस्कृति शब्द का एक और पहलू है।

भोजन नींद यह सब मनुष्य के शरीर के लिए जरूरी है। इसके अलावा मनुष्य विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलाप करते है। वह सभी क्रिया-कलाप भी संस्कृति के भाग है। इस तरह कहा जाए तो आदिमानव की भी संस्कृति थी। पत्थर के भोथर हथियार बनाना भी उसी संस्कृति के अन्तर्गत आता है। संस्कृति के कारण ही जिस किसी भी परिवेश में मनुष्य अपने आप को ढाल लेते है। शील, वर्षा और गर्मी सभी अवस्था में ही मनुष्य टीके रहना सीख लिया है। प्रकृति और परिवेश को मनुष्य अपने अनुसार प्रयोग कर सकते है। इसे प्रयोग करने की पद्धति भी मनुष्य की संस्कृति के अन्तर्गत पड़ती है। कहा जा सकता है कि हर समय सभी समाज में कोई न कोई संस्कृति अवश्य थी।

जैसा कि मान लीजिए, एक समय पृथ्वी पर काफी ठण्ड थी। पशु-पक्षियों की भाँति मनुष्य को भी उस ठण्ड से कष्ट होता था। उस समय मनुष्य ठण्ड से बचने के लिए पेड़ की छाल को पहनना शुरू किया। कभी-कभी तो वे मरे हुए पशुओं का चमड़ा भी पहनते थे। इस प्रकार ठण्ड से बचने के लिए छाल और चमड़ा से शरीर ढकने का जो उपाय सोचा या निकाला मनुष्य ने, वह भी तो संस्कृति के ही भाग है।

लेकिन **संस्कृति से सभ्यता** अलग है। भारतीय उपमहादेश के नवीन पत्थर युग (पाषण युग) में स्थायी बस्ती देखा गया। इसके साथ धीरे-धीरे सभ्यता के विभिन्न वैशिष्ट्य भी मनुष्य की जीवन यात्रा में देखने को मिला। आदिमानव का इतिहास, सभ्यता के इतिहास की ओर जाने लगा।

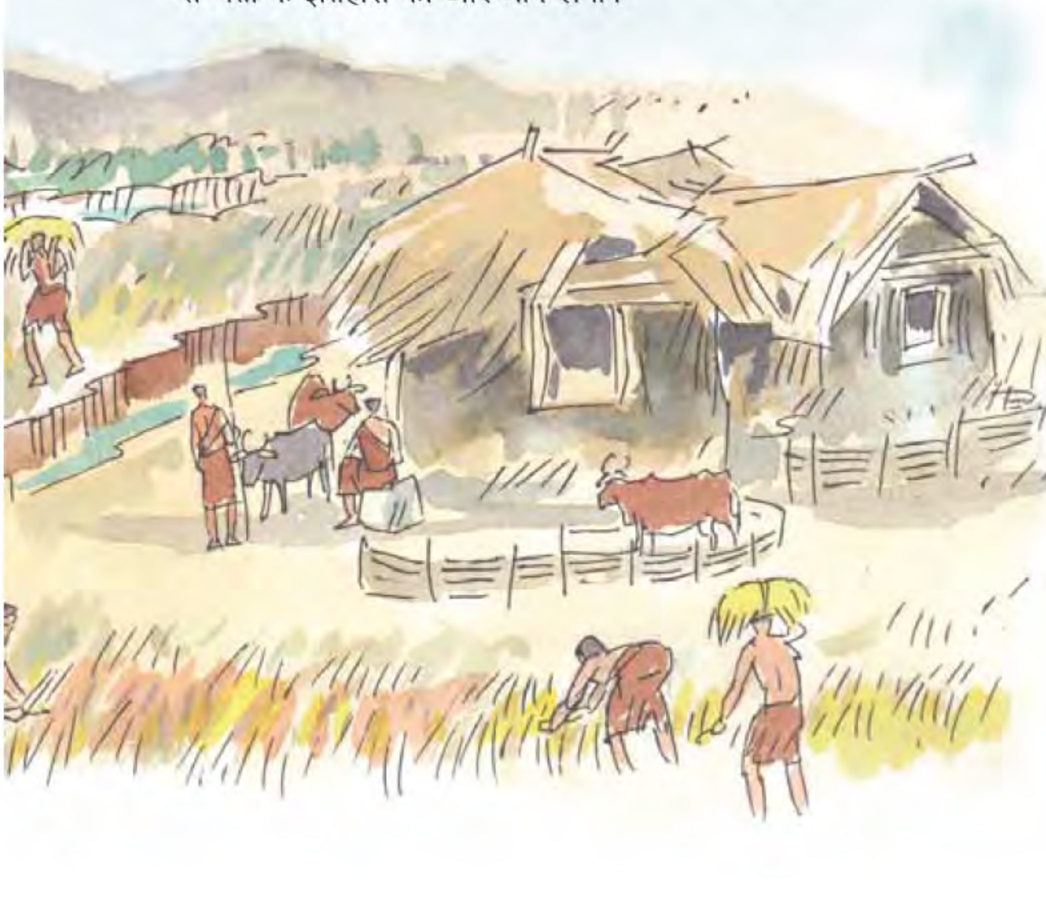

मानचित्र २.१ : भारतीय उपमहादेश के आदिमानव की प्रथम बस्ती।

मानचित्र २.२ : भारतीय उपमहादेश के प्राचीन पत्थर (पाषाण युग) की बस्ती।

???

सोचकर देखो

प्राचीन पत्थर के युग से नवीन पत्थर के युग तक मनुष्य के जीवन-यापन के लिए कौन-कौन सी विषय वस्तु जरूरी हो गई ? उसकी एक तालिका बनाओं

सोचकर देखो

ढूढ़कर देखो

१. **सठीक शब्दों का चुनाव करके रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**

१.१ आदिमानव पहले — (बनाया हुआ भोजन / जला मांस / कच्चा माँस और कंदमूल फूल) खाते थे।

१.२ आदिमानव का पहला हथियार — (भोथर पत्थर / हल्का नुकीला पत्थर / पत्थर का कुल्हाड़ी) था।

१.३ आदिमानव का पहला जरूरी आविष्कार — (धातु / चक्का / आग) था।

२. **'क' स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ को मिलाकर लिखिए :**

'क' स्तम्भ	'ख' स्तम्भ
कृषि कार्य	मध्य प्रदेश
पशुपालन	नवीन पत्थर युग
भीमबेटका	प्राचीन पत्थर युग
हुसंगी	कर्नाटक

३. **अपनी भाषा में सोचकर लिखों (तीन / चार लाईन) :**

३.१ आदिमानव यायावर क्यों थे ?

३.२ आग जलाना सीखने के बाद आदिमानव को क्या-क्या सुविधा मिली ?

३.३ आदिमानव ने क्यों समूह बनाया था ? इसके कारण उन्हें क्या लाभ मिला था ?

४. **स्वयं करों :**

४.१ बगल वाले चित्र में मनुष्य के प्रत्येक स्तर पर क्या-क्या परिवर्तन देखा जा रहा है ?

४.२ बगल वाले दोनों चित्रों में से आदिमानव द्वारा पत्थर का हथियार बनाने की पद्धति के बारे में क्या ज्ञात होता है ?

३ भारतीय उपमहादेश के प्राचीन इतिहास की धारा

प्रथम पर्याय : लगभग ईसा पूर्व ७०००–१५०० तक

इतिहास में क्या केवल पत्थर की ही बातें रहती है। रीनी को यह बिल्कुल ठीक नहीं लगता है। केवल विभिन्न प्रकार के पत्थरों के हथियार की बातें। रूबी के दादाजी ने एकदिन कहा, पत्थर को लेकर इतनी चिंता क्यों है? पत्थर में भी इतिहास की बातें लिखी रहती है। लेकिन पत्थर का इतिहास ही सब कुछ नहीं है। उसके साथ मनुष्य का जीवन भी जुड़ा हुआ है। यह सुनकर सभी शांत होकर बैठे गए। दादाजी ने फिर इतिहास की कहानी कहना शुरु किए।

भोजन के लिए भूखा होकर इधर–उधर घूमने वाले मनुष्य एक समय स्थायी रूप से रहना सीखा। अपने लिए खाद्य का उत्पादन करना स्वयं सीखे इसके लिए उन्होंने कृषि कार्य आरम्भ किया। इसके साथ ही साथ पशुपालन भी करने लगे। पत्थर युग के अंतिम समय में स्थायी बस्ती, कृषि कार्य एवं पशुपालन के जरिए मनुष्य की जीवन यात्रा शुरु हुई, इसी तरह से ही समय–समय पर मनुष्य के जीवन यापन के विभिन्न पहलू बदल गया।

लेकिन यह बदलाव मनुष्य के स्वयं की जरुरत के अनुसार ही हुआ। अपनी वृद्धि और परिश्रम के कारण ही मनुष्य में यह बदलाव आया। इसी तरह से एक समय आदिमानव सभ्य हो गए। लेकिन आदिमानव से सभ्य होने के लिए उन्हें अनेक चरणों (पहलू) से गुजरना पड़ा। जैसे नवीन पत्थर (पाषाण) युग में खेती के कार्य में व्यस्त लोगों के लिए स्थायी तौर पर वासस्थान (बस्ती) और खेती के जमीन की आवश्यकता पड़ी। उस समय खेती की जमीन का परिमाण जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे जमीन की भी मांग बढ़ती गयी। वे अपनी इच्छानुसार जंगलों की सफाई करके कृषि जमीन को ढूढ़ निकालते थे। जिसकी जितनी जमीन होती थी, उतनी ही उसकी फसल भी होती थी। इसी प्रकार से जमीन को लेकर लड़ाई शुरु हुई। समूह बनाकर रहने वाले मनुष्यों में स्वयं में मतविरोध की भावना देखी गई। लेकिन स्वयं में विवाद (मतविरोध) को लेकर एक साथ रहना सम्भव नहीं था, इसलिए उन्होंने स्वयं ही विवाद का समाधान किए। तय हुआ कि सभी नियम मानकर ही चलेगे। इस तरह से उस समय नियम अथवा नियम का शासन आरम्भ हुआ।

धीरे-धीरे सभ्य मनुष्यों में विभिन्न वस्तुओं की मांग बढ़ी। इसके अलावा आवश्यकता अनुसार सभी वस्तु एक मनुष्य तैयार नहीं कर पाता है। इसलिए पहले वस्तु को देकर वस्तु को लेने की प्रथा शुरु हुई। इसके बाद उस काल की मुद्रा आई, जिसके कारण वस्तुओं की खरीद-बिक्री सहज हो गई।

उसी पत्थर युग से मनुष्य एकजूट होना शुरु किया था। इसके बाद समाज बना। समाज में मनुष्य विभिन्न प्रकार के कार्य में व्यस्त रहते थे। वहाँ पर कार्य के आधार पर मनुष्य के विभिन्न भाग (श्रेणी) तैयार हुआ। एक समय जब मनुष्य लिखना सीखा, तो उसकी जरुरत के लिए 'वर्ण' अथवा 'लिपि' आया। उस समय मनुष्य केवल ग्राम में ही नहीं, नगर में भी रहते थे। इसी तरह से ग्राम और नगर को केन्द्र करके सभ्यता का विकास हुआ। आदिमानव के युग से इतिहास सभ्यता के युग में आ पहुँचा।

शिक्षिका ने कहा, मनुष्य ने स्वयं खाद्य का उत्पादन करना सीखा। एक स्थान पर स्थायी तौर से निवास करना भी आरम्भ किया। लेकिन सभ्यता के विकास के लिए इसके साथ ही और भी बहुत सारे विषय भी होना जरुरी है। ग्राम और नगर का भी रहना होगा। शासन व्यवस्था होनी चाहिए। शिल्प और स्थापत्य का नमूना (उदाहरण) सभ्यता की एक महत्वपूर्ण पहलू है। इतना ही नहीं लिपि का व्यवहार भी सभ्य मनुष्य को जानना होगा। लिपिमाला का प्रयोग ही सभ्यता की सबसे बड़ी कुंजी है। सभ्यता कहने पर एक और जीवन यापन में उन्नति को समझाया जाता है। उदाहरण के तौर पर जब मनुष्य ने लिखना सीखा अथवा गुफा के बदले पक्का मकान बनाना सीखा। फिर जब पत्थर के बदले धातु का प्रयोग सीखा।

याद रखों
नवीन पत्थर युग के अंत में चक्के का प्रयोग शुरु हुआ।

यह सब ही उन्नति के चिह्न है। यह सभी सभ्यता के विभिन्न पहलू हैं। वही एक-एक भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर एक-एक सभ्यता का विकास हुआ। इसलिए मेहरगढ़, हड़प्पा सभ्यता का नामकरण हुआ है।

ईसा पूर्व के तृतीय शताब्दी में भारतीय उपमहादेश में नगर सभ्यता का विकास हुआ। आदिम समूह के समाज में सभी में एक प्रकार की समता की अवधारणा थी। नगर सभ्यता में यह समता का भाव नहीं था। शासक समूह तैयार हुआ। जो पूरे समाज पर शासन करता था। वही दूसरा समूह धर्मीय कार्यक्रम अथवा यज्ञ करते थे। इसी तरह से समाज में विभिन्न प्रकार का भेद-भाव उत्पन्न हुआ। यह भी सभ्यता का एक वैशिष्ट्य (विशेषता) है।

आदि समूह समाज में खून के सम्पर्क और आत्मीयता के आधार पर समूह बनाते थे। वही दूसरी ओर सभ्यता का एक दूसरी विशेषता यह है कि दूसरे के साथ सुख सुविधा के लिए समूह बनाना अथवा समझौता करना। जैसे हड़प्पा सभ्यता को ही ले लिया जाए। जो व्यक्ति समूह बनाते थे, उसे ब्रोंज के यंत्रो की जरुरत पड़ती थी। ब्रोंज के यंत्रों को ब्रोंज के कारीगर बनाते थे। वही पत्थर को गर्म करने के लिए बर्तन की आवश्यकता पड़ती थी, उस बर्तन को कुम्हार तैयार करते थे। इस तरह से माला बनाने वाले कारीगर को ब्रोंज कारीगर और कुम्हार के ऊपर निर्भरशील होना पड़ता था। यह पारस्परिक निर्भर करना ही सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता है।

वही ग्राम और नगर के आस-पास टीके रहना भी सभ्यता के लिए जरुरी है। नगर के निवासी ग्राम के फसल के ऊपर ही निर्भरशील रहते थे। इसी प्रकार से नगर और ग्राम को आधार करके भारतीय उपमहादेश में हड़प्पा सभ्यता का विकास हुआ। लेकिन कोई भी सभ्यता अचानक विकसित नहीं हो पाती है। उसके पीछे भी इतिहास ही रहता है। इसके बाद हम भारतीय उपमहादेश के प्राचीन सभ्यता के बारें में जानकारी हासिल करेंगे।

३.२ मेहरगढ़

नवीन पत्थर युग की बातों को आप लोग पहले ही जान गए होंगे। भारतीय उपमहादेश में नवीन पत्थर युग मनुष्य के जीवन-यापन में कुछ नवीन विषय भी जुड़ित हुआ था। एक ओर जहाँ कृषि कार्य आरम्भ हुआ, तो दूसरी ओर पत्थर के साथ-साथ धातु का प्रयोग भी शुरु हुआ। उस समय धातु कहने पर केवल ताँबा और काँसा का प्रयोग ही समझा जाता था। लोहा का प्रयोग उस समय नहीं हुआ था। ताँबा और पत्थर दोनों का व्यवहार होने के कारण ही इस समय को ताँबा-पत्थर (पाषाण) युग कहा जाता है।

यहाँ के पाकिस्तान के बेलुचिस्तान प्रदेश के मेहरगढ़ में ताँबा-पत्थर युग (पाषाण युग) का एक प्राचीन केन्द्र का खोज मिला है। मेहरगढ़ बोलान गिरीपथ से कुछ दूरी

पर स्थित है। वहाँ पर मूलतः कृषि निर्भर सभ्यता की खोज मिली हैं। वह समय १९७४ ईसा के बाद था। फ्रांस पुरातत्ववेता जाँ फ्राँसोया जारिज मेहरगढ़ सभ्यता का आविष्कार किए थे। इस सम्बंध में उन्हें रिचार्ड मेडो ने सहायता प्रदान किए थे।

ईसा पूर्व ७००० से ईसा पूर्व ५००० साल तक मेहरगढ़ सबसे पुराना (प्राचीन) पर्याय था, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। इस पर्याय में वहाँ के मनुष्य गेहूँ और जौ की खेती करना जानते थे। बकरी, भेड़ और साँड़ पालतू पशु था। पत्थर से तैयार जाँता और खाद्य पीसने का यंत्र मेहरगढ़ में मिला था। पत्थर की छूरी (चाकू) और पशुओं की हड्डी से यंत्र भी इस पर्याय में मेहरगढ़ के मनुष्य बनाते थे। लेकिन किसी धातु से तैयार कोई वस्तु इस समय नहीं मिला था।

मेहरगढ़ के कच्चे मकान में धूप में सुखाए हुए ईटों का व्यवहार देखा जाता है। उन घरों में एक से अधिक घर होते थे। कुछ इमारत तो साधारण घर से काफी बड़े थे। पुरातत्वकार ऐसा अनुमान लगाते है कि उनमें से खाद्य सुरक्षित रखा जाता था। उपमहादेश में सबसे पुराना खाद्य रखने का घर मेहरगढ़ में पाया गया था।

मेहरगढ़ सभ्यता का द्वितीय पर्व (चरण) लगभग ईसा पूर्व ५००० से ईसा पूर्व ४००० साल तक माना जाता है। गेहूँ और जौ के साथ-साथ इस कार्पस खेती का भी प्रमाण मिला है। अभी तक पृथ्वी पर सबसे प्राचीन कार्पस खेती का नमूना मेहरगढ़ में ही पाया गया है। मेहरगढ़ में पाया गया पत्थर का हँसुआ भारतीय महादेश में हँसुआ का प्रयोग सबसे पुराना प्राचीन हथियार है। इस पर्याय तक मेहरगढ़ में मिट्टी का बर्तन तैयार होता था। पहले पहले तो बर्तन हाथों से बनाया जाता था, क्योंकि तब तक कुम्हार चरखे का प्रयोग शुरु नहीं किया था। इस समय के अंत तक कुम्हारों द्वारा चरखे से तैयार बर्तन देखने को मिलता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के पत्थर और शाँख से गहना बनता था। शाँख और पत्थर मेहरगढ़ के बाहर से भी आते थे।

लगभग ईसा पूर्व ४३०० से ईसा पूर्व ३८०० साल तक मेहरगढ़ सभ्यता का तीसरा पर्व (चरण) माना जाता है। इस समय विभिन्न प्रकार के गेहूँ एवं जौ की खेती होती थी। कुम्हार के चरखे से मिट्टी के बर्तन बनाने का कौशल इस समय तक चारों ओर फैल चुका था। बर्तनों को चूल्हों पर जलाकर उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के नक्शे और चित्र बनाया जाता था। एक रंग की तरह, दो रंग अथवा विभिन्न रंगों की मिट्टी का बर्तन मिलता है।

बस्ती के रूप में मेहरगढ़ का आयतन बढ़ा था। इस पर्याय में नियमित तौर पर ताँबा का प्रयोग शुरु हुआ था। लेकिन आकरिक से प्रयोग के लिए ताँबा निकालना सहज नहीं था।

चित्र ३.१ : मेहरगढ़ में पायी गयी नारी मूर्ति

कुछ बातें

मेहरगढ़ की समाधि

मेहरगढ़ सभ्यता की महत्त्वपूर्ण विशेषता समाधि स्थल है। समाधि में मृतदेह को सीधा अथवा घुमाकर सुला दिया जाता था। मृतक के साथ विभिन्न प्रकार की वस्तु दी जाती थी। जैसे : शंख अथवा पत्थर का गहना कुदुल इत्यादि। इसके अलावा समाधि में विभिन्न प्रकार के पालतू पशु को भी दिया जाता था। समाधि में बहुमूल्य पत्थर भी मिले है। मृतको को लाल कपड़े में लपेटकर एवं लाल रंग लगाकर समाधि दिया जाता था।

फलस्वरूप पत्थर से बनी वस्तुओं का प्रयोग भी जारी था। इस समय मेहरगढ़ में सीलमोहर का प्रयोग आरम्भ हुआ था। सब मिलाकर ग्रामीण कृषि समाज और भी जटिल रूप धारण किया हुआ था। मेहरगढ़ में उस बदलाव का चिह्न पाया गया है। इस बदलाव का चिह्न पूरी तरह से हड़प्पा सभ्यता में और भी अधिक स्पष्ट हो गया।

चित्र ३.२ : मेहरगढ़ ग्राम के ध्वंशावशेष

मानचित्र ३.१ : भारतीय उपमहादेश के नवीन पत्थर (पाषाण) युग के ग्रामीण बस्ती का प्रथम चरण (उत्तर-पश्चिम भाग)

३.३ हड़प्पा सभ्यता की बातें

१९१२ ईसा पूर्व में हड़प्पा और १९२२ ईसा पूर्व में मोहनजोदड़ो केन्द्र में दो आविष्कार किया गया। यह दोनों ही केन्द्र सिंधु घाटी में है। इसलिए आरम्भ में इस सभ्यता का नाम सिंधु सभ्यता था। लेकिन बाद में सिंधु घाटी के बाहर भी इस सभ्यता के बहुत सारे केन्द्रों की खोज मिली है। उन सभी केन्द्र को सिंधु नदी की घाटी का केन्द्र कहना उचित नहीं है। फलस्वरूप हड़प्पा के नाम पर ही इस सभ्यता का नाम हड़प्पा सभ्यता हुआ। क्योंकि वहाँ पर इस सभ्यता के प्रथम केन्द्र का आविष्कार हुआ था। इसके अलावा हड़प्पा ही इस सभ्यता का सबसे बड़ा केन्द्र था।

कुछ बातें

हड़प्पा आविष्कार की बातें

समय १८२६ ईसा पूर्व का था। उस समय पंजाब प्रदेश के साहिवाल जिला में चार्ल्स मैसेन गए थे। मैसेन की धारणा यह थी कि वहाँ पर भी ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में अलेकजेण्डर के साथ पुरू का युद्ध हुआ था। लेकिन उस समय तक इस क्षेत्र (अंचल) के महत्त्व को कोई भी नहीं जानते थे। १८५० ईसा पूर्व के प्रति उनका उत्साह था। उन्होंने इस क्षेत्र में खुदाई करवाकर कुछ वस्तुओं को प्राप्त किया था। लेकिन तब तक हड़प्पा के बारें में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं हुई थी।

१८७२ ईसा पूर्व में भारतीय पुरातत्व विभाग के प्रधान के रूप में फिर कानिंगहाम हड़प्पा गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि ईंटों का प्रयोग रेललाईन बनाने के लिए किया गया था। वहाँ से कालिंगहाम को बहुत सारे बर्तन मिले, इतना ही नहीं उन्हें सीलमोहर भी मिले। जिसमें अज्ञात अक्षरों में कुछ खुदाई किया हुआ था। कानिंगहाम इस बार भी हड़प्पा सभ्यता के महत्त्व को समझ नहीं पाए।

बीसवीं शताब्दी के अंत तक हड़प्पा विषय को लेकर विशेष उत्साह नहीं था। अंत में १९२० ईसा पूर्व में दयाराम साहनी ने हड़प्पा में फिर से खुदाई का काम शुरु किया। उसके अगले वर्ष राखालदास बंदोपाध्याय ने मोहनजोदड़ों में खुदाई का काम शुरु किया। १९२४ ईसा पूर्व में जॉन मार्शल ने हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के विषय पर विस्तारित विवरण प्रस्तुत किया। मैसनेर के समय से अगर हम माने तो उस समय लगभग एक सौ युद्ध हुआ उसके बाद से ही।

हड़प्पा सभ्यता प्राय–इतिहास युग की सभ्यता। क्योंकि हड़प्पा के लोग लिखना नहीं जानते थे। लेकिन उस लिखावट को आज भी नहीं पढ़ा जा सका है। इसलिए पुरातत्व के ऊपर निर्भर करके ही हड़प्पा सभ्यता के इतिहास को जानना पड़ता है। इस सभ्यता के लोग ताँबा और ब्रोंज धातु का प्रयोग जानते थे। इसलिए इसे ताँबा और ब्रोंज युग की सभ्यता कहा जाता है। ताँबा–ब्रोंज युग की सभ्यताओं में हड़प्पा सभ्यता ही सबसे बड़ी सभ्यता थी। ईसा पूर्व २६०० से ईसा पूर्व १८०० तक हड़प्पा सभ्यता के विकास का समय है। लेकिन पूरी तरह से ईसा पूर्व ३००० से ईसा पूर्व १५०० तक इस सभ्यता का समय सीमा माना जाता है।

हड़प्पा सभ्यता का विस्तार

हड़प्पा सभ्यता कहाँ तक फैला था? साधारण तरीके से कहा जाता है कि जम्मू के माण्डा से भारतीय उपमहादेश हड़प्पा की उत्तर सीमा है। लेकिन उसके भी उत्तर में आफगानिस्तान के एक प्राचीन क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता के कुछ लक्षण देखे गए है। दक्षिण में गुजरात और कच्छ क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता का विस्तार हुआ था। लेकिन और भी दक्षिण में महाराष्ट्र के दैमाबाद क्षेत्र (अंचल) में भी इस सभ्यता के निशान देखने को मिलता है। हड़प्पा सभ्यता की पश्चिम सीमा वर्तमान में पाकिस्तान के बालुचिस्तान तक फैल गया है। वहाँ पर दो महत्त्वपूर्ण प्राचीन क्षेत्र का आविष्कार किया गया था। पूर्व की ओर हड़प्पा सभ्यता के चिह्न आलमगिर तक मिले है। यह क्षेत्र पूरी तरह से दिल्ली के पूर्व की ओर है। प्राय: सात लाख वर्ग किलोमीटर तक हड़प्पा सभ्यता फैला हुआ था।

मानचित्र ३.२ : हड़प्पा सभ्यता के कुछ केन्द्र

नगर परिकल्पना

भारतीय उपमहादेश में हड़प्पा में ही प्रथम नगर तैयार हुआ था। इसलिए इसे प्रथम नगरायण कहा जाता है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा दोनों सबसे बड़ा नगर था। उस तुलना में लोथाल और कालिबंगान छोटा था। हो सकता है कि हड़प्पा सभ्यता के नगरों के क्षेत्र में छोटा-बड़े का अंतर था। महत्त्व विशेष के आधार पर सभी नगर एक समान नहीं था।

हड़प्पा नगरों की बस्ती क्षेत्र को दो स्पष्ट और अलग क्षेत्रों में बाँटा गया था। शहर में एक ऊँचा इलाका रहता था। पुरातत्वकार उसे सीटाडेल कहते थे। यह इलाका एक बने हुए टीवी के ऊपर अवस्थित था। साधारण तरीके से टीवी आयताकार होता था। ऊँचे इलाके में महत्त्वपूर्ण इमारत बनाये जाते थें। इन सब इमारतों में साधारण लोग नहीं रहते थे। नगर की प्रधान बस्ती का इलाका ऊँचे स्थानों पर ही होता था। इन अंचलों के इमारत में अधिकांशत: रहने के घर होते थे। ऊँचे इलाके का नगर प्राय: उत्तर-पश्चिम की ओर रहता था। नीची बस्ती का इलाका पूर्व अथवा दक्षिण-पूर्व भाग की ओर रहता था। एक मात्र चानहूदोड़ो में किसी प्रकार का सीटाडेल नहीं था।

???

सोचकर देखो

इसके पहले आपलोग पत्थर युग के मनुष्य के इतिहास को पढ़े हो। जिससे आप मेहरगढ़ के इतिहास को जान पाए। अब आप हड़प्पा सभ्यता के बारें में जानोंगे। सोचो तो किस प्रकार मनुष्य धीरे-धीरे पत्थर से विभिन्न प्रकार के धातुओं का प्रयोग सीखा था।

सीटाडेल क्षेत्र ऊँची दीवार देकर घिरा रहता था। हड़प्पा नगर उत्तर और पश्चिम की ओर दो ढूकने और निकलने का दरवाजा था। मोहनजोदड़ो के ऊँचे इलाके में एक बहुत बड़ा जलाशय भी था, जो पक्की ईंट से बनाया गया था। ऐसा लगता है कि स्नान करने के लिए इसका प्रयोग होता था। आयताकार जलाशय में उतरने और चढ़ने के लिए सीढ़ी भी बनाया गया था। जलाशय के आस-पास कुछ घर भी देखा गया। इस जलाशय का सम्भवत: नगर के विशिष्ट व्यक्ति ही व्यवहार करते थे।

हड़प्पा सभ्यता के नगर जीवन में खाद्य पदार्थ इकट्ठा करके रखने का एक विशेष महत्त्व था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में खाद्य पदार्थ इकट्ठा करके रखने के लिए दो काफी बड़ी जगह थी। वे प्राय: पक्की ईंट से बनी हुई घरों की भाँति थी। हड़प्पा में खाद्य रखने के घर के भीतर को भागों में बाँटा गया था, जहाँ पर बड़े-बड़े ताँख बनाया गया था। वहाँ पर हवा आने के लिए घुलघुली था। फलस्वरूप खाद्य पदार्थ को सूखा और ताजा रखना सम्भव होता था। इसके अलावा खाद्य की साफ-सफाई की भी व्यवस्था थी। वहाँ पर दो पंक्तियों में छोटे-छोटे घर भी देखे जाते थे। सम्भवत: वहाँ पर जो काम करने जाते थे, वे ही उन घरों में रहते थे।

मोहनजोदड़ो के ऊँचे इलाकों में एक और विशाल इमारत की खोज मिली। ऐसा लगता था कि यह इमारत साधारण लोगों के रहने के लिए नहीं था। इस इमारत में

सम्भवत: किसी बड़े उत्सव का पालन करने के लिए प्रयोग किया जाता था। ढोलाबिया नगर के सीटाडेल इलाके में एक जलाशय भी देखा गया।

नगर के नीचे के क्षेत्र में मूल बस्ती होती थी। घरों के विभिन्न प्रकार के आकार भी देखे जाते थे। मोहनजोदड़ो में प्राय: ३०० वर्ग मीटर आयतन का एक इमारत मिला है, जिसमें २७ घर और एक आंगन भी था और एक बड़े घर के ऊपर उठने के लिए सीढ़ी टूटी हुई अवस्था में मिली है। इस घर में अनेक मंजिला था। इस प्रकार के बड़े घर में बड़े लोग ही रहते है, ऐसा अंदाज लगाया जाता था।

रहने वाले घरों में से कुछ घर में एक रसोईघर भी था। ऐसा लगता था कि इस घर के निवासी का एक ही रसोई घर था। हो सकता है कि हड़प्पा सभ्यता में संयुक्त परिवार हो। छोटे घरों को देखकर ऐसा लगता था कि उन घरों में गरीब लोग ही रहते थे। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हड़प्पा नगर के जीवन में धनी-गरीब का भेद-भाव था।

हड़प्पा सभ्यता के नगर जीवन की एक महत्त्वपूर्ण पहलू शौचागार और स्नानागार भी था। इससे यह पता चलता है कि नगर प्राय: साधारण तरीके से स्वच्छ था। मोहनजोदड़ो के नीचे इलाके में रहने वाले दो हजार घरों के लिए अंतत: २७ कुँए थे। हड़प्पा में इतना कुंआ न होने के बावजूद प्रत्येक घर में शौचालय था। पक्की नर्दमा से जल निकासी की व्यवस्था थी। बड़े नर्दमा ढंका हुआ रहता था। प्रत्येक घर से निकलकर छोटा नाला बड़े नर्दमा में मिल जाता था। उन्नत नगर शासन का नमूना जल निकासी व्यवस्था थी।

???

सोचकर देखो

हड़प्पा सभ्यता में इकट्ठा करके रखने की व्यवस्था क्यों थी? क्या आज भी आप खाद्य, भोजन को इकट्ठा करने की जगह को क्या देख पाते हो?

कुछ बातें

मोहनजोदड़ो का स्नानागार

स्नानागार स्नान करने की जगह है। एक स्नानागार की खोज मोहनजोदड़ो में पाया गया। उसकी लम्बाई १८० फुट एवं चौड़ाई १०८ फुट है। उसके चारों ओर ८ फुट ऊँची ईंट की दीवार है। इसी के बीचों बीच एक बड़ा जलाशय था। जलाशय में बाहर का पानी ढूकने का रास्ता कर दिया गया था। अतिरिक्त पानी होने पर उसे निकाल दिया जाता था। इतना ही नहीं बल्कि पानी के साफ-सफाई की भी व्यवस्था थी।

चित्र ३.३ : मोहनजोदड़ो का स्नानागार

शहर के नीचे के इलाके में यातायात के लिए उपयोगी सड़के थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में काफी चौड़ा एवं पक्के रास्ते देखे गए। वह रास्ता साधारण तौर पर उत्तर-दक्षिण की ओर गया था। तुलनामूलक कम चौड़ा रास्ता और पतली गलियाँ पूर्व-पश्चिम की ओर था। रास्ते-घाट की एक प्रकार की परिकल्पना के लिए नगरों का नक्शा चौको (चौड़ाई) के आकार के होते थे। ऐसा लगता है कि हड़प्पा सभ्यता का नगर जीवन काफी उन्नत किस्म का था। उसी उन्नत किस्म को बरकरार रखने के लिए निश्चय ही दक्ष और शक्तिशाली शासन व्यवस्था की जरुरत पड़ती थी। नगर के ऊँचे भाग में सम्भवत: प्रशासक रहते थे।

चित्र ३.४ : हड़प्पा सभ्यता का एक कुँआ।

वाणिज्यिक उन्नति के कारण ही हड़प्पा नगर में व्यापरियों की विशेष मर्यादा थी। इसके बाद विभिन्न प्रकार के कारीगर और पेशा से जुड़ित मनुष्य का स्थान था। ऐसा लगता है कि समाज में मजदूर और श्रमिकों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लेकिन यह सभी नगर में निवास करते थे। नगर के बाहर ग्रामीण इलाकों में कृषिजीवी मनुष्य रहते थे। नगर में प्रत्यक्ष तौर पर खाद्य उत्पादन नहीं होता था। खाद्य पदार्थ के लिए नगरवासियों को ग्राम के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता था। ग्राम में विभिन्न प्रकार के फसलों की खेती होती थी। जैसे :- गेहूँ, जौ, ज्वार-बाजरा विभिन्न प्रकार के दाल, सरसों एवं धान। लेकिन धान की खेती सभी जगह नहीं होती थी। केवल गुजरात के रंगपुर और लोथालेई में ही धान के चिह्न मिलते है। इसके अलावा रूई, तिल इत्यादि फसलों की भी खेती होती थी। राजस्थान के कालिबंगान के एक क्षेत्र में लकड़ी के हल का निशान भी पाया गया है।

कृषि के साथ प्रत्यक्ष तौर पर पशुपालन जुड़ा हुआ था। हड़प्पा के लोग पालतू पशुओं का व्यवहार करना जानते थे। सबसे महत्त्वपूर्ण पालतू पशु था। साँड़, भेड़ और बकरी का भी व्यवहार किया जाता था। ऊँट का व्यवहार करना भी हड़प्पा के लोग

कुछ बातें

हड़प्पा सभ्यता के शासक

मोहनजोदड़ों में एक पुरुष की मूर्ति पायी गयी। उनके बाल धुंधराले, चाप दाढ़ी, आँखे अधखुली सिर और दाहिने बाजू पर एक पत्थर की पट्टी बँधी हुई थी। मूर्ति के बाँए कंधे से एक चादर लटक रहा था। यह मूर्ति किसकी है, इसे लेकर आशंका है। राजा कि या पुरोहित की ? राजा या पुरोहित की मूर्ति ? हड़प्पा में बड़े घर थे, लेकिन क्या वह राजप्रासाद था ? हड़प्पा का शासन कौन चलाते थे ? राजा, पुरोहित-राजा अथवा व्यापारी ? इन सब प्रश्नों का निश्चित समाधान अभी भी नहीं हो पाया है।

जानते थे, लेकिन घोड़ा का व्यवहार करना वे नहीं जानते थे। इसके अलावा इधर-उधर घुमने वाले पशुपालक का समूह भी था। इन्हीं सब को मिलाकर हड़प्पा सभ्यता का समाज बना था।

मूर्तियों को देखकर लोगों के पोशाक, गहना और शृंगार के सम्बंध में अंदाजा लगाया जा सकता है। वे सूती और पशम का वस्त्र व्यवहार करते थे। हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न जगहों पर काफी सोना, चाँदी, ताँबा और हाथी दाँत के गहने पाए गए है।

चित्र ३.५ : हड़प्पा सभ्यता में पाए गए गहने, मिट्टी के बर्तन और बटखारा।

कारीगरी शिल्प

हड़प्पा सभ्यता के अर्थनीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू कारीगरी शिल्प भी था। पत्थर और धातु— इन दोनों का प्रयोग कारीगरी शिल्प में होता था। धातुओं में ताँबा, काँसा और ब्रोंज का प्रयोग किया जाता था। लोहा का प्रयोग करना हड़प्पा के लोग नहीं जानते थे। ताँबा और काँसा से बना छूरी (चाकू) कुल्हाड़ी इत्यादि पाया गया है। मिट्टी और धातु से भी बर्तन बनाए जाते थे। पत्थर से छूरी बनाने का कारखाना भी हड़प्पा सभ्यता में था।

हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन ही उन्नत कारीगरी कला का नमूना था। अधिकांश बर्तन साधारण और प्रतिदिन व्यवहार के लिए था। आग में जलाने के कारण वह लाल रंग का हो गया था। कुछ बर्तनों के ऊपर चमकीले लाल पॉलिश लगाया जाता था। उनके ऊपर चमकने वाले काले रंग का चित्र भी बनाया जाता था। इन बर्तनों को पुरातत्वकार लाल-काला मिट्टी का बर्तन भी कहते है। तुलनामूलक तरीके से हल्का और पतला इन मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग रोजमर्रा के कार्यो में नहीं होता था। मिट्टी से थाली, कटोरा, भोजन बनाने का बर्तन, सुराही इत्यादि बर्तन हड़प्पा सभ्यता में तैयार होता था।

हड़प्पा सभ्यता में कपड़ा बुनने वाला कारीगर भी था। मोहनजोदड़ों में भी पुराने कपड़ा बनाने का उदाहरण मिला है। कपड़े पर सूते से कार्य करने का शिल्प भी हड़प्पा सभ्यता में देखा गया। मोहनजोदड़ो से पाए गए पुरुष मूर्ति के शरीर के पोशाक पर इसका ही नमूना देखने को मिलता है।

ईंट बनाने का शिल्प भी इस सभ्यता की एक महत्त्वपूर्ण कारीगरी पहलू है। कादामिट्टी से ईंट और चूल्हे में जलाया हुआ पक्की ईंट दोनों का व्यवहार करते देखा गया है। लेकिन चूल्हे में जलाया हुआ पक्की ईंट का प्रयोग महत्त्वपूर्ण इमारत बनाने के क्षेत्र में प्रयोग किया जाता था।

हड़प्पा सभ्यता के कारीगरी शिल्प का दूसरा नमूना विभिन्न प्रकार के मालाओं का दाना है। इस माला को बनाने के लिए सोना, ताँबा, शंख, बहुमूल्य-कीमती पत्थर एवं हाथी दाँत इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। चमकदार एवं बहुमूल्य पत्थर भी गहना बनाने के काम में आता था। माला के दाना को बनाने का कारखाना भी हड़प्पा सभ्यता में पाया गया है। सूक्ष्म वजन मापने का बँटखारे की भी खोज मिली थी।

चित्र ३.६ : हड़प्पा सभ्यता में पायी गयी ब्रोंज की नारी मूर्ति।

हड़प्पा सभ्याता में ही सबसे पहले पत्थर और धातू भाष्कर्य का नमूना देखा गया। साथ ही साथ जली हुई मिट्टी के भाष्कर्य का भी नमूना देखने को मिला है। एक ब्रोंज से बनी नारी मूर्ति भी मोहनजोदड़ों से पाया गया। शिल्प की दृष्टिकोण से यह कापी महत्त्वपूर्ण है। ब्रोंज से बने कुछ पशुओं की मूर्ति भी हड़प्पा सभ्यता में पाया गया। लेकिन जली हुई मिट्टी से बनी मूर्तियों की संख्या ज्यादा थी। नारी मूर्ति, पशु और पक्षी की मूर्ति बनाने में जली हुई मिट्टी का प्रयोग किया जाता था। जली हुई मिट्टी से बनी बंदर की मूर्ति भी पायी गयी है, लेकिन वह सम्भवत: खिलौना था।

लेकिन इतने प्रकार के कारीगरी शिल्प के लिए जरुरी कच्चा माल कहाँ से आता था ? सम्भवत: सभी कच्चे माल तो हड़प्पा सभ्यता में नहीं मिलते थे। विभिन्न इलाको से विभिन्न प्रकार के कच्चे माल को लाया जाता था। कच्चे माल को लाना ही हड़प्पा सभ्यता के व्यवसायियों का प्रधान कार्य था। इस कार्य के लिए हड़प्पा सभ्यता का सीलमोहर अवश्य ही प्रयोग होता था। इस सभ्यता के इतिहास को जानने के लिए यह सीलमोहर काफी महत्त्वपूर्ण है।

कुछ बातें

हड़प्पा सभ्यता के सीलमोहर

चित्र ३.७ : हड़प्पा सभ्यता में पाए गए एक सीलमोहर

हड़प्पा सभ्यता के पुरातत्वकारों बहुत सारे सीलमोहर मिला है। सीलमुहरों पर लिपि और प्रतीक चिह्न की खुदाई की जाती थी। अधिकांशत: हड़प्पा के सीलमोहर एक प्रकार के नरम पत्थरों को काटकर बनाया जाता था। अधिकांश सीलमोहर पर एक उल्टा नक्शा की खुदाई किया जाता था। यह नक्शा साधारणत: किसी जीव–जन्तु का था। उसके साथ ही उस पर लिपि की भी खुदाई होती थी। भींगे कादा मिट्टी से इस सीलमोहर का छाप देने पर वह सीधा पड़ता था। सीलमोहर को बनाने के बाद उसमें एक प्रकार का सफेद पदार्थ लगाया जाता था। इसके बाद उसे जलाया जाता था। फलस्वरूप बहुत शीघ्र ही सीलमोहर कठोर हो गया। अधिकांश सीलमोहर में एक सिंग एक काल्पनिक प्राणी का निशान देखा जाता था। इसके अलावा दूसरे निशान भी सीलमोहर पर है। सिंग वाला मनुष्य, साँड़, पेड़ और ज्यामितिक नक्शों की खुदाई किया हुआ सीलमोहर भी पाया गया। सीलमोहर से हड़प्पा की अर्थनीति और धर्म विश्वास विषय के बारें में भी जानकारी मिलती है।

हड़प्पा का वाणिज्य

हड़प्पा सभ्यता के तेईस सीलमोहर मेसोपोटामियाँ में पाया गया। इससे यह समझा जा सकता है कि इन दोनों सभ्यता में वाणिज्यिक लेन–देन था। मेसोपोटामियाँ में सम्भवत: हड़प्पा के व्यापारी पूरी तरह से बस्ती भी बनाया था। मेसोपोटामियाँ में एक सीलमोहर पर खुदाई किया हुआ लिपि पाया गया। इसे पढ़कर ही पता चलता है कि हड़प्पा

कुछ बातें

बन्दरगाह : लोथस

गुजराती भाषा लोथ एवं स्थत्य से बना लोथल। इसका मतलब यात्री स्थान। गुजरात भोगावोर नदी के किनारे स्थित हड़प्पा सभ्यता बन्दरगाह नगर लोथल। यहाँ पाया जाने वाले जहाज एवं समाधि क्षेत्र के नमूना। कहा जाता है कि वहाँ जहाज रखना, बनाना एवं मरम्मत करने की भी व्यवस्था थी। लोथल बटन के आकार का मोहर पाया गया। ऐसा समझा जाता है कि पारस उपसागरीय अंचल के साथ इनका वाणिज्यिक सम्पर्क था। यहाँ पर नारी मूर्ति, सतरंज की गोटो, खिलौना गुजरात अनुकूल अंचल होने के लिये लोथल समुद्र व्याणिज्यिक के लिए विशेष माना गया।

सभ्यता के साथ मेसोपोटामियाँ का वाणिज्यिक सम्पर्क था। हड़प्पा सभ्यता के समय पारस उपसागरीय क्षेत्र में समुद्र द्वारा व्यापार करना महत्त्वपूर्ण हो गया था। इतना ही नहीं विभिन्न अंचलों (क्षेत्रों) की भाषा जानने वाले द्विभाषियों का भी महत्त्व बढ़ा था। सम्भवत: विदेश से आए हुए सोना, चाँदी, ताँबा, बहुमूल्य पत्थर, हाथी दाँत से बना कंघी एवं पक्षियों की मूर्ति इत्यादि को हड़प्पा सभ्यता में लाया जाता था। इसके बदले में विदेशों में खाद्य द्रव्य, मैदा, तेल और ऊनी वस्तुएँ एवं द्रव्य भेजा जाता था।

चित्र ३.८ : लोथल बन्दरगाह के ध्वंसावशेष।

लेकिन केवल जलपथ से ही नहीं बल्कि स्थल मार्ग से भी हड़प्पा का व्यापार होता था। ईरान में भी हड़प्पा सभ्यता का सीलमोहर पाया गया। वही यहाँ के तुर्कमेनिस्तान में हड़प्पा में तैयार शिल्प द्रव्य का भी खोज मिला। इन सब का आयात-निर्यात स्थल मार्ग के जरिए ही होता था।

हड़प्पा सभ्यता में यातायात व्यवस्था के विभिन्न उपाय थे। मालवाहक पशु, गाड़ी, नौका और जहाज का प्रयोग होता था। स्थल मार्ग और जल मार्ग से प्रतिदिन यातायात और व्यवसाय-वाणिज्य का कार्य होता था। गदहा और ऊँट का प्रयोग हड़प्पा सभ्यता में होता था। लेकिन गदहा और ऊँट सम्भवत: भारतीय उपमहादेश के बाहर से लाया गया था। गाड़ी को खींचने के लिए बलशाली पशुओं का प्रयोग ज्यादा होता था। हड़प्पा में गाड़ी के बदले अनेक कादा मिट्टी से बने खिलौने की गाड़ी पायी गयी है। उनमें चक्के का प्रयोग किया गया था। अधिकांश गाड़ी दो चक्के वाली थी। चक्के काफी कठोर थे। गोलाकार कटे हुए तीन समान भाग के तरह से उसे बनाया गया था। वही कुछ छोटी गाड़ियाँ भी पायी गयी। उन गाड़ियाँ में अधिक चक्के लगाए हुए थे।

हड़प्पा के रास्ते पर गाड़ी के चक्के के गंभीर निशान पाए गए। उससे समझा जाता है कि गाड़ी की आकृति छोटी नहीं थी। हड़प्पा के अनेक रास्ते ही ऊँचे-नीचे था। बल एवं शक्ति से खीची गई गाड़ियाँ ऊँचे-नीचे रास्तों पर सहज ही नहीं चल पाता था।

लेकिन गाड़ी की अपेक्षा नौका से यातायात करने में कम समय लगता था। पशुओं द्वारा खीचे जाने वाली गाड़ियाँ धीरे-धीरे चलती थी और इन पशुओं को खिलाने के लिए खर्च भी करना पड़ता था। वही नदी के स्त्रोत और हवा की सहायता

से सहज ही नौका चलता था। इसलिए जल मार्ग यातायात के लिए काफी सस्ता था। मोहनजोदड़ो के सीलमोहर में नौका के चित्र का भी खुदाई किया गया है। कपड़े लगे नौका का व्यवहार हड़प्पा सभ्यता में होता था। हड़प्पा की अर्थनीति और यातायात व्यवस्था अधिकांशत: नदी के ऊपर ही निर्भर रहती थी।

हड़प्पा के धर्म

पुरातत्वकारों को हड़प्पा के विभिन्न केन्द्रों में असंख्य नारी मूर्ति मिली। उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन मूर्तियाँ की पूजा होती थी। अर्थात् हड़प्पा सभ्यता में मातृ पूजन का प्रचलन था, ऐसा प्रतीत होता था। मोहनजोदड़ो में एक सीलमोहर पाया गया। जिसमें एक योगी की मूर्ति की खुदाई की गयी हैं। यह योगी योगासन की भूमिका में बैठा हुआ था। उसके चारों तरफ गेंडा, बाघ, हाथी इत्यादि कुछ जंगली प्राणी भी थे। एक समय इसी मूर्ति को पशुपति शिव के आदि रूप माना जाता था। लेकिन पशु शब्द से पालतू पशु समझा जाता था। लेकिन उस मूर्ति के चारों तरफ सभी जंगली पशु ही देखा गया। इसलिए उस मूर्ति को पशुपति शिव का आदि रूप मानना उचित नहीं है।

हड़प्पा के लोग विभिन्न जीव-जन्तु और पेड़-पौधों की पूजा करते थे। एक सिंग वाला काल्पनिक पशु मूर्ति की पूजा सबसे ज्यादा होती थी। हड़प्पा के सीलमोहर में साँड़ के निशान से ऐसा प्रतीत होता है कि साँड़ की भी पूजा होती थी, लेकिन सीलमोहर में कभी भी गाय की मूर्ति नहीं देखी गई। असंख्य पेड़ और पत्तों का चित्र सीलमोहर और मिट्टी के बर्तन में देखा जाता था। असंख्य पेड़ों को देवता के रूप में पूजा किया जाता था। धर्मीय कार्य के लिए जल का प्रयोग होता था। हो सकता है कि मोहनजोदड़ो का जलाशय धर्मीय कार्य के लिए प्रयोग होता था।

हड़प्पा सभ्यता में मृतकों की समाधि दी जाती थी। मृतकों के शरीर को उत्तर की ओर सुलाकर रखा जाता था। समाधि के भीतर गहना और मिट्टी के बर्तन रखे जाते थे। कालिबंगान में ईंटों से बना समाधि भी देखा गया।

हड़प्पा सभ्यता के अंतिम चरण

विशाल और वैचित्र्यमयी हड़प्पा सभ्यता का अस्तित्व ईसा पूर्व १७५० साल के बाद क्रमश: कम होता गया। लेकिन अचानक एक सभ्यता समाप्त नहीं हो जाता है। कुछ घटनाओं के कारण ही हड़प्पा सभ्यता का पतन हुआ। मोहनजोदड़ो नगर की विशाल दीवार कई बार नष्ट अर्थात् गिर गए। दीवार के एक ही जगह पर कई बार मरम्मत का

चित्र ३.९ : हड़प्पा के दो सीलमोहर

???

सोचकर देखो

हड़प्पा के दोनों सीलमोहर में कौन-कौन से पशु के निशान को देख पा रहे हो ?

निशान देखा गया। इसके अलावा दीवार के ऊपर कादा (कीचड़) के भी निशान पाए गए। वहाँ पर जमा हुआ कीचड़ सम्भवत: बाढ़ के कारण ही आया था। सिन्धु में आए बाढ़ से मोहनजोदड़ो की भी क्षति हुई थी, ऐसा अनुमान लगाया जाता है।

ईसा पूर्व २२०० से एशिया महादेश के अनेक जगहों पर वर्षा कम होने लगी। फलस्वरूप शुष्क जलवायु देखा गया। जिसके कारण कृषि कार्य में समस्या आयी। हड़प्पा सभ्यता की कृषि व्यवस्था भी इस सभ्यता के अन्तर्गत आया था, ऐसा प्रतीत होता था। इसके अलावा ईंट को जलाने के लिए चूल्हे के लिए लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। पेड़ो को काटकर ही लकड़ी की व्यवस्था की जाती थी। अधिकांश संख्या में पेड़ काटने के फलस्वरूप वर्षा का परिमाण कम हो गया था।

लगभग ईसा पूर्व १९०० के अंत तक मेसोपोटामियाँ के साथ हड़प्पा वाणिज्य में कमी पड़ा। जिसके फलस्वरूप हड़प्पा सभ्यता की अर्थनीति में समस्या आई। साथ ही साथ, नगर-शासन व्यवस्था भी कमजोर हो गया। इन सभी समस्याओं से बाहर निकलने का रास्ता हड़प्पा सभ्यता के लोग नहीं ढूढ़ पाए।

हड़प्पा सभ्यता की लिपि

हड़प्पा के निवासी लिखते थे। उनकी लिपि भी मिली है। लेकिन मुश्किल यह है कि आज तक इस लिपि को पढ़ा नहीं गया। केवल लिपि का कुछ अनुमान किया जाता है। हड़प्पा की लिपि सांकेतिक है। इसमें ३७५ से ४०० तक चिह्न थे। लेकिन हड़प्पा का लिखित वर्णमाला सम्भवत: नहीं था। इस लिपि को दाहिने ओर से बाँयी ओर लिखा जाता था। लिपि में छोटे चिह्न संख्या को दर्शाती थी। अनुमान लगाया जाता है कि द्रविड़ भाषाओं के साथ हड़प्पा की भाषा का मेल था। ऋग्वेद की भाषा में भी द्रविड़ भाषा का प्रभाव देखा जाता है।

बर्तन, सीलमोहर एवं ताँबा से बने वस्तुओं के ऊपर हड़प्पा लिपि मिला है। लिपि को सजाकर साईनबोर्ड जैसी वस्तु ढोलाविरा केन्द्र से पाया गया है। हड़प्पा सभ्यता की उन्नति का यह लिपि ही उदाहरण (नमूना) है। इन लिपियों को अगर ठीक तरह से पढ़ा जाए तो भारतीय उपमहादेश की अनेक अज्ञात इतिहास के बारें में जानकारी मिलेगी।

चित्र ३.१४ : हड़प्पा के जली हुई मिट्टी की गाड़ी।

चित्र ३.१० : हड़प्पा में मिट्टी के बर्तन के टुकड़े

चित्र ३.११ : हड़प्पा में जली हुई मिट्टी के हाथी

चित्र ३.१२ : हड़प्पा के सीलमोहर में योगी की मूर्ति

चित्र ३.१३ : हड़प्पा के सीलमोहर में काल्पनिक पशु

सोचकर देखों

ढूढ़कर देखों

१। **बेमेल शब्दों को ढूढ़कर बाहर निकालो :**

१.१) ताँबा, काँसा, पत्थर, लोहा।

१.२) घोड़ा, हाथी, गेंडा, साँड़।

१.३) कालिबंगान, मेहरगढ़, बनवाली, ढोलाबिरा।

२। **नीचे दिए गए वाक्यों में कौन सही है और कौन गलत है, उसे लिखों :**

२.१) लिपि का व्यवहार सभ्यता का एक वैशिष्ट्य है।

२.२) मेहरगढ़ सभ्यता का आविष्कार दयाराम साहनी ने किया।

२.३) हड़प्पा सभ्यता प्राक्–ऐतिहासिक युग की सभ्यता है।

२.४) हड़प्पा के लोग लिखना जानते थे।

३। **सठीक शब्दों का चुनावकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करों :**

३.१) हड़प्पा सभ्यता के घर बनते थे .... (पत्थर से / जली हुई ईंट से / लकड़ी से)।

३.२) हड़प्पा सभ्यता .... (पत्थर युग / ताँबा और ब्रोंज युग) की सभ्यता थी।

३.३) भारतीय उपमहादेश के हड़प्पा में ही .... (प्रथम नगर / प्रथम ग्राम / द्वितीय नगर) देखा गया था।

४। **अपनी भाषा में सोचकर लिखों (तीन / चार लाईन में) :**

४.१) तुम जिस शहर को जानते हो उनमें से किसी एक शहर के साथ हड़प्पा सभ्यता के शहर से साम्य–वैषम्य ढूढ़कर निकालों।

४.२) सिंधु नदी के किनारे हड़प्पा सभ्यता के शहर क्यों विकसित हुए थे?

४.३) हड़प्पा सभ्यता में किस प्रकार के घर मिले है? उन घरों में कौन रहते थे?

४.४) आपको लगता है कि हड़प्पा सभ्यता के लोग साफ–सफाई के प्रति सचेतन थे? अपने स्थानीय परिवेश में स्वास्थ्य और साफ–सफाई को बरकरार रखने के लिए हड़प्पा के लोग से किस–किस विषय को आप सीखोंगे?

५। **स्वयं करों :**

५.१) हड़प्पा सभ्यता के शहर और लोगों का जीवन कैसा था? उसका चित्र बनाकर एक चॉर्ट बनाओं।

५.२) हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न प्राचीन निर्देशावली को मिट्टी, पिचबोर्ड अथवा थर्मोकोल से बनाओं। यह प्राचीन निर्देशावली हड़प्पा सभ्यता के इतिहास को जानने में किस प्रकार से सहायता करती हैं?

४ भारतीय उपमहादेश के प्राचीन इतिहास की धारा

द्वितीय पर्याय (चरण) : लगभग ईसा पू० १५००–६०० तक

दादी के थैली को पढ़कर तानिया के मन में विभिन्न प्रकार का प्रश्न उठा। रूबी के दादाजी के पास जाकर एकदिन उसने उन सभी प्रश्नों का उत्तर जानना चाही। अच्छा दादाजी आप बताइए तो क्या सचमुच राक्षस–राक्षसिनी देखने में भयानक होते है ?

अरुण ने कहा, क्या तुमने मेले के मैदान में राम-रावण का युद्ध नहीं देखा। रावण तो राक्षसों का राजा है। इसलिए हारू काका रावण बनने के लिए मुँह पर कालिख लगाया था।

तितिर ने कहा, दादाजी, रामायण में क्या सचमुच रावण के दस सिर थे ?

दादाजी हमेशा उनके प्रश्नों के सुनकर प्रसन्न होते थे। उन्होंने कहा, मनुष्य की कल्पना और बातों से ही इस प्रकार कहानी बनती है। राक्षस का जो वर्णन तुम लोग जानते हो, वह सभी मनुष्य की कल्पना है। रामायण की कहानी में रावण देखने में बहुत ही सुन्दर था और दस सिर का मतलब जिसका सिर दसों दिशाओं की ओर घुमता है।

पलाश ने कहा, तब रावण को कब से और क्यों भयानक मानना शुरू हुआ ?

दादाजी ने कहा, यही तो इतिहास है, जो तुम्हें क्यों और कब सोचने के लिए बाध्य किया। रामायण की कहानी तो तुम सभी जानते हो ?

सुरैया बोली, रामायण तो राम-रावण की युद्ध की कहानी है। अच्छा दादाजी आप बताइए तो रामायण का क्या इतिहास है ?

दादाजी ने कहा, इतिहास तो सभी में है। कहाँ, कितना, किस तरह इतिहास छिपा हुआ है, वह खोजना ही इतिहास के जानकारों का कार्य है। तुम लोगों में से कोई-कोई मोबाइल फोन से बात करते हो या देखते हो। मोबाइल को लेकर अपने राज्य अथवा देश के बाहर जाने पर ज्यादा पैसा क्यों काटा जाता है ?

अरुण ने कहा — बाहर घूमना अथवा रोमिंग **Roaming** के लिए।

दादाजी ने कहा — अंग्रेजी में **Roaming** शब्द का मतलब है घूमना। वही संस्कृत में राम शब्द का अर्थ है जो इधर-उधर घूमते रहते है। याद रखो अंग्रेजी और संस्कृत शब्द के दोनों अर्थों में समानता है। किसी समय एक दल यायावर घूमते-घूमते भारतीय उपमहादेश में चले आए थे. वहाँ के पुराने निवासी के साथ उनका मेल-मिलाप शुरू हुआ। उनके साथ युद्ध लड़ाई भी हुआ। उस युद्ध में अधिकांश समय बाहर से आए मनुष्य जीत गए। इसके बाद धीरे-धीरे उपमहादेश के उत्तर भाग में वे बस्ती बनाया। इसके बाद धीरे-धीरे दक्षिण भागों में भी वे फैल गए। ऐसा कहा जाता है कि दक्षिण भाग में फैल जाने की कहानी ही रामारण में मिलती है।

युद्ध में जीत और बस्ती बनाने की बातों को लेकर ही अनेक प्रकार की कहानी बनी। यह बातें ही लोगों के जबान पर घूमने लगी। उन कहानियों में युद्ध में हारे हुए लोगों को दूसरे प्रकार से दिखाया गया। कभी वे राक्षस अथवा असूर तो कभी दैत्य। इसका अलावा वे कभी असभ्य और दस्यु भी तो कहलाते थे। रामायण उस युद्ध में जीते हुए लोगों की कहानी है। इसलिए युद्ध में हारे हुए रावण वहाँ पर खराब और भयानक है।

दूसरे दिन इतिहास की कक्षा में दादाजी द्वारा बतायी गयी बातों को तानिया ने कही। शिक्षिका ने सुनकर कहा, रामायण और महाभारत की कहानी में पहले की भी कहानी जानी जाती है। यह सारी बातें 'वेद' में हैं। आज हम उसी समय की बातों को जानेंगे।

४.१ इन्दो यूरोपीय भाषा परिवार

आपलोग राम और Roaming शब्दों के अर्थ और उच्चारण में मेल पाए हो। ऐसे ही बहुत सारे शब्द है। जैसे —उदाहरण स्वरूप - बांग्ला में माँ, संस्कृत में मातः अथवा मातृ अंग्रेजी में Mother एवं लैटिन में मातेर इत्यादि। पितृ अथवा भ्रातृ शब्दों में काफी मेल है, कुछ भाषा के शब्दों के साथ। उच्चारण और अर्थ में मेल लेकिन ऐसे ही नहीं होता है। मनुष्य के परिवार की तरह भाषा के भी परिवार है। उस एक ही परिवार के भाषाओं के मध्य काफी कुछ मेल है। वैसे ही एक भाषा परिवार इन्दो–यूरोपीय भाषा परिवार भारतीय है। उपमहादेश और यूरोप की अनेक भाषाएँ इस भाषा परिवार की सदस्य इसलिए इन सभी को एक साथ इन्दो–यूरोपीय भाषा परिवार कहा जाता है। इस भाषा का प्रयोग करने वाले कहाँ रहते थे ?

शब्दों के प्रयोग से ऐसा लगता है कि वे घास भूमि क्षेत्र के लोग थे। कृषि कार्य के साथ जुड़े हुए शब्दों का विशेष प्रयोग नहीं हुआ। अधिकांशतः इतिहासकारों के मतानुसार वे मध्य एशिया के घास भूमि क्षेत्र के यायावर थे।

अपने और अपने पालतू पशुओं के लिए खाद्य के अभाव को देखकर यूरोप के विभिन्न क्षेत्र ईरान और भारत में फैल गए।

इन्दो-यूरोपीय भाषा परिवार का एक सदस्य इन्दो-ईरानी भाषा भी था। यह भाषा मनुष्य के मुँह से धीरे-धीरे बदलकर भारतीय उपमहादेश के विभिन्न भाषाओं में परिणत हुआ। इसके साथ विभिन्न क्षेत्रों के शब्द मिले है। संस्कृत भाषा उन्हीं भाषाओं में से एक है।

आदि इन्दो-यूरोपीय भाषा वर्तमान में नहीं है। ऋग्वेद और जैन-अवेस्ता में इन्दो-यूरोपीय भाषा का प्रयोग देखा जाता है। इससे ही इन्दो-यूरोपीय भाषा का अस्तित्व समझा जाता है। लेकिन समानता के साथ-साथ इन दोनों रचनाओं में कुछ असमानता भी देखा गया। जैसे — ऋग्वेद में जो देव है, वे सम्मानित व्यक्ति है लेकिन अवेस्ता में जो दयैब (देव) है, उससे घृणा की जाती थी। वही अवेस्ता के श्रेष्ठ देवता अहूर है। लेकिन वैदिक साहित्य में असूर (अहूर) दुष्ट के रूप में परिचित है। हो सकता है कि किसी कारण इन्दो-यूरोपीय भाषा समूह के मध्य विवाद उत्पन्न हुआ था। जिसके कारण इस समूह की एक शाखा उत्तर-पश्चिम सीमांत से होते हुए भारतीय उपमहादेश में पहुँचा था। इसे ही इन्दो आर्य भाषा समूह कहा जाता था। इस क्षेत्र में याद रखना होगा कि **आर्य कोई भी जातिवाचक शब्द नहीं है**।

बहुत से लोग अनुमान लगाते है कि उत्तर-पश्चिम की ओर से ही इन्दो-आर्य भारत में आए। वैदिक साहित्य के जरिए ही इन्दो-आर्यों की बस्ती और जीवन यात्रा के बारे में जानकारी मिलती है। इसलिए इस सभ्यता का नाम वैदिक सभ्यता है।

???

सोचकर देखो

१. तुम किस भाषा में बात करते हो? वह भाषा किस भाषा परिवार से आया है?

२. बता सकते हो इन्दो-यूरोपीयन घासभूमि क्षेत्र में क्यों रहते थे?

४.२ वैदिक सभ्यता और वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य से क्या समझते हो? वेद शब्द की उत्पति विद शब्द से हुई। विद का मतलब ज्ञान। समस्त वैदिक साहित्य को चार भागों में बाँटा गया है। संहिता, ब्राह्मण आरण्य और उपनिषद। ऋग, साम, यजु : और अथर्व — यह चार संहिता है संहिता छन्द में बँधी कविता है। ऋग्वेद सबसे पुराना वैदिक संहिता है। ऋग्वेद की रचना भाषा और भौगोलिक परिवेश के उल्लेख से यह समझा जाता है। बाकी, तीन संहिता और दूसरे वैदिक साहित्य ऋग्वेद के बाद की रचना है, इसलिए इसे परवर्ती वैदिक साहित्य कहा जाता है। अर्थात् वैदिक साहित्य के दो भाग है पहला वैदिक साहित्य और दूसरा परवर्ती वैदिक साहित्य। वैदिक से ही वैदिक सभ्यता का इतिहास जाना जाता है। इसलिए वैदिक युग के भी दो भाग है — पहला आदि वैदिक युग और दूसरा परवर्ती वैदिक युग। आदि वैदिक युग के इतिहास को जानने का एकमात्र उपादान ऋग्वेद है। परवर्ती वैदिक साहित्य से परवर्ती वैदिक युग के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है।

याद रखो

- ऋग्वेद की सुक्तिया छन्द में बँधे हुए ऋग की समष्टि है। इसलिए इस संहिता का नाम ऋग संहिता पड़ा। संहिता की बातों का अर्थ संकलन करना।
- समवेद संहिता का अधिकांश भाग ऋग्वेद से लिया गया है केवल सामवेद को सूर में गीत की तरह गाया जाता था।
- अजुर्वेद मूलत: विभिन्न आचार-कार्यक्रम में जरूरी मंत्रों का संकलन है। यह मंत्र कुछ पद्य और कुछ गद्य में लिखा गया है।
- अर्थववेद जादू मंत्रों का संकलन है। वैदिक युग और उसके बाद भी काफी दिनों तक अर्थववेद को संहिता के रूप में नहीं माना जाता था।
- संहिता की व्याख्या करने के लिए गद्य लिखने वाले ब्राह्मण को तैयार किया गया था।
- अरण्य जो लोग लिखते थे वे अरण्य (जंगल) में रहते थे। यज्ञ की व्याख्या और विभिन्न प्रकार की सोच-विचार अरण्य साहित्य में देखा जाता है।
- वेद के विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या और सोच-विचार उपनिषद में है।
- वैदिक साहित्य को ठीक तरह से उच्चारण करना, छन्द एवं वास्तविक अर्थ को समझने के लिए वेदांग की रचना की गयी थी। संख्या में वेदांग छ: है। इसके अलावा नक्षत्र की स्थिति विभिन्न नियम और ज्यामिती की अवधारणा इत्यादि पर विचार विमर्श हुआ।

वैदिक साहित्य की रचना ठीक किस समय हुई थी, यह कह पाना मुश्किल है। अनुमानत: यह लगभग ईसा०पू० १५०० से ६०० ईसा०पू० के मध्य ही आदि वैदिक युग कहा जाता है। इसके बाद से ईसा०पू० १५०० से १००० ईसा०पू० को आदि वैदिक युग कहा जाता है। इसमें से ईसा०पू० ६०० ईसा०पू० तक परवर्ती वैदिक साहित्य लिखने का कार्य चल रहा था। अभी जिस रूप में वैदिक साहित्य मिलता है वह काफी बाद की रचना है।

वेदो का भूगोल

वैदिक साहित्य के पर्वत और नदी के नाम से उपमहादेश के आर्यो की बस्ती की बातें समझी जाती है। वैदिक साहित्य में विशेषकर ऋग्वेद में भूगोल विषय को लेकर काफी आलोचना हुई। ऋग्वेद में हिमालय (हिमवत) और काश्मीर के मूजवंत श्रृखला (चोटी) का उल्लेख है। ऋग्वेद में अनेक नदियों के बारे में कहा गया है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस नदी के आस-पास के इलाकों में आदि वैदिक युग की बस्ती थी।

ऋग्वेद की आलोचना में सिंधु महत्त्वपूर्ण नदी थी। सरस्वती नाम की नदी की जो बातें ऋग्वेद में है। यह आज नहीं मिलता है। ऋग्वेद के लोग गंगा और यमुना नदी है इलाकों के साथ विशेष प्रकार से परिचित नहीं थे। ऋग्वेद के अंतिम समय में केवल गंगा और यमुना नदी की बातें मिलती है।

ऋग्वेद के भूगोल से ही आदि वैदिक सभ्यता का कितना विस्तार हुआ है यह समझा जा सकता है। आज का आफगानिस्तान और पाकिस्तान का उत्तर-पश्चिम सीमांत के साथ वैदिक युग के लोगों का परिचय था। सिंधु और उसके पूर्व की ओर उपनदी से घिरा हुआ क्षेत्र आदि वैदिक मनुष्य का निवास स्थल था। इसी अंचल को सप्तसिंधु क्षेत्र कहा जाता था।

परवर्ती वैदिक साहित्य के वर्णन में यह भूगोल धीरे-धीरे बदल गया। गंगा-यमुना दोयाब इलाकों का उल्लेख वैदिक साहित्य में ज्यादा है। इससे समझा जा सकता है कि वैदिक बस्ती पंजाब से पूर्व की ओर हरियाण में चला गया था। परवर्ती वैदिक साहित्य के पूर्व भारत को हेय दृष्टि से देखा गया। इससे पता चलता है कि परवर्ती वैदिक सभ्यता की पूर्व सीमा उत्तर बिहार का मिथिला क्षेत्र था। गंगा नदी का समतल भूमि क्षेत्र में फैलने के कारण ही वैदिक समाज में कृषि का प्रचलन शुरू हुआ।

परवर्ती वैदिक साहित्य का मूल भौगोलिक क्षेत्र सिंधु और गंगा का मध्य का इलाका था। इसके अलावा गंगा घाटी का उत्तर भाग और गंगा यमुना दोयाब भी इसके अन्तर्गत आता था।

वैदिक युग और प्राचीन तत्त्व

वैदिक साहित्य में ताँबा और ब्रोंज की व्यवहार की बातें स्पष्ट है। अंतिम समय की रचना में लोहा का व्यवहार करने की धारणा स्पष्ट है। घोड़ा द्वारा खीचने वाले रथ और तीर धनुष का व्यवहार का वैशिष्टय भी उल्लेखनीय है। उपमहादेश में हड़प्पा नागरिक सभ्यता के पतन के बाद पुरातत्वकारों के अवशेष विभिन्न स्थानों पर पाया गया। वह सभी ग्रामीण सभ्यता का परिचय देती है। इन सभी केन्द्रों में घोड़ा और उसके बाद के परवर्ती चरण में लोहा के प्रयोग का प्रमाण मिलता है। लेकिन याद रखो कि पहले से अलग किसी भी प्रकार की नयी सभ्यता का चिह्न नहीं मिलता है। एक मिश्रित वैशिष्ट्य इस क्षेत्र में देखा गया। परवर्ती वैदिक युग में एक प्रकार के मिट्टी के बर्त्तन को बनाया जाता था। उन सभी बर्त्तनों का रंग धुल धुसर था। उसके ऊपर चित्र बनाया रहता था।

कुछ बातें

महाकाव्य

परवर्ती वैदिक साहित्य का एक और भाग महाकाव्य दें। महाकाव्य का मतलब है — महत् अथवा महान काव्य अथवा कविता। कोई विशेष घटना, देवता अथवा बड़े राजवंश के शासक को लेकर ही महाकाव्य लिखा जाता था। उसके साथ ही भूगोल ग्रह-नक्षत्र और ग्राम नगर की भी बातें थी सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलू, राजनीति, युद्ध, उत्सव की बातें भी महाकाव्य में रहता था। सात अथवा अंतत: आठ सर्ग में अथवा भागों में महाकाव्य को बाँटा गया है। कवि मूल घटना अथवा काव्य के प्रधान चरित्र के नाम पर महाकाव्य का नाम देता था। प्राचीन भारतीय उपमहादेश में सबसे लोकप्रिय महाकाव्य रामायण और महाभारत था।

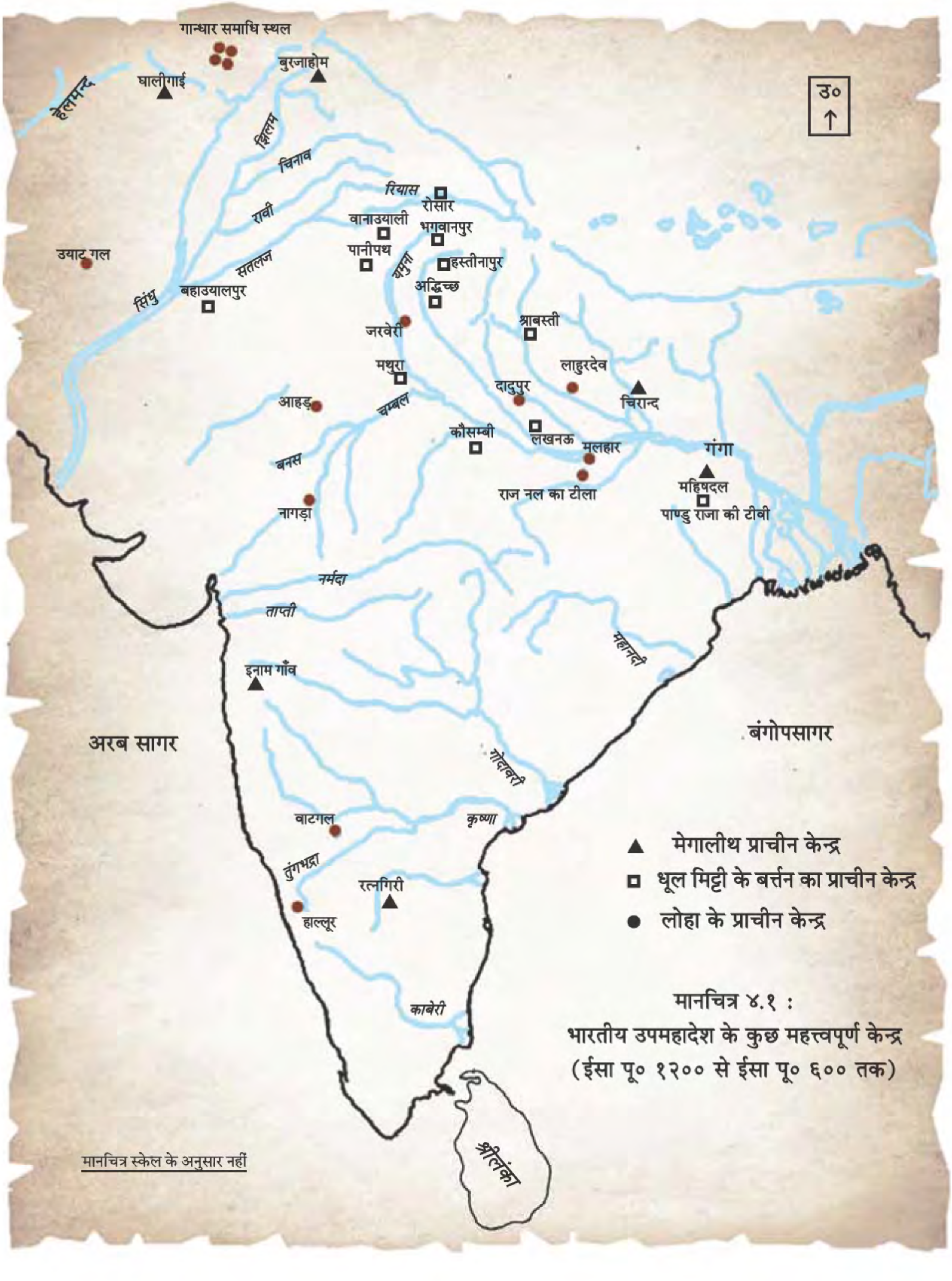

मानचित्र ४.१ :
भारतीय उपमहादेश के कुछ महत्त्वपूर्ण केन्द्र
(ईसा पू० १२०० से ईसा पू० ६०० तक)

इसे ही चित्रित मलीन मिट्टी का बर्त्तन कहा जाता था। हरियाणा के भगवानपुर ईसा.पू० १६०० ईसा.पू० १००० में लोहा के प्रयोग से पहले पर्याप्त परिमाण में चित्रित मलीन मिट्टी का बर्त्तन पाया गया। इस प्रकार के मिट्टी के बर्त्तन इलाहाबाद के पूर्व की ओर विशेष रूप से नहीं पाया गया। अत्रजीखेरा हस्तीनापुर, आहिछत्र इत्यादि क्षेत्रों में ईसा.पू० १००० के बाद भी मिट्टी के बर्त्तन और लोहा के व्यवहार का प्रमाण मिला है। इसके अलावा कुछ जगहों पर प्राचीन ग्राम के चिह्न भी पाए गए। लोहा के तीर का नोक और भाला, अंगूठी छूरी, बैठी इत्यादि मिट्टी से बना मनुष्य और पशुओं की मूर्ति भी पायी गयी।

सोचकर देखो

हड़प्पा जैसा उन्नत परिकल्पित नागरिक सभ्यता के बाद वैदिक ग्रामीण सभ्यता के बनने के क्या कारण हो सकते है?

४.३ वैदिक राजनीति

वैदिक साहित्य मूलत: धर्मीय साहित्य है। लेकिन उससे उस समय की राजनीति के विषय के बारे में भी कुछ जानकारी मिलती है। ऋग्वेद में युद्ध में जीतकर लूटपाट मचाने के लिए देवताओं से आशीर्वाद लिया गया। वही परवर्ती वैदिक साहित्य के शासन के लिए कुछ यज्ञ की बातों का भी जिक्र है। लेकिन राजनीतिक घटना का प्रत्यक्ष उल्लेख वैदिक साहित्य में बहुत कम है।

कुछ बातें

दस राजाओं का युद्ध

ऋग्वेद में युद्ध की अनेक बातों का उल्लेख है। जिनमें से प्रसिद्ध है दस राजाओं का युद्ध। सूदास ने दस राजाओं के गठजोड़ को पराजित किया था। जिसके कारण भरत समूह की राजनीतिक क्षमता बढ़ी। नदी के ऊपर बने एक बाँध को सूदास ने तोड़ दिया था। हो सकता है कि नदी के जल के ऊपर अधिकार करने के लिए उन्होंने ऐसा किया हो। इस युद्ध के साथ परवर्ती समय में महाभारत के कुरूक्षेत्र युद्ध से थोड़ी सी समानता है।

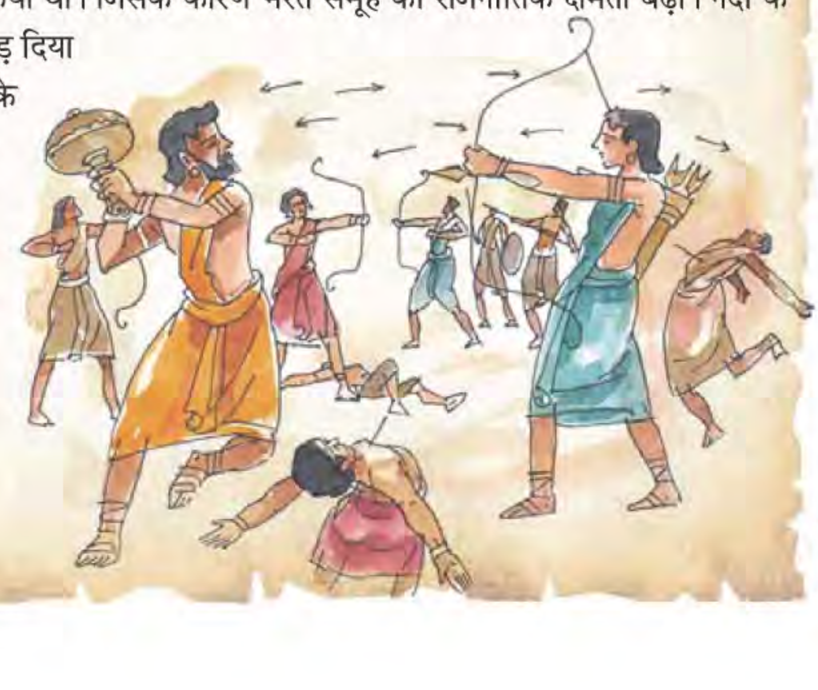

कुछ बातें

परवर्ती वैदिक साहित्य के राजा

परवर्ती वैदिक साहित्य में एक स्थान पर राजा होने की कहानी है। देवता और असूरो में होने वाले युद्ध में प्राय: देवता असूरो से पराजित हो जाती थी। सोच में पड़कर देवताओं ने जीतने का उपाय निश्चित करने के लिए आलोचना में बैठे। उस बैठक में यह समझा गया कि कोई राजा न होने के कारण हो देवता की ऐसी स्थिति है।

अब देवताओं ने राजा ढूंढ़ना शुरू किया सभी एकमत होकर देवताओं के बीच से ही महान् वीर इन्द्र को राजा चुना गया। इन्द्र देखने में काफी सुन्दर थे, इसलिए सभी ने राजा के रूप में इन्द्र को स्वीकार किया। इसके बाद देवतागण राजा इन्द्र के नेतृत्व में विजयी होना आरम्भ किया।

■ ऊपर की कहानी को पढ़कर, सोचकर बोलो तो राजा होने की क्यों जरूरत थी?

ऋग्वेद में ग्राम का मतलब केवल ग्रामीण बस्ती नहीं है। बल्कि एक छोटी-सी जनसमष्टि को भी ग्राम कहा गया। अगल कुछ परिवार को लेकर सम्भवत: यह छोटा-सा जनसमूह अथवा ग्राम बनता था।

ऋग्वेद में जन, गण, विश इत्यादि शब्द का प्रयोग कई बार हुआ। इससे ही ग्राम से बड़े एक जनसमूह को समझाया जाता। ऋग्वेद में युद्ध में जीतना और लूटपाट की विभिन्न बातों का उल्लेख है। पालतू पशु और घोड़ों की लूट सबसे अधिक होती थी।

ऋग्वेद में राजा शब्द का प्रयोग विभिन्न प्रकार से हुआ है। राजा शब्द का शाब्दिक अर्थ है — नेता। नेता जिस प्रकार के दायित्व का पालन करते थे उसी के आधार पर उसका नाम तय होता था। राजा को विशपति अर्थात् अथवा समूह का प्रधान कहा जाता कभी तो राजा गोपति अथवा पालतू पशु इत्यादि के रूप में भी परिचित थे। ऋग्वेद में राजा मनुष्य और जमीन पर कब्जा नहीं किया था। इसलिए नरपति अथवा भूपति शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में है विदय नाम के एक प्रतिष्ठान की बातें ऋग्वेद में है। राजा और विशेष सदस्य विदथ के सदस्य थे। वहाँ पर युद्ध की बातों को लेकर विचार विमर्श होता था। इतना ही नहीं वहाँ पर लूट की हुई सम्पत्ति का बंटवारा होता था। इस बंटवारे के दायित्व का पालन राजा करते थे परवर्ती वैदिक युग में राजा शासक के रूप में परिणत हुए। उस समय वे भूपति अथवा महीपति हुए। भूपति हुए भू अथवा जमीन का पति अथवा मालिक। महापति हुए पृथ्वी के राजा। राज्य की प्रजा अथवा जनगण के प्रधान के रूप में राजा की उपाधि नृपति अथवा नरपति हुआ। अनुगामी प्रजा के रूप में जनगण परिणत हुआ. परवर्ती वैदिक युग में राजनीतिक स्थिति बदल गयी थी। ब्राह्मण साहित्य में देवता और असुरों की लड़ाई इसी का उदाहरण है।

राजा जिस क्षेत्र में शासन करते थे उसे राजा कहा जाता था। परवर्ती वैदिक युग की उपजाति अथवा समूह के नाम पर अंचलों (क्षेत्रों) का नामकरण होना आरम्भ हुआ। जैसे — कुरू पांचाल इत्यादि। इस तरह से क्षेत्र से प्राथमिक रूप से राज्य की अवधारणा विकसित हुई। ऐसा माना जाता था कि उस अंचल (क्षेत्र) के लोग इस राजा के शासन को मानकर चलेंगे। शासन का कार्य चलाने के लिए राजा के कुछ कर्मचारी होगे और इसके साथ ही साथ सैनिक भी रहेंगे।

राजा की बाते आते ही प्रजा की भी बातें आ जाती है। राजा जिस अंचल (क्षेत्र) में शासन करते थे वहाँ के निवासी ही उनकी प्रजा थी। प्रजा के न रहने पर राजा का शासन नहीं चलेगा। प्रजा की समस्या का समाधान राजा करेगा। इसके बदले में प्रजा राजा की बातों को मानकर (चलेंगे)। यही उस समय का नियम था।

प्राचीन काल में राजा बनने के बहुत सारे तरीके थे। कोई युद्ध में जीतकर राजा बनते थे तो कोई राजा के पुत्र के रूप में परवर्ती राजा बनते थे। कभी-कभी तो समूह के सभी लोग मिलकर अपनों के बीच से एक राजा का चुनाव करते थे। राजा अनेक बार पुरोहितों के परामर्श से विभिन्न प्रकार के यज्ञ का आयोजन करते थे। जैसे — अश्वमेघ यज्ञ, राजसूय यज्ञ एवं बाजपेय यज्ञ इत्यादि। युद्ध होने से पहले कुछ यज्ञ होता था। युद्ध से जीतकर लौटने के बाद भी राजा यज्ञ करते थे। यज्ञ के जरिए राजा अपनी क्षमता का प्रदर्शन करना चाहते थे। शासकों के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ और कार्यक्रम की बातें परवर्ती वैदिक साहित्य में कहा गया है।

शासन के कार्य में जो लोग सहायता करते थे, उन्हें **रत्नीन** कहा जाता था। हो सकता है कि इनसे ही बाद में मंत्री की अवधारणा विकसित हुई हो। परवर्ती वैदिक युग में विदथ की बातों का उल्लेख नहीं मिलता है। उसके बदले सभा और समिति के महत्त्व की बातों को जाना जाता है। सभा में व्यस्क व्यक्ति आते थे लेकिन समूह के सभी सम्भवत: समिति के सदस्य थे। समिति में विभिन्न प्रकार के राजनीतिक विषय को लेकर विचार-विमर्श होता था।

वैदिक सभ्यता की अर्थनीति और समाज

ऋग्वेद में कृषि की अपेक्षा पशुपालन की बातों का ज्यादा जिक्र मिलता है। आदि वैदिक समाज में पालतू पशु ही प्रधान सम्पद था। जिसके पास जितने पालतू पशु थे, वे उतना ही धनी के रुप में परिचित थे। पशुपालन के ऊपर ही समाज निर्भर था, इसलिए पालतू पशु का ज्यादा महत्त्व था। याद रखने की जरूरत है कि ऋग्वेद में युद्ध करके जमीन दखल करने की बातों का विशेष उल्लेख नहीं है। क्योंकि ऋग्वेद युग में सम्पद के रूप में जमीन का ज्यादा महत्त्व नहीं था। इसके अलावा घोड़े की मांग भी सम्पद के रूप में था। आदि वैदिक युग में कृषि प्रंसग कम होने के बावजूद भी था। उत्पन्न खाद्य में जौ प्रधान था।

गेहूँ और धान का उत्पादन होता था कि नहीं यह कह पाना मुश्किल था। धीरे-धीरे वैदिक समाज में कृषि का महत्त्व बढ़ रहा था।

आदि वैदिक समाज में कारीगरी शिल्प का प्रचलन कम था। लकड़ी के कारीगरी शिल्प के बारे में कहा जाता था। लकड़ी से सामान और घर भी बनाया जाता था। इसके अलावा रथ बनाने में भी लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में चमड़े के शिल्प की भी बातों का उल्लेख है। चमड़े से बैग, घोड़े का लगाम इत्यादि वस्तुएं बनायी जाती थी। भेड़ों के रोएँ से पोशाक बनाने की बातें भी ऋग्वेद में है। टाना और पोडेने दो प्रकार के सूते का कपड़ा बुनने में प्रयोग होता था। सोने के विभिन्न प्रकार के गहने का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता है। ताँबा से खेती के लिए आवश्यक यंत्र भी बनाए जाते थे। ऋग्वेद में लोहा की बातें का जिक्र नहीं था। फलस्वरुप आदि वैदिक समाज में लोहा का प्रयोग नहीं होता था।

कुछ बातें

परवर्ती वैदिक साहित्य के राजा

समूह जीवन के पहले की ओर जमीन के ऊपर नेताओं का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन नेतृत्व चलाने के लिए उसे धन सम्पदा की जरूरत थी। जो सम्भवत: कृषि कार्य से ही शासक प्राप्त करते थे ऋग्वेद युग में शासक कर लेते थे। लेकिन जबरन कर का बोझ प्रजा के ऊपर थोपा नहीं जाता था। प्रजा सुरक्षित रहने के लिए स्वेच्छा से एक प्रकार का कर राजा को देते थे। ऋग्वेद में यह 'वलि' के नाम से परिचित है। लेकिन परवर्ती वैदिक युग में दलपति सम्भवत: जबरन 'वली' कर की वसूली करते थे। अर्थात् परवर्ती वैदिक युग में कर बाध्यतामूलक हो गया। युद्ध में जो हार जाते थे। उनसे भी राजा जबरन कर की वसूली करते थे।

परवर्ती वैदिक युग में गंगा यमुना दोआब अंचल में पूरी तरह से कृषि कार्य आरम्भ हो गया। इस समय जौ की खेती के साथ -साथ गेहूँ और धान भी प्रमुख फसल थी। किस ऋतु में किस फसल की खेती करना उचित है, उसे लेकर भी परवर्ती वैदिक साहित्य में विचार विमर्श हुआ। हल साधारणत: लकड़ी और ताँबा से बनता था। लोहा के हल का सम्भवत: उस समय व्यवहार नहीं होता था।

गंगा अववाहिका के कृषि कार्य बस्ती निर्माण के लिए जंगलों की सफाई करना जरूरी था। सम्भवत: जंगल को जला दिया जाता था। वही लोहे के अस्त्र से जंगलों को काट दिया जाता था। परवर्ती वैदिक समाज में लोहा का प्रयोग निश्चित तौर पर होता था। लोहे के हथौड़ी और कुल्हाड़ी से गंगा घाटी के घने जंगल को साफ करना आसान हो गया। लोहा से तैयार हल न होने के बावजूद अस्त्र-शस्त्र लोहे से ही तैयार होता था। लोहे के अस्त्र ने परवर्ती वैदिक युग के शासकों को सुविधा प्रदान किया।

लोहा और दूसरे धातु प्रयोग के कारीगरी शिल्प में काफी उन्नति हुई। परवर्ती वैदिक युग में चित्रित धुल धुसरित मिट्टी का पात्र (बर्तन) पुरातत्त्ववेता को मिला था। इससे पता चलता है कि परवर्ती वैदिक समाज में कुम्हारों का पेशा था। इसके अलावा कुम्हार, मछुआरा, राखाल, चिकित्सक इत्यादि पेशा के बारे में भी जानकारी मिलती है। गहना अस्त्र शस्त्र कपड़ा बनाने का शिल्प (उद्योग) भी चालू हुआ। परवर्ती वैदिक युग में काम को लेकर बंटवारा काफी बढ़ा गया था। ऐसा कि एक ही वस्तु को बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्र के कारीगर रहते थे। जैसे धनुष की आकृति एवं तीर बनाने के लिए अलग कारीगर थे।

आदि वैदिक युग में व्यापार-वाणिज्य का विशेष प्रचलन नहीं था। प्रत्यक्ष तौर पर समूह वाणिज्य की बातें ऋग्वेद में नहीं है। परवर्ती वैदिक साहित्य में व्यापार-वाणिज्य बातें ज्यादा मिलती है। लेकिन समुद्र-वाणिज्य भी इस समय था कि नहीं यह अनिश्चित था। वैदिक युग में वस्तुओं का विनिमय होता था। लेकिन मुद्रा का प्रयोग उस समय नहीं होता था। फिर भी निष्क, शतमान इन सभी को मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता था।

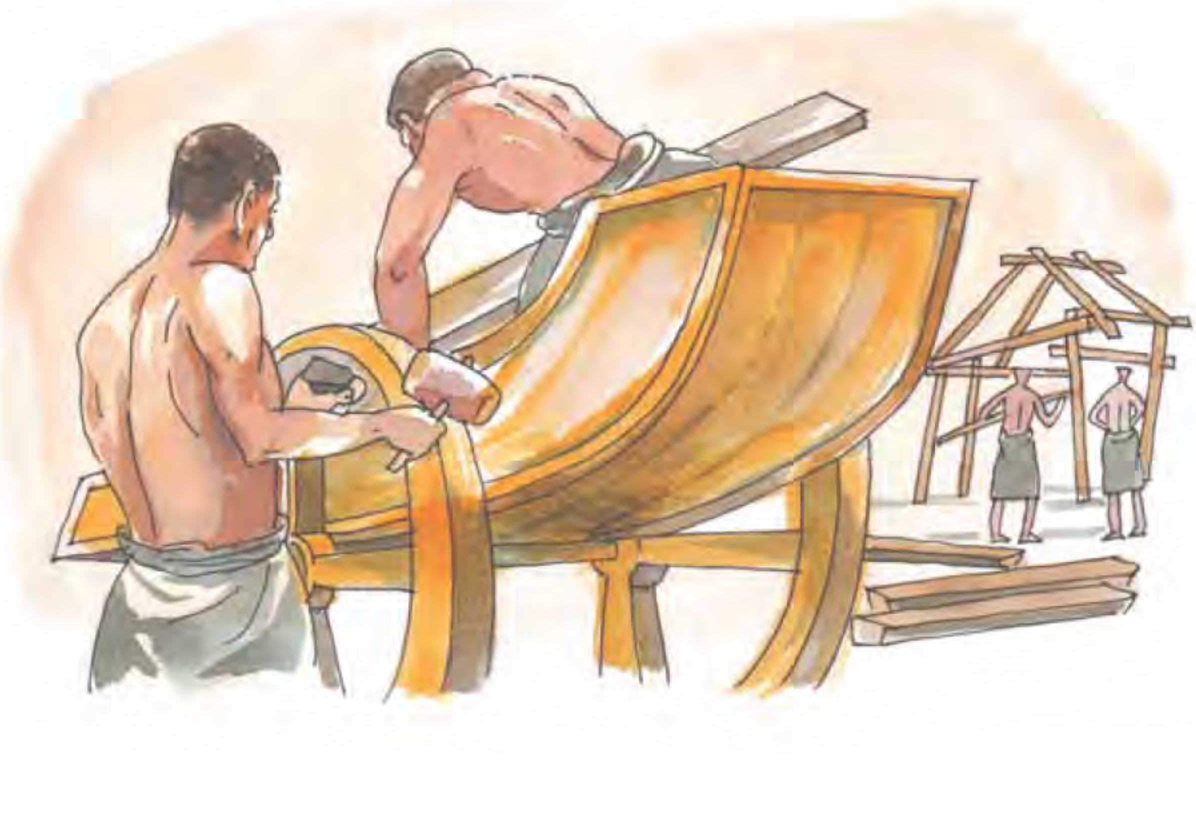

वैदिक साहित्य से इस समय के समाज के बारे में भी जानकारी मिलती है। समाज में सबसे छोटा भाग परिवार था। परिवार में सबसे व्यस्क पुरूष ही परिवार के प्रधान थे। इसलिए वैदिक युग का समाज पितृसत्तात्मक था। अर्थात् परिवार और समाज में पिता अथवा पुरूष ही प्रधान थे। हड़प्पा समाज जैसा माँ की क्षमता ऋग्वैदिक समाज में नहीं था।

ऋग्वेद के अंतिम चरण में वर्णाश्रम और चतुर्वनप्रथा विशेष रूप से नहीं था। ऐसा लगता था कि ऋग्वेद में वर्ण कहने से शरीर का रंग समझा जाता था। वर्णाश्रम को समझाने के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग आदि वैदिक समाज में नहीं था। ऋग्वैदिक समाज में सामाजिक भेद-भाव था। तभी तो वर्ण प्रथा द्वारा विचार नहीं किया जाता था। एक ही परिवार के सदस्य विभिन्न कार्यों में लगे रहते थे। ऋग्वेद से ऐसे ही एक परिवार के बारे में जानकारी मिलती है। जहाँ पर पिता चिकित्सक, माता खाद्य का पेशा एवं उनके पुत्र कवि थे।

ऋग्वेद के अंत तक वर्णाश्रम प्रथा को समझाने के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग देखा जाता था। परवर्ती वैदिक समाज में वर्ण प्रथा धीरे-धीरे फैलना शुरू किया। वहाँ पर वर्ण कहने से शरीर का रंग नहीं समझा जाता था। परवर्ती वैदिक युग में चार प्रकार के वर्णों का उल्लेख मिलता है। इन चार वर्णों के जन्मगत आधार पर ही पेशा निर्धारण का कार्य शुरू हुआ। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इससे ही जाति भेद-भाव की प्रथा शुरू हुई।

पूजा, यज्ञ, वेद पाठ इत्यादि ब्राह्मण करते थे। युद्ध करना और सम्पत्ति लूटना क्षत्रियों का कार्य था। कारीगरी, कृषि और व्यापार वैश्य का कार्य था। इन तीनों वर्णों की सेवा शुद्र करते थे। युद्ध बन्दी दास ही मूलत: शुद्र थे। परवर्ती वैदिक समय में कठोर यज्ञ और अधिक बढ़ गया था, इसके साथ-साथ ब्राह्मणों की शक्ति भी बढ़ी। परवर्ती वैदिक साहित्य ब्राह्मण ही लिखते थे। इन सबके कारण ही ब्राह्मणों की श्रेष्ठ घोषित किया गया। ब्राह्मण के ठीक बाद ही क्षत्रीय थे। परवर्ती वैदिक समाज में कृषि कार्य काफी बढ़ गया था। उस समाज के क्षत्रीय धीरे-धीरे शक्तिशाली होते गया। ऐसा कि श्रेष्ठ कौन होगा, इसे लेकर भी दोनों में झमेला होना आरम्भ हो गया।

परवर्ती वैदिक समाज में वैश्य और शुद्रो की स्थिति धीरे-धीरे खराब होती गयी। परवर्ती वैदिक साहित्य में वैश्य को हेय (छोटा) करके दिखाया गया। वर्ण व्यवस्था का सबसे खराब प्रभाव शुद्रों पर पड़ा था। उनके लिए किसी भी प्रकार की सामाजिक सुख-सुविधा नहीं थी।

कुछ बातें

सत्यकाम की कहानी

सत्यकाम अपने पिताजी का परिचय नहीं जानता था। पढ़ाई लिखाई करने के लिए जब वह गुरू के पास गया तो शुरू ने उसके गोत्र को जानना चाहा। यह बातें सुनकर सत्यकाम अपनी माँ जवाला से अपने गोत्र के बारे में जानना चाहा। तब जवाला बोली, मैं कुछ नहीं जानती हूँ। अगर कोई तुमसे पूछे तो तुम कहना, मैं सत्यकाम जवाला हूँ। सत्यकाम गुरू गौतम के पास जाकर कहा, 'मैं अपना गोत्र नहीं जानता हूँ। मेरी माँ ने मुझसे कहा कि मेरा नाम सत्यकाम जवाला है। गौतम ने कहा, तुम सत्य कह रहे है इसलिए मैं तुम्हें शिक्षा जरूरी दूंगा।

■ ब्राह्मण का वास्तविक परिचय क्या था ? इस स्थिति में क्या कभी कोई परिवर्तन हुआ था, आपको कुछ पता है।

याद रखो

समूह में पालूत पशु को रखने की जगह को **गोत्र** कहा जाता था। बाद में इस गोत्र का मतलब पूर्वजों के उत्तराधिकारी को बतलाया गया। जाति-पाति भेद-भाव प्रथा को कठोर बनाने के क्षेत्र में गोत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

आदि वैदिक समाज में बहुत सी स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करती थी। इतना ही नहीं समिति में कुछ स्त्रियाँ योगदान देती थी ऐसा कहा जाता था। युद्ध में भी महिलाएँ भाग लेती थी। ऋग्वेद में कही भी बाल - विवाह का जिक्र नहीं है। सती प्रथा की भी बातों का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। यज्ञ में भी महिलाएं भाग ले सकती थी।

परवर्ती वैदिक समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। पुत्री के जन्म पर परिवार के सभी सदस्य दुःखित हो जाते थे। कम उम्र में लड़कियों की शादी कराने की भी प्रथा शुरू हुई। युद्ध और समिति के कार्यों में महिलाओं को भाग लेते हुए नहीं देखा जाता था।

वैदिक समाज में शतरंज खेल काफी लोकप्रिय था। सभा और समिति में भी शतरंज खेला जाता था। रथ और घोड़ा दौड़ की प्रतियोगिता को देखने के लिए लोग काफी संख्या में भीड़ करते थे। वैदिक समाज में गीत संगीत का भी प्रचलन था। जौ, गेहूँ और धान प्रधान खाद्य था। आदि वैदिक समाज में विभिन्न प्रकार के मांस खाने का भी प्रचलन था।

कुछ बातें

परवर्ती वैदिक साहित्य के राजा

परवर्ती वैदिक, युग में जीवन यापन के चार भाग अथवा चरण — ब्राह्मचर्य और सन्यास था। छात्र अवस्था में शुरू के आश्रम में रहकर शिक्षा करना ही ब्रह्मचार्य आश्रम था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद सांसारिक जीवन-यान करने का गृहस्थ आश्रम कहा जाता था। सांसारिकता दूर जंगल में कुटिया बनाकर धर्म की बातें करना ही वाणप्रस्थ था। जीवन के अंतिम समय में सब कुछ भूलकर ईश्वर के चरण में जीवन व्यतीत करने का सन्यास आश्रम कहते थे। इन्हीं चारों पर्याय अथवा चरण को वर्णाश्रम कहा जाता था। शुद्रों को इस प्रकार के जीवन-यापन करने का अधिकार नहीं था।

कुछ बातें

वैदिक समाज और धर्म

वैदिक युग में मूर्ति पूजा का प्रचलन नहीं था। लेकिन देव-देवी की मूर्ति की कल्पना मनुष्य की तरह किया जाता था। किसी भी मंदिर में वैदिक साहित्य का उल्लेख नहीं है। धर्म की बातें मूलत: आचार कार्यक्रम भी निर्भर एवं यज्ञ केन्द्रित था। यज्ञ में गाय घोड़ा इत्यादि पशुओं की बलि दी जाती थी। ऋग्वेद में देवताओं के मध्य इन्द्र वरूण, अग्नि, सूर्य, मित्र, अश्विनीद्वय एवं सोम प्रमुख उल्लेखनीय देवियां थी। सूर्य देवता पूजा करने के उद्देश्य से ही गायत्री मंत्र की रचना की गई थी।

परवर्ती वैदिक युग में रूद्र और विष्णु महत्त्वपूर्ण हो गए। यज्ञ और आचार कार्यक्रम काफी मात्रा में बढ़ गया। यज्ञ में असंख्य पशुओं की हत्या होती थी। यज्ञ में पशु, सोना और जमीन का दान दिया जाता था। इस प्रकार से ही धर्मीय आचार-आचारण अर्थात् नियम के जरिए पुरोहित अथवा ब्राह्मण शक्तिशाली हो गए। वैदिक धर्म धीरे-धीरे ब्राह्मण धर्म का रूप लेने लगा। लेकिन उपनिषद में निराकार ईश्वर का रूप देखने को मिलता है।

वैदिक युग की शिक्षा

वैदिक साहित्य से ही उस युग की शिक्षा व्यवस्था के बारे में पता चलता है। शिक्षा व्यवस्था के प्रधान गुरू थे। मौखिक रूप से शिक्षा की बातें होती थी। गुरू एक भाग को पढ़कर उसके अर्थ को बता देते थे। छात्र उसे सुनकर उसकी आवृति तथा याद करते थे। याद करने के लिए उच्चारण पर ज्यादा जोर दिया जाता था। वैदिक युग में किसी भी प्रकार के लिपि की खोज पुरातत्त्ववेता को नहीं मिला।

परवर्ती वैदिक युग में शिक्षा के साथ उपनयन सम्पर्क देखा जाता था। कार्यंक्रम के जरिए गुरू उस छात्र को शिष्य के रूप में स्वीकार करते थे। लड़कियाँ भी उपनयन होती थी, उसका कुछ प्रमाण भी मिला है। गुरू के पास रहकर ही छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। वहाँ पर पढ़ाई के साथ-साथ दूसरे प्रकार के कार्य भी छात्रों से करवाएं जाते। छात्रों को रखने और खिलाने का दायित्व गुरू के ऊपर था।

कुछ बातें

वैदिक पढ़ाई और श्रुति

वैदिक साहित्य मूलत: सुन-सुनकर याद रखना पड़ता था। इसलिए वेद का एक और नाम श्रुति है। ऋग्वेद में भेकस्तुति नामक एक भाग है। वहाँ पर मेढ़क की आवाज को सुनकर दूसरे चार मेढ़क भी उसी की तरह आवाज निकालते थे। ठीक वैसे ही ऋग्वेद की सुक्तियाँ को गुरू अथवा विद्यार्थी उनकी आवृति करता। दूसरे इसे सुन-सुनकर याद रखते और उसे ही कहते थे। इस प्रकार शुद्ध उच्चारण करके वैदिक मंत्रों को कहने की क्षमता को अर्जित किया जाता था। इसलिए वैदिक शिक्षा का प्रधान विषय छन्द और व्याकरण था।

कुछ बातें

आरूनी की कहानी

महर्षि आयोदधौम एक आदर्श गुरू थे। उनके तीन विख्यात शिष्य थे। गुरूभक्ति की परीक्षा लेने के लिए वे हमेशा उन्हें कठिन कार्य करने के लिए कहा करते थे। एकदिन उन्होंने आरूनी से खेत से निकलने वाली पानी की जगह बाँध बाँधने को कहा। आरूनी ने बाँध को बाँधने का काफी प्रयास किया। लेकिन इसके बावजूद खेत का सभी पानी इसी जगह से बाहर निकल रहा था। इसलिए इससे बाँध बाँधने में काफी मुश्किल हुई। वही दूसरी ओर गुरू के आदेश का पालन करने के लिए पानी को रोकना ही होगा। तब अंत में आरूनी असहाय होकर बाँध के ऊपर ही सो गया। इस प्रकार अपने शरीर के द्वारा जल स्त्रोत को रोकने का प्रयास किया। आरूनी को जब लौटने में देर हुई तो महर्षि उनकी तलाश करते हुए खेत के पास पहुँचे। गुरू की आवाज को सुनकर आरूनी खेत से ऊपर उठ गया। आयोदधौम आरूनी की मुहँ से सारी बातें सुनकर उनकी गुरू भक्ति से काफी प्रसन्न हुए। खेत के बाँध और केदारखण्ड को भेदकर आरूनी उठकर आया था इसलिए महर्षि ने उनका नाम उद्दालक रखा। उद्दालक परवर्ती समय एक में प्रसिद्ध गुरू हुए।

वेद पाठ के जरिए ही शिक्षा प्रदान किया जाता था। उसके साथ गणित, व्याकरण और भाषा शिक्षण के ऊपर भी जोर दिया जाता था। स्वयं द्वारा बहुत कुछ सीखना पड़ता था। छात्रों को स्वयं की रक्षा करने के लिए अस्त्र-शस्त्र चलाना भी सीखना पड़ता था ऐसा कि ब्राह्मण भी अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा ग्रहण करते थे। जैसे — महाभारत में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और परशुराम के बारे में जानकारी मिलती है। छात्र चिकित्सा करना भी सीखते थे। लड़कियाँ दूसरे विषयों के साथ नृत्य और गीत भी किया करती थी।

सोचकर देखो

आपलोग पढ़ाई-लिखाई के साथ स्वयं से क्या कार्य सीखते हो, स्वयं द्वारा क्या-क्या सीखे हो ?

साधारण तौर पर बारह वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने का कार्य चलता था। कुछ लोग तो जीवन भर छात्र ही रहते थे। ऐसे ही बारह वर्ष की पढ़ाई समाप्त अथवा पूरी होने पर समावर्तन कार्यक्रम होता था। इस कार्यक्रम के जरिए ही छात्र को स्नातक की उपाधि मिलती थी। पढ़ाई-लिखाई के अंत में छात्रों के विशेष स्नान करने की प्रथा थी। उससे ही स्नातक शब्द आया है। गुरू आश्रम छोड़कर चले जाने से पहले छात्र अपने सामर्थ्य अनुसार गुरू दक्षिणा देते थे। गुरू दक्षिणा के रूप में गाय के दान के बारे में जानकारी मिलती थी।

कुछ बातें

एकलव्य

हिरनधनु भीलों के राजा थे। उनका एकलौता पुत्र एकलव्य था। एकलव्य बहुत ही साहसी और परिश्रम था। एकलव्य को तीर चलाना सीखने की इच्छा हुई। उसने सुना था कि गुरू द्रोणाचार्य सबसे बड़े अस्त्र शिक्षक थे।

घर लौटकर पिताजी से एकलव्य गुरू द्रोणाचार्य के बारे में जानना चाहा। हिरनधनु ने कहा, ब्राह्मण द्रोणाचार्य केवल क्षत्रीय बालकों को ही अस्त्र शिक्षा देते है। भील बालक को वे किसी भी तरह से अपना शिष्य नहीं बनाएंगे। इस बात को सुनकर एकलव्य ने कहा, मैं तो केवल आचार्य द्रोणाचार्य से ही तीर चलाने की शिक्षा लूंगा।

द्रोणाचार्य की कुटिया में जाकर उन्हें प्रणाम करके अपना परिचय दिया। द्रोणाचार्य से कहा, मैं आप से तीर चलाने की शिक्षा लेने आया हूँ। आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। द्रोणाचार्य ने उसे समझाते हुए कहा, मैं तुम्हें अपना शिष्य नहीं बना सकता हूँ। मैं केवल क्षत्रीय को ही अस्त्र की शिक्षा देता हूँ और तुम भील कुमार हो। इसलिए घर लौट जाओ।

कुछ बातें

वैदिक पढ़ाई और विज्ञान चर्चा

वैदिक शिक्षा में गणित पर चर्चा होती थी। यज्ञ वेदी बनाने के लिए ज्यामिती के ज्ञान की जरूरत पड़ती थी। यज्ञवेदी में ईंट को जलाया जाता था। ठीक तरीके से ईंट बनाना और जलाने का दायित्व ईंट के कारीगर के ऊपर था। यज्ञवेदी को मिस्त्री और हस्त शिल्पी ही बनाते थे। फलस्वरूप हस्त शिल्पी के हाथों ही वैदिक गणित चर्चा आरम्भ हुआ। यज्ञ वेदी को बनानें के लिए श्रमिक और विशिष्ट गणित विशेषज्ञ की जरूरत पड़ती थी। इस बात का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। यज्ञ की वेदी बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के यंत्रों की जरूरत पड़ती थी। यज्ञ करने के लिए ग्रह-नक्षत्र, काल एवं धातु की सठीक धारणा की जरूरत थी। इससे ही ज्योतिष विज्ञान के बारे में जानने समझने का कार्य शुरू हुआ। अर्थवेद के एक भाग में चिकित्सा विद्या विषय पर भी आलोचना होती थी।

यह सुनकर एकलव्य का मन बहुत ही उदास हो गया। द्रोणाचार्य की कुटिया से निकलकर वह घर की ओर नहीं लौटा। जंगल में जाकर वह मिट्‌टी से आचार्य द्रोण की मूर्ति बनाया और अकेले ही उस मूर्ति के सामने तीर चलाने का अभ्यास करने लगा। वह लगातार इस प्रकार अभ्यास करने लगा। इसी तरह से कुछ दिन बाद वह वास्तव में एक बहुत बड़ा तीर अंदाज बन गया।

एकदिन उस मूर्ति को सामने रखकर तीर चलाने का अभ्यास कर रहा था। तभी अचानक एक कुत्ते की आवाज से उनका ध्यान भंग हो गया। बाह्य होकर उसके कुत्ते के मुँह को तीर से शांत कर दिया। उसी अवस्था में वह कुत्ता दौड़ते हुए कौरवों और पाण्डवों के राजकुमार के पास गया। कुत्ते की अवस्था को देखकर वे समझ गए कि इस तरह से तीर मारना आश्चर्य की बात है। अर्जून भी इस तरह से तीर नहीं चला सकता था। द्रोणाचार्य कुत्ते को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। वे मन ही मन उस तीर अंदाज की प्रशंसा किए।

कुछ दूरी पर जाकर द्रोणाचार्य ने देखा कि एकलव्य तीर चलाने का अभ्यास कर रहा है। उन्होंने एकलव्य से पूछा, तुम्हारा गुरू कौन है ? एकलव्य ने कहा, आचार्य द्रोण मेरे गुरू है। तब एकलव्य ने उन सभी को गुरू द्रोणाचार्य की मूर्ति को दिखाया। द्रोणाचार्य एकलव्य के परिश्रम और सीखने के अभ्यास को देखकर काफी प्रसन्न हुए। लेकिन उन्होंने अर्जून को वचन दिया था कि वे दुनिया के सबसे अच्छे तीरअंदाज बनाएंगे। लेकिन एकलव्य अर्जून को पीछे छोड़ दिया था। उनको अपनी बातें मिथ्या होने की आंशका लगने लगी तो उन्होंने एक उपाय निकाला। एकलव्य को कहा, तुम मुझे गुरू दक्षिणा के रूप में क्या दोगे ?

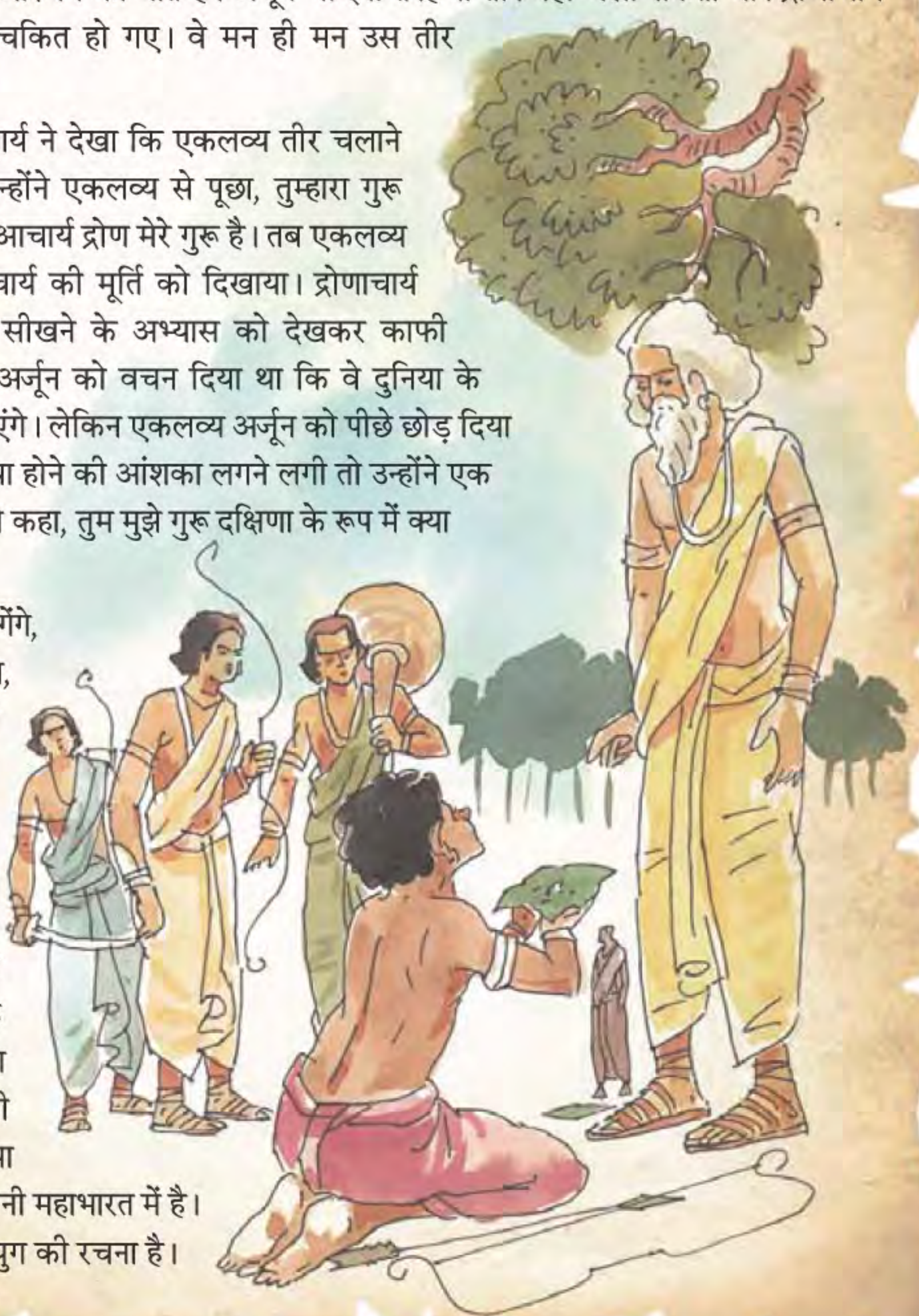

एकलव्य ने कहा, आप जो मार्गेगे, मैं वही दूँगा। द्रोणाचार्य ने कहा, तब तो तुम मुझे अपनी दॉयी अंगुली के अंगूठे को दे दो। स्वयं की अंगुली के अंगूठे को काटकर एकलव्य ने गुरू द्रोणाचार्य को दे दिया।

इसके बाद तो एकलव्य अपनी दॉयी हाथ के अंगूठे के बिना ही तीर चलाना सीखा, लेकिन पहले की तरह वह तीर नहीं चला पा रहा था। एकलव्य की कहानी महाभारत में है। महाभारत परवर्ती वैदिक युग की रचना है।

४.४ वैदिक युग में दूसरा समाज

पूरे भारतीय उपमहादेश में वैदिक सभ्यता का विस्तार नहीं हुआ था। सिंधु और गंगा नदी के तटीय क्षेत्रों में वैदिक बस्ती थी। पूर्व-उत्तर-पूर्व और दक्षिण भाग में वैदिक सभ्यता नहीं था। उपमहादेश के दूसरे क्षेत्र में इस समय दूसरे प्रकार की संस्कृति की खोज पुरातत्ववेता को मिला। उन संस्कृतियों में मनुष्य लोहा और ताँबा का अस्त्र प्रयोग करते थे। काला और लाल रंग मिट्टी के पात्र (बर्त्तन) के ऊपर वे व्यवहार करते थे। मिट्टी से बने टूटे घर की खोज पुरातत्ववेता को मिला। पश्चिम बंगाल के महिषादल में ऐसी ही संस्कृति की खोज मिली। वहाँ पर ग्रामीण कृषि समाज के बारे में जानकारी मिलती है। वे मृतकों की समाधि देते थे। महाराष्ट्र के इनाम गाँव में भी ऐसे ही समाज की खोज मिली।

???

सोचकर देखो

लोहा और घोड़ा का प्रयोग होने के फलस्वरूप भारतीय उपमहादेश में क्या-क्या परिवर्तन आया था?

मेगालीथ

बड़े पत्थरों की समाधि को **मेगालीथ** कहा जाता था। प्राचीन भारत में लोहा का प्रयोग के साथ ही इस समाधि के सम्पर्क में खोज मिला है। विभिन्न क्षेत्रों के जनसमूह बड़े-बड़े पत्थरों से परिवार के मृत व्यक्तियों की समाधि को चिन्हित करते थे। बड़े पत्थरों से चिहिन्त इस समाधि के विभिन्न प्रकार की आकृति देखने को मिलता था। कही आकाश की ओर देखती हुई बड़ी पत्थर तो कही वृत्ताकार सजाए हुए असंख्य पत्थर तो कही पर अनेक पत्थरों से एक बड़े पत्थर को ढ़का गया था। कहीं पर पहाड़ को काटकर बनाए गए गुफा के भीतर समाधि। इन सभी समाधियों से मनुष्य के कंकाल और उनके द्वारा प्रयोग की गयी वस्तुएं मिली है। काश्मीर के बुरजाहोम, राजस्थान के भरतपुर एवं इनाम गाँव प्रसिद्ध मेगालीथ केन्द्र थे। इन सभी जगहों पर लाल मिट्टी के बर्त्तन, पत्थर एवं जली हुई मिट्टी से बनी वस्तुएं पायी गयी। इसके अलावा लोहा, सोना, चाँदी, ब्रोंज की भी वस्तुएं मिली। घोड़ा और दूसरे जीव-जन्तुओं की हड्डी मछली का काँटा इत्यादि भी पाया गया। प्रयोग की हुई वस्तुओं के अंतर को देखकर आसानी से समझा जा सकता था कि उस समय का समाज धनी-द्ररिद्र (गरीब) में बँटा हुआ था। ऐसा कहा जाता था कि किसी-किसी स्थान पर तो एक साथ ही पूरे परिवार की समाधि दी जाती थी।

चित्र ४.१ : एक मोगालीथ

याद रखो

छोटानागपुर के मुण्डा आसाम के खासियों के मध्य आज भी मेगालीय व्यवस्था है। पश्चिम बंगाल के बाकुड़ा हुगली और पुरूलिया में ऐसा ही समाधि क्षेत्र देखा जाता है।

कुछ बातें

एक नजर में इनाम गाँव

- ✶ महाराष्ट्र के पुणे जिले में एक प्राचीन क्षेत्र और एक मंगोलीय केन्द्र था।
- ✶ भीमा नदी घाटी के इस केन्द्र में ईसा पू० १४०० से ६०० तक के समय-सीमा तक मनुष्य रहते थे।
- ✶ कृषि, पशुपालन और मछली का शिकार ही उनकी प्रधान जीविका थी।
- ✶ प्राय: १३४ आयताकार घरों की खोज मिली थी।
- ✶ ६ मीटर चौड़ा, ४२० मीटर लम्बा एक सिंचाई नहर का अवशेष भी मिला है।
- ✶ गेहूँ, जौ, दाल और धान इत्यादि प्रधान उत्पन्न खाद्य थे।
- ✶ घर में खाद्य रखने की मुश्किल, आग जलाने के लिए गड्ढे भी पाया गया। घर के आस-पास अर्थात् नजदीक समाधि क्षेत्र भी पाया गया।
- ✶ बहुमूल्य पत्थरों का हार पहनी हुई दो साल की बच्ची की भी समाधि पायी गयी।
- ✶ पात्र (बर्त्तनों) के ऊपर साँड़ द्वारा खींचती हुई गाड़ी का भी चित्र पाया गया।
- ✶ सिर समेत और बिना सिर की दो देवी मूर्ति पायी गयी।
- ✶ प्रत्येक घर में मिट्टी की दीवार मांस जलाने के लिए चूल्हा भी था।
- ✶ अंतिम समय में आयताकार घर के बदले छोटा गोलाकार गुफा बनता गया।
- ✶ काला और लाल मिट्टी के बर्त्तन एवं लोहे की वस्तुएं पायी गयी।
- ✶ अंतिम चरण (समय) में घोड़ा का अस्तित्व भी पाया गया।
- ✶ पाँच घर वाले एक बड़े घर में, उत्तर की ओर सिर बना हुए एक समाधि की खोज मिली। हो सकता हे कि यह समूहपति की समाधि थी।

चित्र ४.२ : मेगालीथ केन्द्र

सोचकर देखो ढूढ़कर देखो

१ **सठीक शब्दों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :**

१.१ आदि वैदिक युग के इतिहास को जानने का प्रधान उपादान .... (जैन अवेस्ता है महाकाव्य / ऋग्वेद)

१.२ मेगालीथ .... (पत्थर के गाड़ी को / पत्थर की समाधि / पत्थर के खिलौने) को कहा जाता है।

१.३ ऋग्वेद में राजा .... (समूह प्रधान / राज्य का प्रधान / समाज का प्रधान)थे।

१.४ वैदिक समाज में परिवार के प्रधान .... (राजा / विशपति / पिता) थे।

२. **बेमेल शब्दों को ढूढ़कर लिखो :**

२.१ ऋग्वेद, महाकाव्य, सामवेद, अथर्ववेद।

२.२ ब्राह्मण क्षत्रीय, शुद्र, नृपति।

२.३ इनाम गाँव, हस्तीनापुर, कौसम्बी, श्रावस्ती।

२.४ ऊषा, अदिति, पृथ्वी, दुर्गा।

३ **अपनी भाषा में सोचकर लिखो (तीन / चार लाईन) :**

३.१ वेद को सुन-सुनकर याद रखना पड़ता था। इसके क्या कारण थे?

३.२ वैदिक समाज चार भागों में क्यों बँटा हुआ था?

३.३ वैदिक युग में पढ़ाई-लिखाई में गुरू और शिष्य का सम्बंध कैसा था?

३.४ आदि वैदिक और परवर्ती वैदिक युग में नारी की अवस्था में कोई परिवर्त्तन (बदलाव) आया था। अगर परिवर्त्तन हुआ था तो क्यों?

४ **स्वयं करो :**

४.१ वैदिक समाज में राजा के बदलते धारणा को एक चॉर्ट की सहायता से दिखाओं।

४.२ वैदिक समाज की जीविका का एक चॉर्ट बनाओं।

५ ईसा॰ पू॰ छठवीं शताब्दी के भारतीय उपमहादेश

राष्ट्र व्यवस्था और धर्म का विवर्तन – उत्तर भारत

कुछ देर तक रुककर रुबी के दादाजी ने सभी से पूछा कि क्या आप लोग सभी पौराणिक की कहानी पढ़े हो ? आज रुबी के दादाजी उन सभी को पौराणिक कहानी सुनाएंगे। वे सभी कक्षा छः में पढ़ते है। फिर भी पौराणिक कहानी सुनने का अलग ही आनन्द है। कितने राजा, रानी, राजकुमार, राजकुमारी, उसके साथ ही पक्षीराज घोड़े एवं तेपान्तर मैदान की कहानी भी है। सब मिलाकर काफी भरा-पूरा कहानी। लेकिन पौराणिक कहानी सुनते सुनते पलाश के मन में एक प्रश्न उठा की पौराणिक कहानी में क्या राजा का नाम नहीं था। वह राजा कब, कहाँ रहते थे, उनके बारे में नही कहा गया था। शिक्षिका ने कहा, पौराणिक कहानी इतिहास नहीं है। पलाश को इतिहास के राजा रानी की कहानी को जानने की काफी इच्छा हुई। दूसरे दिन उसी कथा में अपनी इच्छा को पलाश ने व्यक्त किया। शिक्षिका ने कहा, बहुत अच्छा, अब हमलोग राजा की ही बातें कक्षा में करेंगे।

५.१. जनपद से महाजनपद

प्राचीन भारत में ग्राम से बड़े अंचल (खेत्र) को जन कहा जाता था। उसी जन को केन्द्र बनाकर छोटा-छोटा राज्य बना था। इसी प्रकार से जन से जनपद शब्द बना था। वही दूसरी ओर जहाँ साधारण लोग अथवा जनपद निवास करते थे, उन्हें जनपद कहा जाता था। जहाँ पर पैर अथवा पर रखते थे, वही जलपद था। किसी एक निर्दिष्ट इलाका में स्थायी तौर पर निवास करते रहने के कारण ही जनपद बना।

के छठवीं शताब्दी के अंत में भारतीय उपमहादेश में इस प्रकार बहुत सारे जलपदो के बारें में जानकारी मिलती हैं। वहाँ के जनपद अधिकाशत: वहाँ के शासक वंश के नाम से ही परिचित होते थें। इन जनपदो के आधार पर ही बाद में बड़े-बड़े राज्य बना था। भारतीय उपमहादेश के विभिन्न जगहों पह मिट्टी की खुदाई करके इस प्रकार के जनपदों के बारें में जानकारी प्राप्त किया। मगध जैसे कुछ जनपद धीरे-धीरे महाजनपद के रूप में परिणत हुआ।

ईसा०पू० के छठें शताब्दी के लगभग जनपदों की क्षमता क्रमशः बढ़ती गयी। वहाँ के शासक युद्ध करके अपने राज्य की सीमा बढ़ाते गए। छोटे-छोटे जनपद कुछ बड़े राज्यों के रूप में परिणत हुआ। इन बड़े राज्यों की ही महाजनपद कहा गया। जनपद से आयतन और क्षमता में महाजनपद काफी बड़े थे। महाजनपदो के शासक वैदिक युग के राजाओं से भी काफी शक्तिशाली थे। उनके पास काफी सम्पद थी। उसी सम्पद का प्रयोग करके वे अपनी क्षमता को ओर बढ़ाना चाहे, जिसके कारण प्रायः युद्ध हुआ करता था।

सोलह महाजनपद

जैन और बौद्ध साहित्य में भी जनपद-महाजनपद के बारें में उल्लेख मिलता हैं। उनसे ही ईसा०पू० छठवीं शताब्दी के भारतीय उपमहादेश के सोलह महाजनपदो के बारें में जानकारी मिलती हैं। उस समय इन्हें एकसाथ सोलह महाजनपद कहा जाता था। महाजनपदों में हमेशा विवाद और झगड़ा लगा ही रहता था। एक-दूसरे के राज्य को जीतकर सभी अपनी सीमा को बढ़ाना चाहते थे। इसी तरह क्रम से सोलह महाजनपद कम होते-होते चार महाजनपद तक पहुँच गया। ये सभी अवंती, वत्स, कौशल और मगध हुए। वे चार महाजनपद फिर अपने में युद्ध करते थे और उनमे अंत तक सबसे शक्तिशाली मगध बन गया।

सोलह महाजनपद में अधिकांश भाग में आज के उत्तर और दक्षिण भारत का क्षेत्र था। दक्षिण भारत में एकमात्र अस्मक महाजनपद था। मानचित्र (५.१) में देखा जा रहा है की गंगा यमुना घाटी को आधार बनाकर ही अधिकांश महाजनपद बने थे। गंगा नदी की घाटी का क्षेत्र ही उस समय के भारतीय उपमहादेश के राजनीति का प्रधान केन्द्र था।

विशाल गंगा घाटी एक समतल क्षेत्र था। फलस्वरूप राज्य को जीतने के क्षेत्र में कोई प्राकृतिक बाधा नहीं थी। पर्याप्त वर्षा होने के कारण जमीन काफी उर्वर थी। खेती बहुत अच्छी होती थी। साथ ही साथ घना जंगल भी था। जंगल में लकड़ी से लेकर हाथी सब कुछ मिलता था। नदी के रास्ते से यातायात करना सुविधापूर्ण था। इन सभी कारणों से ही इन क्षेत्रों में महाजनपद शक्तिशाली हो गए।

महाजनपद की शासन व्यवस्था

अधिकांश महाजनपदों पर राजा का शासन था। इन महाजनपदो को राजतांत्रिक राज्य कहा जाता था। राज्यों के शासन व्यवस्था में सबसे ऊपर राजा थे। राजा किसी विशेष वंश के सदस्य थे। वही वंश ही सालो -दर साल राज्य करते थे। एक समय उन्हें पराजित कर दूसरे वंश के कोई राजा बनते थे। शासन के कार्य में एक सभा राजा की सहायता करते थे। उनके सदस्य राजा को विभिन्न विषयों पर परामर्श देते थे। राज्यों में जमीन को अधिकार में करके कर की अदाएगी की जाती थी। कर से प्राप्त पैसे राज्य के शासन कार्य को चलाने के लिए खर्च करना पड़ता था।

इस प्रकार के एक राजतांत्रिक महाजनपद मगध में था। ईसा०पू० छठवीं शताब्दी के पहले मगध दक्षिण बिहार का एक सामान्य इलाका था। लेकिन दक्ष राजाओं के नेतृत्व में मगध धीरे-धीरे महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरा। उस समय मगध कहने पर वहाँ के पटना और गया जिला को समझा जाता था। मगध की राजधानी राजगृह था। बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र बना।

मगध राज्य नदी और पहाड़ से घिरा हुया था। फलस्वरूप बाहरी आक्रमण से मगध सहज ही बच सकते थे। गंगा नदी की गीली मिट्टी के इस क्षेत्र के कृषि जमीन को उर्वर बनाया था। मगध क्षेत्र के घने जंगल में अनेक हाथियाँ मिलती थी। उन हाथियों को मगध के राजा युद्ध के समय व्यवहार करते थे। साथ ही साथ वहाँ पर अनेक लोहा और ताँबा का खान भी था। फलस्वरूप मगध के राजा सहज ही लोहा के अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करते थे। जल और स्थल मार्ग से मगध का व्यापार होता था। इन सभी सुविधा के कारण ही मगध अंत तक सबसे शक्तिशाली महाजनपद के रूप में परिणत हुआ।

कुछ महाजनपद गैर राजतांत्रिक थे। वहाँ पर किसी भी प्रकार के राजा का शासन नहीं था। उन सभी को गनराजा कहा जाता था। इस प्रकार के दो महत्वपूर्ण गनराज मल्ल औप बज्जी अथवा वृजी थे। साधारण तरीके से गनराज्यों में एक-एक उपजाति निवास करती थी। वे अपने-अपने राज्य में गैर राजतांत्रिक शासन को बरकरार रखे थे।

मानचित्र ५.१ : सोलह महाजनपद (ईसा. पू० छठीं शताब्दी)

गनराज्यों में जनगण ही मिलकर विचार–विमर्श करके कर्त्तव्य को ठीक करते थे। लेकिन महिलाएं और दास इस विचार–विमर्श में भाग नहीं ले पाते थे।

महाजनपदो के गनराज्यों को दखल करना चाहती थी। गनराज्य के मध्य तीन राज्य स्वाधीन रह गया था। बज्जी का राज्य और मल्ल का दो राज्य— पावा और कुशीनारा स्वाधीन था। इनमें से बज्जी की शक्ति सबसे ज्यादा थी। बज्जी महाजनपद मगध के काफी नजदीक था। बज्जी की शासन क्षमता कुछ समूहो के हाथो में थी।

गौतम बुद्ध के समय बज्जी एकजुट और स्वाधीन वैशाली थे। बुद्ध स्वयं बज्जियों का सम्मान करते थे। बज्जियों की राजधानी वैशाली था। वैशाली के आस–पास जो बज्जी रहते थे, उन्हे लिच्छवि कहा जाता था। गौतम बुद्ध बज्जियो को एकजुट होकर रहने के लिए कुछ नियम पालन करने की भी बातें कही थी। उन नियमों को देखकर ऐसा लगता है कि बज्जियों के राज्य में नियम–कानून लिखा रहता था। वहाँ पर निरपराध लोगों को सजा नहीं मिलती थी।

कुछ बातें

मगध राजाओं के साल–तारीख

मगध जनपद में कुल तीन राजवंश ने शासन किया था। वे हुए हर्षक शौशुनाग और नन्द राजवंश। लेकिन कब कौन मगध के राजा थे, वह कहना मुश्किल हैं। एक अनुमानिक साल तारीख अवश्वय ही तैयार किया जा सकता है। गौतम बुद्ध की मृत्यु के साथ ही मिलाकर इन सालों को गिना जाता हैं। ऐसा कहा जाता है कि राजा अजातशत्रु के राजत्व के आठ वर्षो में ही गौतम बुद्ध की मृत्यु हुई। उस साल को 486 ईसा.पू० माना गया। इस दृष्टिकोण से मगध में हर्षक वंश का शासन 545 में आरम्भ हुआ। वही नन्द वंश का शासन 324 ईसा. पू० में समाप्त हुआ था।

राजतांत्रिक महाजनपदों के साथ लड़ाई के कारण गनराज्य क्रमशः कमजोर होता गया। युद्ध के लिए सेना की काफी संख्या में जरुरत थी। सैनिकों के लिए खर्च भी काफी होता था। उस खर्च के पैसे को प्रजा के ऊपर कर (TAX) लगाकर वसुला जाता था। गनराज्यो में इस अतिरिक्त कर की वसुली करना सहज नहीं था। साथ ही साथ उनके बीच समूहगत विवाद भी होना आरम्भ हुआ। फलस्वरूप गनराज्यों के क्षेत्र में अपने अस्तित्व को बचाये रखना कठिन हो गया था।

कुछ बातें

बज्जियों की उन्नति के सात किए नियम

मगध के राजा अजातशत्रु एकबार बज्जियों के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया था। इस विषय में गौतम बुद्ध से परामर्श लेने के लिए एक कर्मचारी को बुद्ध के पास भेजा। गौतम बुद्ध उस समय अपने शिष्य आनन्द के साथ उस विषय पर वार्तालाप के मध्य से सात उपदेश की बातें सामने आई। बुद्ध ने कहा, उन नियमों को मानकर चलने से बज्जियों की उन्नति अटूट रहेगी। राजा अजातशत्रु किसी भी प्रकार से बज्जियों को पराजित नहीं कर पाएंगे। वह नियम इस प्रकार है —

क) बज्जियों को प्राय: सभा करके राज्य चलाना होगा।

ख) बज्जियों को सभी कार्य को सबको एकजुट होकर करना होगा।

ग) बज्जियों को अपने द्वारा बनाए गए नियम के अनुसार चलना होगा।

घ) बज्जी समाज को व्यस्क व्यक्तियों की बात को सुनकर चलना होगा और उनका सम्मान करना होगा।

ङ) बज्जी समाज में हमेशा नारी का सम्मान करना होगा।

च) बज्जियों को समस्त देवताओं की मन्दिर का दायित्व लेना होगा।

छ) अपने क्षेत्र के पेड़-पौधों और पशु-पक्षिओं के ऊपर अत्याचार नहीं करना होगा।

???

सोचकर देखों

गौतम बुद्ध ने बज्जियों को जो परामर्श दिए थे, उनमे से कौन सा आज मानकर चलना उचित है ? उसको लेकर आपस में सोच-विचार करो।

५.२ नवधर्म आन्दोलन

ईसा. पू० छठवी शताब्दी के लगभग भारतीय उपमहादेश के समाज का अर्थनीति और राजनीति बदलना अरम्भ हुआ। कृषि अधिकांश लोगों की प्रधान जीविका बन गयी। लोहा के हल का व्यवहार बढ़ने से फसल का उत्पादन भी काफी बढ़ गया। साथ ही साथ नए-नए नगर इस समय बना। वहाँ के निवासियों का एक बहुत बड़ा भाग व्यापारी और कारीगरों का था। व्यापारियों में अधिकांश: काफी धनी थे।

यज्ञ, पशुबलि और युद्ध के कारण किसानों और व्यापारियों को काफी नुकसान होता था। खेती के कार्य के लिए पालतू पशु की जरूरत पड़ती थी। इसलिए यज्ञ में पशुबलि देना किसानों को स्वीकार नहीं था। साथ ही साथ विभिन्न जनपद और उपजातियों के बीच होने वाले लड़ाई-झगड़े से व्यापार को नुकसान हो रहा था। लेकिन सुरक्षित यातायात व्यवस्था भी व्यापार के लिए जरूरी था। धर्म के नाम पर आडाम्बर और कार्यक्रम बढ़ा था। पहले समाज में कार्य के आधार पर श्रेणी का विभाजन होता था। लेकिन बाद में वह जन्म के आधार पर हुआ और इस प्रकार से जाति भेद-भाव प्रबल हुआ। इस जाति भेद-भाव प्रथा के कारण ही साधारण मनुष्य वैदिक धर्म से अपना मुँह फेर लिया था। इसलिए समाज में नये धर्म मत की मांग बढ़ी।

वाणिज्य के लिए समुद्र यात्रा की अधिकांश क्षेत्रों में जरूरत पड़ती थी। वही समुद्र यात्रा को बाह्मण पाप के रूप में देखते थे। व्यापार को चलाने के लिए पैसे की लेन-देन और सूद पर पैसा चलाने की जरूरत पड़ती थी। लेकिन सूद लेना ब्राह्मण धर्म में निन्दा का विषय था।

लोहा से बने अस्त्र-शस्त्र क्षत्रियों की शक्ति को और अधिक बढ़ा दिया। फलस्वरूप क्षत्रियों ब्राह्मणों की शक्ति अपनी क्षमता की मांग करने लगे। इस तरह से समाज में विभिन्न भाग के मनुष्य ब्राह्मणों के विरूद्ध खड़ा होना शुरू किया। ब्राह्मण धर्म के बदले नए सहज सरल घर्म की खोज शुरु हुई। इस मांग को कुछ धर्मों ने पूरा किया। जिनमें से प्रधान दो धर्म — जैन और बौद्ध धर्म था। ब्राह्मण धर्म का यज्ञ और आचरण कार्यक्रम का इन सब धर्मो ने विरोध किया था। वे सहज सरल जीवन यापन के ऊपर ज्यादा जोर दिए थे। ब्राह्मण धर्म और वेद का विरोध करके धर्म के सम्बंध में बहुत सारी नयी बातों को इस धर्म प्रचारकों ने कहा। नए इन धर्मो को ही नवधर्म (नवीन धर्म) कहा गया।

जैन धर्म

नये प्रकार के धर्मो में से जैन धर्म प्रधान था। इस धर्म के प्रधान प्रचारक को तीर्थंकर कहा जाता था। जैन धर्म के अनुयायी कुल चौबीस तीर्थंकर थे। उनमें से अंतिम दो जन पार्शनाथ और वर्धमान महावीर थे। पार्शनाथ काशी के राजकुमार थे। वे महावीर से प्राय: ढाई सौ साल पहले के मनुष्य थे।

वर्धमान महावीर (ईसा. पू० ५४०-४६८) लिच्छवि वंश के क्षत्रिय राजकुमार थे। बज्जी जनपद के साथ लिच्छवियों का सम्पर्क था। तीस वर्ष की उम्र में वे संसार को त्याग करके सन्यास करने के लिए चले गए। लगातार बारह वर्ष तक कष्टों को सहन करते हुए भी वे तपस्या किए। अंत में वे सर्वज्ञानी बने और बाद में **केवनील** के नाम से परिचित हुए।

संक्षिप्त बातें

चार्वाक और आजीविक

जैन और बौद्ध के पहले भी ब्राह्मण और ब्राह्मण धर्म का विरोध आजीविक समूह ने किया था। वे किसी भी तरह से वेद को नहीं मानते थे। चार्वाक, वर्णाश्रम प्रथा के विरोधी थे। वे स्वर्ग की अवधारणा को भी नहीं मानते थे। यज्ञ में पशुबलि का चार्वाक विरोध करते थे। आजीविक समूह गोसाल ने बनाया। कहा जाता है कि वे महावीर के मित्र थे। आजीविक वेद और किसी भी प्रकार के देवता पर विश्वास नहीं करते थे। वे यह ही नहीं मानते थे कि मनुष्य अगर अच्छा कर्म करता है, तो उसे अच्छा फल भी मिलेगा। आजीविक का किसी भी प्रकार का धर्मग्रंथ नहीं पाया गया। उन्हें मौर्य सम्राट बिन्दुसार और अशोक से भी सहायता मिली थी।

लगातार तीस वर्षो तक महावीर जैन धर्म का प्रचार किए। लगभग बहत्तर वर्ष की आयु में पाबा नगरी में महावीर ने अनशन किया था। वही पर उनकी मृत्यु हुई थी।

चित्र
वर्धमान महावीर

कुछ बातें

चतुर्याम और पंचमहाव्रत

जैन धर्म चार मूल नीति को अवश्य मानकर चलते थे। वह है— (क) कभी प्राणी हत्या नहीं करना। (ख) झूठ नहीं बोलना। (ग) किसी दूसरे की वस्तु को नहीं छिनना। (घ) स्वयं के लिए सम्पति का संचय नहीं करना। पार्शनाथ इसी चार मूल नीति को मानकर चलने का निर्देश दिया था। इन चारों प्रकार के नीति को ही एकसाथ चतुर्यामव्रत कहा जाता था। महावीर इन चारों नीतियों के साथ एक और नीति को जोड़े। उनके अनुसार ब्रह्मचर्य नीति भी जैनों को मानकर चलना चाहिए। इन पाँचों प्रकार की नीति को एक साथ ही पँचमहाव्रत कहा जाता था।

अंतिम समय में जैन धर्म मगध, विदेह, कौशल और अंग राज्य के मध्य सबसे लोकप्रिय था। मौर्य युग में जैनों का प्रभाव बढ़ता गया। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य अन्तिम समय में जैन बन गया था। इसके बाद तो उड़ीसा से मथुरा तक जैन धर्म का विस्तार हुआ। जैन धर्म के मूल उपदेश को बारह भागो में सजाया गया था, इन भागो को ही अंग कहा जाता था। यह संख्या में बारह था, इसलिए इन भागो को एकसाथ द्वादश अंग कहा जाता था।

कुछ बातें

दिगम्बर और श्वेताम्बर

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल के अंत में एक भयानक अकाल पड़ा। उस समय असंख्य जैन सन्यासी उत्तर पूर्व भारत से दक्षिण की ओर चले गए। उसके चले जाने के कारण ही जैन में दो समूह बन गया। दक्षिण में चले गए जैन सन्यासी का नेता भद्रबाहु थे। वे वर्धमान महावीर के मार्ग को ही कठोर तरीके से मानकर चलते थे। महावीर के जैसे ही भद्रबाहु और उसके अनुगामी किसी भी प्रकार का पोशाक नहीं पहनते थे। इसलिए उन्हें **दिगम्बर** कहा जाता था।

वही दूसरी ओर उत्तर भारत चले गए जैनों के नेता स्थूलभद्र थे। वे पार्श्वनाथ के मतानुसार जैन को एक सफेद कपड़ा व्यवहार करने के पक्षपाती थे। इन जैन सन्यासियों का समूह श्वेताम्बर के नाम से परिचित था। ईसा. पू० प्रथम शताब्दी के लगभग दिगम्बर और श्वेताम्बर में अंतर स्पष्ट तौर पर उभर कर सामने आया। लेकिन जैन धर्म की मूल नीति के क्षेत्र में उनके बीच विशेष कोई अन्तर नहीं था।

बौद्ध धर्म

गौतम बुद्ध का पहला नाम सिद्धार्थ था। नेपाल के तराई क्षत्र के कपिल वस्तु शक वंश में सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। ईसा. पू० ५६६ अब्द तक। सिद्धार्थ महावीर की तरह ही क्षत्रिय वंश का था। उन्नीस वर्ष की आयु में सिद्धार्थ संसार का त्याग करके तपस्या के लिये चले गए। प्रायः छः वर्ष तपस्या करने के बाद सिद्धार्थ को बोधि अथवा ज्ञान की प्राप्ति हुई। बोधि लाभ प्राप्त करने के कारण ही उनका नाम बुद्ध पड़ा। इसलिए बुद्ध द्वारा प्रचारित धर्म को बौद्ध धर्म कहा जाता है। गौतम बुद्ध अपने शिष्यो के सामने व्याख्या किए कि दुख का कारण क्या है? किस प्रकार से उस

कुछ बातें

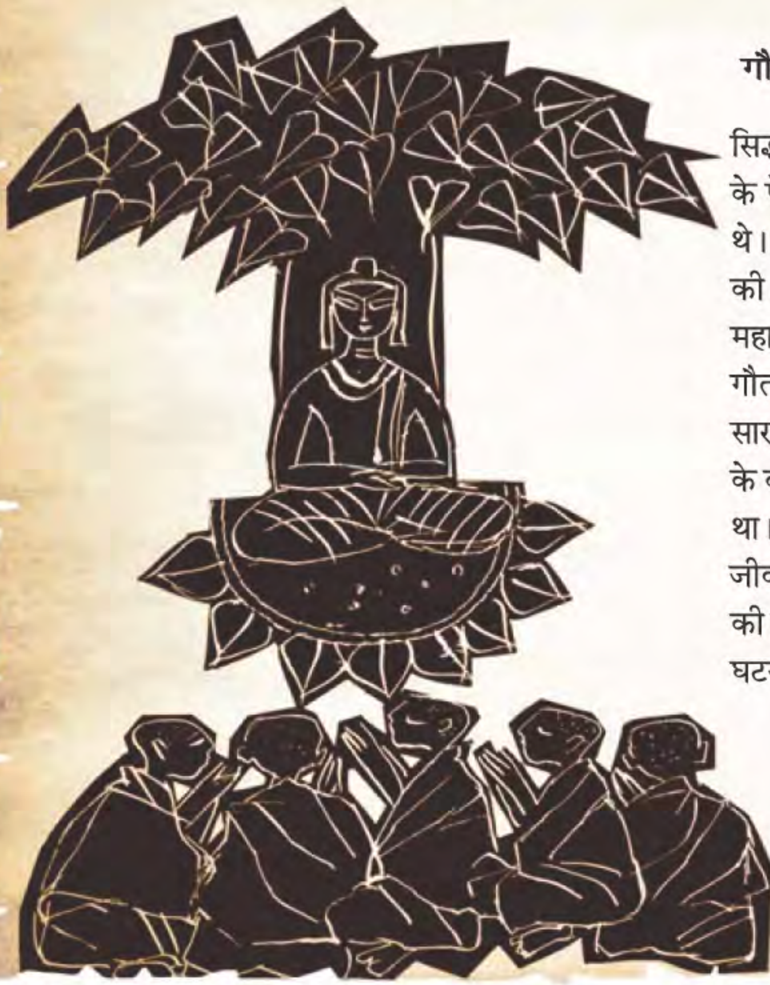

गौतम बुद्ध का पहला उपदेश

सिद्धार्थ गया के आस-पास एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर तपस्या किए थे। वहीं पर उन्हें बोधि अथवा ज्ञान की प्राप्ति हुई। इसलिए इस पेड़ को महाबोधि वृक्ष कहा जाता है। गया से गौतम बुद्ध वाराणसी के नजदीक सारनाथ गए। वहाँ पर पाँच संगी लोगो के बीच ही उन्होने प्रथम उपदेश दिया था। उनके सामने उन्होंने मनुष्य के जीवन में आने वाले दुःखों के कारण की व्याख्या की। परवर्ती समय में इस घटना को धर्मचक्र प्रवर्तन कहा गया।

चित्र.(५.२)
ध्यान में बैठे हुए गौतम बुद्ध की मूर्ति।

दुख से मुक्ति मिल सकती हे। इस प्रश्नो की व्याख्या के लिए बुद्ध ने मूल चार उपदेश दिए। प्रत्येक उपदेश को आर्यसत्य कहा जाता था। इस चारों उपदेश को एकसाथ चतुओर्यसत्य कहा जाता था। दुख से मुक्ति पाने के लिये आठ उपाय को गौतम बुद्ध ने बताया। उन्हीं आठो उपाय को एकसाथ अस्टांगिक मार्ग कहा जाता है। मार्ग का मतलब रास्ता। आठो रास्ते को एकसाथ अस्ट्रागिक मार्ग कहा गया।

इसके बाद बुद्ध राजगृह गए। वहाँ पर मगध के राजा बिम्बिसार बुद्ध के शिष्य बने। साल में आठ महीना घुम घुमकर वे मत का प्रचार किए। कौशल राज्य में गौतम बुद्ध लगभग १२ वर्ष थे। प्राय: ४५ वर्ष धर्म प्रचार करने के पश्चात कुशीनगर में गौतम बुद्ध की मृत्यु हुई। (लगभग ४८६ ईसा. पू०)।

बौद्ध धर्म के इतिहास में बौद्ध धर्म संहति की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। धर्म संहति प्राय: धर्म सम्मेलन जैसा था। वहाँ पर बौद्ध सन्यासी समवेत होते थे। बौद्ध धर्म के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श होता था। संहति में विभिन्न प्रकार के विवादो का भी प्रश्न उठता था। इस प्रकार के चार संहति के बारे में जानकारी मिलती है। गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद प्रथम बौद्ध संहति बना था।

तालिका ५.१ : एक नजर में प्रथम चार बौद्ध संहति

संहति	स्थान	शासन काल	अदयत्र	महत्वपूर्ण घटना
प्रथम	राजगृह	अजातशत्रु	महाकश्यप	सुक्त और विनय पिटक का संकलन किया गया
द्वितीय	वैशाली	कालाशोक अथवा काकवर्ण	यश	बौद्ध थेरवादी और महासांघिक-इन दो भागो में बंट गया।
तृतीय	पाटलिपुत्र	अशोक	मोगगलिपुत्त तिसस	बौद्ध संघ के नियमों को कठोर रूप से मानने पर जोर देना। संघ के बीच दरार को रोकने का प्रयास किया गया।
चतुर्थ	काश्मीर	कनिष्क	बसुमित्र	बौद्ध धर्म के हीनयान और महाजन यह दो भागो में बट गया।

चित्र (५.३) गौतम बुद्ध की मृत्यु के दृश्य का एक भाष्कर्य

कुछ बातें

हीनयान और महायान

जीवन यापन और धार्मिक आचरण को लेकर बौद्ध संघ में मताविरोध तैयार हुआ। कुछ सन्यासी आमिष (मांसाहारी) भोजन करते थे, मंहगे और अच्छी किस्म की पोशाक भी पहनते थे। सोना चाँदी को दान के उपहार में लेने लगे। धीरे धीरे सन्यासी पारिवारिक जीवन यापन शुरु किये। संघ का नियम नीति प्राय: शिथिल होते गया। जिसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म में महाजन नाम का एक समूह बना। कुषाण के समय से ही बुद्ध की मूर्ति की पूजा आरम्भ हुई। महायानी मूर्ति पूजा के समर्थक थे। इसके कारण ही पुराने मत के सन्यासी महाजन मत के विरोधी हो गये। वे हीनयान के नाम से परिचित हुए। सम्राट कनिष्क महायान बौद्ध मत के समर्थक थे। चतुर्थ बौद्ध संहति में ही हीनयान और महायान पूरी तरह से अलग हो गए।

कुछ बातें

तिपिटक अथवा त्रिपिटक

बौद्ध धर्म में तिपिटक (त्रिपिटक) प्रधान ग्रन्थ है। सुक्त पिटक, विनय पिटक और अभिधान पिटक- इन तीनों भाग को लेकर ही तिपिटक है। पिटक का मतलब- झूड़ी है। तीन संकलन को तीन झूड़ी से तुलना की गयी है। सुक्त पिटक-हुआ गौतम बुद्ध और उनके प्रधान शिष्यों के उपदेशो का संकलन। विनय पिटक के बौद्ध संघ में भी बौद्ध सन्यासियों के व्यवहार-आचरण के नियम है। अभिधनपिटक में गौतम बुद्ध के मूल कुछ उपदेशों की आलोचना है। यह सभी पालि भाषा में लिखा हुआ है।

गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात राजगृह में बौद्ध की प्रथम सभा हुई। कहा जाता है कि वहाँ पर त्रिपिटकों के संकलन तैयार होते थे। एक कहानी यह प्रचलित है कि बुद्ध की मृत्यु के पश्चात उनके शिष्य पूरी तरह से दुखित हो गए थे। तभी इस समय सुभद्र नाम के एक शिष्य ने कहा, अब हम लोग अपनी इच्छा अनुसार कार्य कर पांएगे। हमेशा बुद्ध की ही बातों पर अब नहीं चलना पड़ेगा। बुद्ध के एक और शिष्य महाकश्यप थे। उन्होंने सुभद्र की बातों को सुनकर सोचा कि तुरंत ही बौद्ध धर्म के नियमों का संकलन करना होगा, नहीं तो सभी अपनी इच्छा अनुसार चलेंगे तथा इससे बौद्ध धर्म की क्षति होगी। इसी कारण महाकश्यप ने राजगृह में सभा बुलाया। उसी सभा में प्रथम दो पिटक का संकलन किया गया।

कुछ बातें

त्रिरत्न

जैन और बौद्ध-दोनों धर्म में त्रिरत्न नामक एक धारणा है। तीन विषय को दोनों धर्म में विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उनके एक-एक को रत्न कहा जाता है। संख्या में यह तीन है। इसलिए तो एक साथ त्रिरत्न। लेकिन जैन धर्म का त्रिरत्न बौद्ध धर्म के त्रिरत्न से अलग है। सत्य विश्वास, सत्य आचरण के ऊपर जैन धर्म ज्यादा जोर देते थे। इस तीनो को एक साथ जैन धर्म में त्रिरत्न कहा जाता था। बौद्ध धर्म में गौतम बुद्ध प्रधान व्यक्ति थे। उनके द्वारा प्रचार किया गया धर्म ही बौद्ध धर्म है। बौद्ध धर्म के प्रचार का दायित्व बौद्ध संघ पर है। यह तीनो मिलकर होता है बौद्ध-धर्म-संघ। वही तीनों बौद्ध धर्म का त्रिरत्न है।

वर्धमान महावीर के साथ गौतम बुद्ध का काफी मेल था। वे दोनों ही क्षत्रिय परिवार के थे। ब्राह्मण धर्म के आचरण कार्यक्रम का दोनों ने घोर विरोध किया। समाज में साधारण लोगों के लिए धर्म का प्रचार किया था। सबसे समझने की सुविधा के लिए उन्होंने सहज एक सरल भाषा का प्रयोग किया था। प्राकृत भाषा और साहित्य की उन्नति जैन धर्म से ही सम्भव हो पाया। बौद्ध धर्म प्रचार की भाषा पालि थी।

लेकिन महावीर कठोर तपस्या के ऊपर जोर दिए थे। वही दूसरी ओर गौतम बुद्ध को ऐसा लगता था कि कठोर तपस्या निर्वाण अथवा मुक्ति का उपाय नहीं है। वही केवल भोग-विलास से भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए बुद्ध ने मध्य मार्ग की बातें कही थी।

महावीर और बुद्ध दोनो ही धर्म प्रचार करने के लिए नगर में जाते थे। नगर में विभिन्न प्रकार लोगो के साथ सम्पर्क स्थापित होता था। शहर की तुलना में ग्राम के अधिकांश लोग किसान ही थे। वही ब्राह्मण धर्म में नगर में जाना अथवा रहना पाप समझा जाता था। इसलिए जैन और बौद्ध धर्म उस समय नगरों में ज्यादा विस्तारित हुआ। यह बात अवश्य ही नवधर्म (नवीन धर्म) आन्दोलन के रूप में थी। लेकिन मूलतः यह आन्दोलन नगर केन्द्रित था।

जातक की कहानी

तिपिटक में जातक को लेकर कुछ कहानी है। ऐसा कहा जाता था कि गौतम बुद्ध का पहले भी विभिन्न समय में जन्म हुआ था। वही पहले की एक जन्म की कहानी एक-एक कहानी में कहा गया। प्रत्येक कहानी में कुछ न कुछ उपदेश अवश्य है। साधारण लोगों के बीच धर्म का प्रचार करने किए लिए ही जातक की कहानी का प्रयोग किया जाता था। पाँच सौ से अधिक जातकों की कहानी है। कहानियाँ पालि भाषा में कहा तथा लिखा जाता था। मनुष्य के साथ-साथ पशु पक्षी भी जातक की कहानी के चरित्र के रूप में आया। जातक की कहानी से उस समय के समाज के बारें में बहुत कुछ की जानकारी मिलती है।

सेरीवान और सेरीबा (सेरीवाणिज्य जातक)

कुछ समय पहले सरीब नाम के एक राजा थे। वहाँ पर सेरीवान और सेरीबा नामक दो फेरीवाले रहते थे। वे पुरानी वस्तुओं को खरीदने तथा नयी वस्तुओं को बेचते थे। सेरीबा सभी को ठगता था। अधिक कीमत पर वस्तुओं की बिक्री करता था। लेकिन सेरीवीन किसी को भी नहीं ठगता था। वह उचित कीमत पर ही वस्तुओं की बिक्री करता था।

एकदिन सेरीबा एक घर के सामने जाकर खिलौना लोगे कहकर चिल्लाने लगा। उस घर में एक छोटी लड़की अपनी नानी के साथ रहती थी। वे काफी गरीब थी। छोटी लड़की अपनी नानी से उस खिलौने को खरीदने के लिए जिद करने लगी। तब नानी एक टूटी हुई थाली को लेकर खिलौना खरीदने आयी। सेरीबा नानी को बोली, इस थाली की जितनी कीमत होती है उसे दो। नतनी के लिए एक खिलौना लूंगी। सेरीबा ने अच्छी तरह से देखा कि थाली सोने की है। वह चालाकी करते हुए कहा, थाली तो टूटी हुई है, दो कौढ़ी भी इसकी कीमत नहीं है। अगर आप ऐसे ही देगी तो ले लूंगा। नानी ने कहा, तो रहने दो। सेरीबा ने सोचा थोड़ी देर घुमकर फिर वहाँ आना होगा। ऐसे तो वह देगी नहीं। लेकिन दो पैसे देने पर निश्चय ही थाली दे देगी। किसी भी तरह से अवसर को हाथ से जाने नहीं दूँगा।

थोड़ी देर बाद ही सेरीवान उसी घर के सामने गया। छोटी लड़की फिर से खिलौने के लिए नानी से जिद करने लगीं। नानी फिर उसी टूटी हुई थाली को सेरीवान को देखने के लिए दी। थाली को देखकर सेरीवान ने कहा यह तो सोने की थाली है। यह थाली कीमती है। मेरे पास इस थाली को खरीदने की क्षमता नहीं है। तब उस समय नानी ने सेरीवान से बोली, तुम जो दे सकते हो वही दो। मैं ज्यादा नहीं चाहती हूँ। तुम्हारे बोलने से पहले मैं नहीं जानती थी कि वह सोने की थाली है। इसलिए इसे तुम लो। सेरीवान उस समय अपनी सारी मुद्रा नानी के हाथों में दे दिया और उनकी नतनी को एक सुन्दर खिलौना दिया। नानी और नतनी उसी में खुश थी। थाली को लेकर सेरीवान चला गया।

इधर सेरीबा कुछ देर बाद ही उस घर के सामने आया। आकर जब उसने सब कुछ सुना तो वह समझ गया कि थाली सेरीवान ही ले गया। सेरीवान को पकड़ने के लिए दौड़ा ताकि थाली मिल सके। लेकिन सेरीवान को वह ढूढ़ ही नहीं सका। सोने की थाली सेरीवान से सेरीबा को नहीं मिल सका।

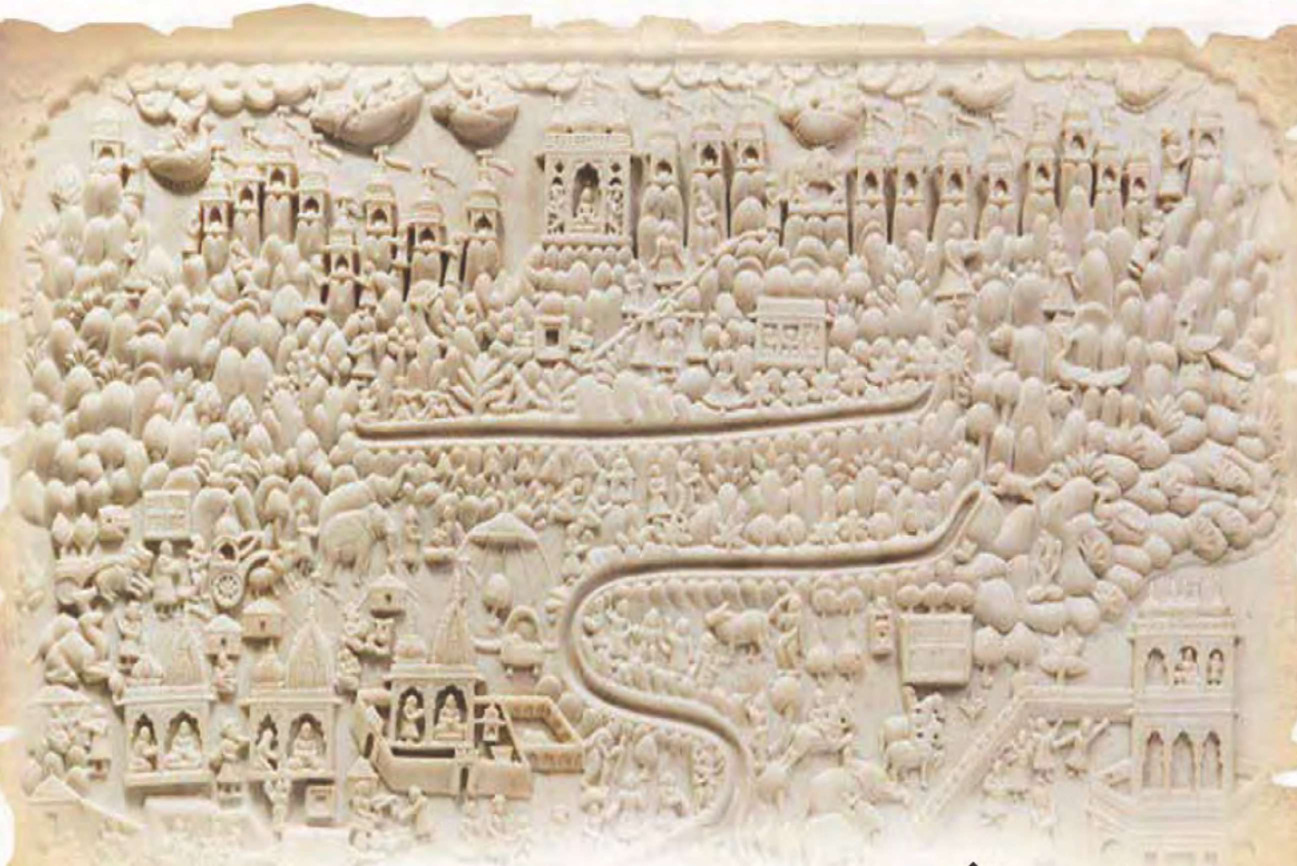

↑ चित्र .(५.४)
सामेत-शिखर, जैनों का पवित्र तीर्थक्षेत्र। कहा जाता है कि २४ तीर्थक्षेत्र में से २० इसी शिखर में निर्वाण को प्राप्त किए थे।

← चित्र (५.५)
बुद्धपद (गौतम बुद्ध के पैरो के निशानपत्थर से खुदाई किया हुआ भाष्कर्य अमरावती। पैरो के निशान के बीच धर्मचक्र है।

सोचकर देखो   ढूढ़कर देखो

१. सठीक शब्दों का चुनाव करके रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

१.१ महाजनपद तैयार हुआ था --------(ईसवी षष्ठ शताब्दी में ईसा छठवी शताब्दी में -----छठें शताब्दी में)

१.२ गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था -----(लिच्छवी हर्षक / शाक) वंश में।

१.३ पार्श्वनाथ थे ----- (मगध के राजा /बज्जियों के प्रधान / जैन तीर्थांकर)।

१.४ आर्य सत्य ---- (बौद्ध /जैन / आजीविक) धर्म का भाग था।

२. 'क' स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ का मिलान करो

क स्तम्भ	ख स्तम्भ
मगध की राजधानी	बौद्ध धर्म
महाकश्यप	राजगृह
द्वादश अंग	प्रथम बौद्ध संहति
हीनयान-महायान	जैन धर्म

३. अपनी भाषा में सोचकर लिखो (तीन/चार लाईन)

३.१ मगध और वृजी महाजनपदों के मध्य क्या-क्या पार्थक्य दिखाई पड़ता है ?

३.२ किन-किन कारणों से मगध अंत तक सभी महाजनपदों से शक्तिशाली हो गया। उन कारण में से कौन सा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था।

३.३ समाज के किस-किस क्षेत्र के लोगों ने नवधर्म आन्दोलन का समर्थन किया था ? क्यों किया था ?

३.४ जैन धर्म और बौद्ध धर्म में क्या-क्या समानता और असमानता है ?

४. स्वयं करो :

४.१ जनपद से सोलह महाजनपद एवं उससे मगध राज्य कैसे बना ? उसे पिरामिड के आकार में दिखाओं।

४.२ ६४ और ६५ पृष्ठ के दोनों चित्र को देखों। बौद्ध धर्म के आर्य सत्य की अवधारणा के साथ इस चित्र का क्या किसी प्रकार का मेल देखने को मिलता है ?

६ साम्राज्य विस्तार और शासन

अनुमानिक : ईसा पू० छठी शताब्दी से ईसा के सातवीं शताब्दी तक के सातवीं शताब्दी के प्रथम भाग तक।

समीमा के पास पुराने दिनों के बहुत सारे पैसें है। उसके नानाजी ने उन्हें वे सारे पैसे दिए थे। १ पैसा, ५ पैसा, १०पैसा। इनमें से कोई चौकोर तो कोई फूलों के जैसा था। स्टील का चमचमाता हुआ १० पैसा समीमा का सबसे प्रिय पैसा था। पुराने कुछ २ रूपये के नोट भी हैं। एकदिन इन सभी को अपने मित्रों एवं दादाजी को दिखाने के लिए ले गयी। दादाजी ने सभी को देखकर कहा, यह तो बहुत ही अच्छा है। तुम लोगों में से और कोई कुछ जमा करके रखते हो ? पलाश ने कहा, मैं खिलौने को जमा करता हूँ। बचपन के सारे खिलौने मेरे पास हैं। राबिया बोली, मैं भी खिलौने को जमा करती हूँ। दादाजी ने कहा। उससे समझा जाएगा कि वह सारी वस्तुएं पुराने दिनों में कैसी थी। इसके बाद दादाजी ने कहा, यह जो रूपये अथवा पैसो पर सिंह के मुँहवाला जो निशान रहता है, वह क्या है, बताओ तो ? सभी ने कहा, अशोक स्तम्भ। दादाजी ने कहा, क्यों यह स्तम्भ रूपये-पैसे के ऊपर निशान के रूप में रहता है, क्या इसे तुम सब जानते हो ? राबिया बोली, सम्राट अशोक का यह स्तम्भ भारत का राष्ट्रीय प्रतीक है।

दादाजी ने कहा, यह स्तम्भ सारनाथ में पाया गया था। उसके सिर के आस-पास चार सिंह है अभी यह सारनाथ के जादूघर (म्यूजियम) में रखा हुआ है। एक समय सम्राट अशोक युद्ध करना छोड़ दिए थे। इसलिए उनका स्तम्भ २६ जनवरी, १९५० में भारत में राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया। वह उल्टे हुए पदम जैसा देखने में एक वेदी पर रखा गया है और उसके ऊपर अशोक चक्र को देखा जाता है। इस चक्र का बाँयी ओर साँड़ और दाँयी ओर घोड़ा है।

उसदिन घर लौटकर पृथा के मन में प्रश्न उठा कि आखिरकार दादाजी ने अशोक को राजा न कहकर सम्राट क्यों कहा ? तो क्या राजा और सम्राट अलग-अलग है ? दूसरे दिन कक्षा में शिक्षिका से पृथा ने वही प्रश्न की। प्रश्न को सुनकर शिक्षिका ने कहा, हाँ, राजा और सम्राट अलग-अलग है ? अब मैं आपलोगों को सम्राट और साम्राज्य की बातें बताऊँगी।

६.१ साम्राज्य क्या है ? सम्राट कौन ?

सहजता से कहा जाए तो, साम्राज्य एक विशाल अंचल (क्षेत्र) को समझा जाता है। मान लो, एक राज्य में कई हजार जनगण (जनता) रहती है, तो एक साम्राज्य में कई लाख लोग रहेंगे। अनेक राज्यों को जोड़कर एक बड़ा शासन क्षेत्र होता है। वह बड़ा शासन क्षेत्र ही साम्राज्य है।

साम्राज्य में जो शासन करते है, वे ही सम्राट है। सम्राट का मतलब है — बड़ा राजा। जो राजा असंख्य जनगण (जनता) और अंचल (क्षेत्र) के शासक होते हैं, वही सम्राट है। उनके शासन क्षेत्र में उनकी ही बातें अंतिम बात होती है। वे राजाओं के भी राजा है। अर्थात् राजाधिराज (राजा + अधिराज) । लेकिन अगर सम्राट महिला होती, थी तो उन्हें सम्राज्ञी कहा जाता था।

साम्राज्य युद्ध करके ही बना। मान लीजिए, एक राजा ने युद्ध में दूसरे राजा को पराजित कर दिया। इसके बाद ही सभी राज्यों को मिलाकर एक बड़ा शासन क्षेत्र बना। उसे ही साम्राज्य कहा जाता है। वही विजयी राजा एक बड़ा यज्ञ करके इस विशाल उपाधि को लिए। तब उस समय उससे अधिक शक्तिशाली और कोई नहीं रह गया, तो वे ही सम्राट बन गए। सभी क्षेत्रों में राजा यज्ञ करके सम्राट नहीं बनते थे।

६.२ भारतीय उपमहादेश में प्रथम साम्राज्य कैसे बना ?

सोलह महाजनपद की बातें तो आप लोग पहले ही जान चूके हो। वही एक-एक महाजनपद एक-एक राज्य था। मगध महाजनपद में लगातार तीन राजवंशों ने शासन किया था। वे सब राजा ही दूसरे महाजनपदों को अधिकांशत: अपने दखल में किया। अंत में मगध को केन्द्र बिन्दु बनाकर ही भारत में प्रथम साम्राज्य बना और नाम मौर्य साम्राज्य पड़ा।

कुछ बातें

अलेकजेण्डर का भारतीय उपमहादेश का अभियान

ईसा पू० ३०० साल के लगभग हिन्दुकश पर्वत को पार करके भारतीय उपमहादेश में ग्रीस के मेसिडन के शासक अलेकजेण्डर भारत पहुँचे। उपमहादेश के विभिन्न छोटे-बड़े शासकों के साथ उसका युद्ध हुआ था। इन युद्धों में से एडरल पोरस अथवा राजा पुरू के साथ हुई लड़ाई प्रसिद्ध है। पुरू का राजस्व झीलम और चिनाव नदी के मध्य क्षेत्र में था। विशाल सैनिक को लेकर पुरू अलेकजेण्डर के विरूद्ध युद्ध पराजित हुआ। लेकिन उनकी वीरता की भावना को ग्रीकों ने सम्मान दिया था।

प्रायः ३ साल अलेकजेण्डर उपमहादेश में था। अनुमानतः एशिया होते हुए जब वे ग्रीस लौट रहे थे तो तभी रास्ते में बेबीलोन में उसकी मृत्यु हो गई।

भारतीय उपमहादेश के पंजाब प्रांत तक अलेकजेण्डर गए थे। गंगा घाटी की ओर वे आगे नहीं बढ़े। लेकिन अलेकजेण्डर के अभियान के कारण उपमहादेश के उत्तर भाग में छोटे-छोटे शक्तियों की क्षमता कम हो गयी थी। जिसके फलस्वरूप ईसा पू० ३२० साल के लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए साम्राज्य का गठन करना सहज हो गया। पंजाब और उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में अत्यंत सहजता के साथ मौर्य की क्षमता का विस्तार हो गया।

चित्र ६.१ : अलेकजेण्डर और उसका प्रिय घोड़ा बुकेफेलास

चन्द्रगुप्त मौर्य की कहानी

उपमहादेश में अलेकजेण्डर के अभियान के समय मगध के सिंहासन पर राजा नन्द थे। वे प्रजा के प्रिय नहीं थे। राजा नन्द के चाणक्य नामक एक पण्डित राजा नन्द के क्रोध के शिकार बन गए। चाणक्य की सहायता से ही चन्द्रगुप्त मौर्य राजा नन्द के विरूद्ध युद्ध किया और अंत में नन्दराजा धननन्द चन्द्रगुप्त मौर्य से पराजित हुए। इस प्रकार से ही मगध की क्षमता का विस्तार हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने उस क्षमता को और अधिक बढ़ाया। अलेकजेण्डर के सहकारी ग्रीक प्रशासक के विरूद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य ने युद्ध किया। सिन्धु घाटी को दखल करने को केन्द्र करके ग्रीकों के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य में हुआ। इस क्षेत्र के शासक अलेकजेण्डर के सेनापति सेल्यूकस निकेटर थे। उनके साथ चन्द्रगुप्त का विवाद एक समझौता के माध्यम से समाप्त हुआ। दोनों पक्षों में बंधुत्व की भावना उत्पन्न किया करते थे।

भारतीय उपमहादेश में मौर्य साम्राज्य ही प्रथम साम्राज्य था। चन्द्रगुप्त मौर्य उस साम्राज्य के प्रथम सम्राट ईसा पू० ३२५ / ३२४ –३०० साल तक पाटलिपुत्र उसकी राजधानी थी। मौर्य साम्राज्य का विस्तार करने में चन्द्रगुप्त मौर्य का कृतित्व ही प्रधान था।

कुछ बातें

अर्थशास्त्र

प्राचीन भारत में शासन का संचालन के लिए कुछ पुस्तकों को लिखा गया था। राज्य का शासन कैसा होना चाहिए इन सब बातों का उल्लेख उन पुस्तकों में रहता था। वैसे ही एक पुस्तक कौटिल्य का अर्थशास्त्र है। इसके लेखक कौटिल्य हैं। प्राय: लोग कौटिल्य और चाणक्य को एक ही व्यक्ति मानते है। लेकिन यह बात प्रमाणिक है कि कौटिल्य और चाणक्य दोनों अलग व्यक्ति है।

अर्थशास्त्र कब लिखा गया, यह बता पाना मुश्किल है। ईसा पू० तृतीय शताब्दी के लगभग इस पुस्तक का कुछ भाग लिखा गया था। लेकिन ईसा के प्रथम और द्वितीय शताब्दी के लगभग अर्थशास्त्र लिखने का कार्य पूरा हुआ था। उसी आकार में आज हम पुस्तक को देखते है। इसलिए अकेले कौटिल्य ने इस पुस्तक को नहीं लिखा। लेकिन पुस्तक की मूल विषय वस्तु उनके द्वारा ही लिखा गया था। पुस्तक को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पुस्तक केवल देखकर ही लिखी गयी है, लेकिन ऐसी बात नहीं है। अर्थशास्त्र के अनुसार राष्ट्रीय शासन कार्य के प्रधान राजा थे। उनकी बात ही अंतिम बात थी। जरूरत पड़ने पर राजा को छल और चालाकी भी करना पड़ता था। राज–काज के समस्त विषयों के बारें में गम्भीरता से अर्थशास्त्र में जिक्र है। पुस्तक में लिखा है शासक को क्या–क्या करना चाहिए। लेकिन उसके सभी उपदेशों को मौर्य शासक मानते थे, ऐसी बात नहीं है। मौर्य शासन काल के इतिहास को जानने के लिए अर्थशास्त्र एक जरूरी उपादान है।

???

सोचकर देखो

अर्थशास्त्र –किताब एक व्यक्ति द्वारा लिखी किताब नहीं है। उसी तरह आपके लिये अलग–अलग किताब सिर्फ एक स्थिति के लिये नहीं। इसी तरह अनेक लोगों के लिखी हुई एक किताब लिखी जाती। क्यों ? आपके के मन में यह विचार आता है प्रयोजन पड़ने पर पृष्ठ नं० ११४ कुछ बातें विचार में तो आयें।

मौर्य सम्राट अशोक

चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् उसका पुत्र बिन्दुसार सम्राट बना (ईसा पू० ३०० से २७३ अब्द। बिन्दुसार के समय में मौर्य साम्राज्य का ज्यादा विस्तार नहीं हुआ। बिन्दुसार का पुत्र अशोक ने लगभग चार दशक तक शासन किया (लगभग ईसा पू० २७३ से २७२) अपने शासन काल में अशोक काफी कठोर हो गए थे, ऐसा कहा जाता था।

चित्र ६.२ : सम्राट अशोक की एक भाष्कर्य मूर्ति।

पूरे जीवन में अशोक ने केवल एक युद्ध किया वही भी कलिंग का युद्ध। उस युद्ध में काफी लोगों की मृत्यु हुई। इस हिंसा के लिए अशोक को काफी दु:ख हुआ। कहा जाता है कि बौद्ध सन्यासी उपगुप्त ने अशोक को बौद्ध धर्म की दीक्षा दिए थे। यह घटना कलिंग युद्ध के बाद ही घटी। बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण अशोक ने हिंसा को बन्द किया। युद्ध करना भी छोड़ दिया। पशुओं को मारना भी बन्द कर दिया। सभी लोग कैसे अच्छी तरह से रहे उसकी उन्होंने व्यवस्था की। लेकिन उसके साथ-साथ साम्राज्य का भी भली भाँति संचालन करते रहे। सम्राट अशोक का साम्राज्य उत्तर आफगानिस्तान से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक फैला हुआ था। पश्चिम में काठियावाड़ से लेकर पूर्व में कलिंग भी इसी साम्राज्य के अन्तर्गत था। अशोक के शासन काल में भी पाटलिपुत्र ही मौर्य की राजधानी थी।

साम्राज्य चलाने के विभिन्न पहलू

कलिंग राज्य के जीतने के पश्चात् मौर्य साम्राज्य का क्षेत्र और भी अधिक बढ़ गया। इतना बड़ा साम्राज्य इसके पहले कभी भी नहीं देखा गया था। केवल साम्राज्य का विस्तार करने से ही सम्राट का कार्य पूरा नहीं होता, बल्कि अच्छी तरह से शासन का कार्य चलाना भी जरूरी है। मौर्य सम्राट शासन व्यवस्था के प्रति काफी सक्रिय थे। सम्राट द्वारा जारी किए गये आदेश को सभी प्रजा मानने के लिए बाध्य थी। लेकिन मौर्य प्रशासन में पुरोहितों की विशेष भूमिका देखने को नहीं मिलती थी। मौर्य सम्राट किसी भी प्रकार का यज्ञ करके अपनी क्षमता की मांग नहीं करते थे। वे देवानंगप्रिय अथवा देवताओं की प्रिय उपाधि का प्रयोग करते थे। अशोक उसके साथ पियदसी अथवा प्रियदर्शी उपाधि भी जोड़ दिए थे। फलस्वरूप मौर्य सम्राट प्रजा के सामने अपने आप का देवता जैसा ही सम्मानीय व्यक्ति के रूप में माने जाते थे।

चित्र ६.३ : मौर्य काल की मुद्रा। मुद्रा के आकार पर ध्यान दो।

विशाल मौर्य साम्राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मगध था. अशोक ने स्वयं को मगधराज (मगध का राजा) के रूप में घोषणा किए थे। उत्तर भारत के बहुत सारे राज्यों पर मौर्यों ने जीत हासिल की। वे ही प्रधान-प्रधान शासन इलाका (क्षेत्र) था। उत्तर-पश्चिम सीमांत और दक्षिण के इलाको में प्रांतीय क्षेत्र था। लेकिन मगध और प्रधान शासक क्षेत्रों में मौर्य साम्राज्य का आधिपत्य सबसे ज्यादा था।

सम्राट के बाद ही राजकर्मचारी थे। उन्हें **अमात्य** कहा जाता था। अमात्यों की सहायता से ही सम्राट शासन चलाते थे। मौर्य के शासन काल में मंत्री परिषद था। लेकिन उनके परामर्श को मानने के लिए सम्राट बाध्य नहीं थे। अमात्यों को तीन प्रकार के पदों में बाँटा गया था। सम्राट अशोक के शासन काल में अमात्यों के बारें में

जानकारी नहीं मिलती थी। उसके बदले में महामात्र को ही सबसे ऊँचा पद मिलता था सम्राट अशोक की शासन व्यवस्था लगभग पूरी तरह से महामात्रों के ऊपर ही निर्भर था। महामात्रों में भी विभिन्न प्रकार के पद बंटे हुए थे। उनके कार्य का क्षेत्र भी अलग था। महिलाओं को भी महामात्र के रूप का दायित्व दिया जाता था।

कुछ बातें

पाटलिपुत्र नगर का संचालन : मेगस्थनीज की दृष्टि में

ग्रीक शासक सेल्यूकस के दूत के रूप में मेगस्थनीज कन्धार से पाटलिपुत्र के दरबार में गए। अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल की बातों को मेगस्थनीज ने लिखा. लेकिन यह पुस्तक अभी नहीं मिलती है। लेकिन दूसरे ग्रीक लेखक की दूसरी पुस्तकों में इस पुस्तक के कुछ भाग है। ग्रीक के रूप में भारतीय उपमहादेश के भाषा और समाज को मेगस्थनीज पूरी तरह से समझ नहीं पाएं। फलस्वरूप उसके लेख में काफी गलतियाँ है। लेकिन मौर्य साम्राज्य के इतिहास को जानने के लिए **इण्डिका एक जरूरी विदेशी उपादान है**।

मेगस्थनीज के लेख से पाटलिपुत्र नगर के शासन संचालन के बारे में जानकारी मिलती है। नगर संचालन के लिए छः दल मिलकर ही पूरे नगर के विभिन्न महत्त्वपूर्ण स्थानों की देख-भाल करते थे। वे मंदिर, मस्जिद बन्दरगाह एवं वस्तुओं की कीमत को तय करते थे। नगर संचालन के कार्य के लिए सैनिक भी रहते थे।

साम्राज्य को बरकरार रखने के लिए मौर्यों को सेना की जरूरत पड़ी। सेना के ऊपर सम्राट की क्षमता टीकी हुई थी। कहा जाता है कि मौर्यो की सेना विशाल थी। घोड़ा रथ, हाथी, नौका इत्यादि सेना प्रयोग करती थी। इसके साथ ही पैदल सैनिक भी थी। जो पैदल चलकर ही युद्ध करते थे। मौर्य सम्राट ही सबसे पहले गुप्तचर को साम्राज्य की खोज खबर लाने के काम में लगाया। विदेशी अथवा अपरिचित लोगों पर गुप्तचरों का ध्यान रहता था। राजकर्मचारी ऐसा कि राजकुमार भी इनके दृष्टि से नहीं बच पाते थे। साम्राज्य की सारी खबरे सम्राट के पास पहुँच जाती थी।

कुछ बातें

महास्थान गढ़

महास्थान अथवा महास्थानगढ़ वर्त्तमान बांग्लादेश के बगुड़ा जिला का एक प्राचीन स्थल है। यहीं पर मौर्य काल में लिखी गई ब्राह्मी लिपि का एक लेख मिला है। मौर्य सम्राट अशोक की लिपि के साथ इस लिपि का मेल मिला है। उसका समय काल ईसा पू० तृतीय शताब्दी था। महास्थान लेख प्राचीन पुन्ड्रनगर (वर्त्तमान महास्थान) महामात्र के उद्देश्य के लिए लिखा गया था। यह लेख वास्तव में मौर्य सम्राट का आदेश था. इस आदेश में यह बताया गया था कि किस तरह से मौर्य राजा अकाल के समय (प्राकृतिक अथवा दूसरे कारणों से जो जरूरी परिस्थिति उत्पन्न होती है। मुकाबला करेंगे उसका परामर्श इसमें दिया गया था। यह 'अकाल' तीन प्रकार का था। पंगपाल फसल नष्ट करने का अकाल दवानल का अकाल एवं बाढ़ के कारण अकाल।

कुछ बातें

राजा बनना क्या आसान है!

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि आलसी राजा की प्रजा भी आलसी होती है। अगर राजा कार्य करते है तो प्रजा भी कार्य में व्यस्त रहेगी। इसलिए एक राजा को प्रत्येक दिन क्या-क्या करना चाहिए, उसकी तालिका कौटिल्य ने नीचे दी है। २४ घण्टे को दो भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक १२ घण्टे में आठ प्रकार के कार्य को राजा को करना चाहिए। सूर्य निकलने के बाद रात तक यह सारे कार्य होंगे। तालिका निम्न प्रकार है —

दिन	रात
१. जमा एवं खर्च के हिसाब का जांच करेंगे तथा सुरक्षा व्यवस्था के बारें में खोज खबर लेना।	१. गुप्तचरों के साथ बातचीत करेंगे।
२. नगर और ग्राम के लोगो की सुविधा-असुविधा की बात सुनेंगे।	२. स्नान-खाना और पढ़ाई-लिखाई करना।
३. स्नान-खाना और पढ़ाई-लिखाई करना।	३. गीत सुनते-सुनते बिछावन पर सोकर आराम करना।
४. नगद राजस्व लेंगे। विभिन्न मंत्रियों के बीच कार्य का बंटवारा करेंगे।	४. राज्य संचालन के प्रति नये-नये कार्य की रूपरेखा तैयार करना।
५. मंत्री परिषद का परामर्श लेंगे। पत्र लिखेंगे।	५. सोएंगे (सब मिलाकर ४ $\frac{१}{२}$ घण्टा सोने का समय राजा के लिए निश्चित किया गया।
६. आराम करेंगे अथवा अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे।	६. संगीत के शब्द को सुनकर नींद से उठेगे। शासन की विभिन्न पद्धति को लेकर सोचेंगे। क्या-क्या कार्य करना होगा, इसके बारें में भी सोच-विचार करेंगे।
७. हाथी, घोड़ा, रथ सेना एवं सामंतों की स्थिति के बारें में जानकारी लेना।	७. मंत्रियों के साथ आलोचना करेंगे। गुप्तचरों को विभिन्न कार्य के लिए भेंजेगें।
८. सेनापति के साथ युद्ध और सैनिक के बारें में आलोचना करना।	८. पुरोहितों का आशीर्वाद लेगें। अपने चिकित्सक के साथ मुलाकात करेंगे। प्रधान रसोईयाँ एवं ज्योतिषी के साथ भी मुलाकात करेंगें।

सोचकर देखो

आप लोग पूरे दिन क्या-क्या कार्य करते हो ? उन सभी कार्यों की एक तालिका बनाओं।

विशाल साम्राज्य को चलाने के लिए सम्राट प्रजा से कर लेते थे। मौर्य ही सबसे पहले राजस्व अथवा कर व्यवस्था को लागू करवाया। राजस्व का सबसे ज्यादा अदाएगी कृषि से ही होता था। किसान अपनी फसल के $\frac{1}{6}$ भाग ही राजस्व के रूप में देते थे वलि और भाग नाम की दो प्रकार की भूमि राजस्व मौर्य के शासन काल में आरम्भ हुआ। लेकिन सम्राट अपनी इच्छानुसार कर में छुट भी देते थे। गौतम बुद्ध का जन्मस्थान लुम्बिनी ग्राम में वलि कर में सम्राट अशोक छुट दिये थे। कारीगर, व्यवसायी, व्यापारी, सभी से मौर्य प्रशासन कर की अदाएगी करते थे। लेकिन पाटलिपुत्र में बैठकर विशाल साम्राज्य पर शासन करना सम्भव नहीं था। उस साम्राज्य के विभिन्न प्रदेश में शासन कार्य की देखभाल करने के सम्बंध में सम्राट को सोचना पड़ता था। प्रदेश के नीचे जिला प्रशासन था। जिला प्रशासन को आहार कहा जाता था। इस प्रकार से सम्राट और उसके नीचे राजकर्मचारी के विभिन्न स्तर भाग मौर्य शासन व्यवस्था में देखा गया। साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में लोगों की भाषा भी अलग थी। उसी बात को ध्यान में रखकर ही सम्राट के वक्तत्य को विभिन्न भाषाओं में प्रचारित किया जाता था। साम्राज्य के उत्तर भाग में पालि भाषा का प्रयोग होता था। वही दूसरी ओर दक्षिण भाग में प्राकृत भाषा में प्रचार होता था।

केवल कर्मचारी, सेना एवं गुप्तचर के ऊपर ही मौर्य साम्राज्य की नींव टिकी हुई नहीं थी। मौर्य सम्राट अशोक अपने धम्मनीति अथवा धर्मनीति से जनता को एकजुट करने का प्रयास किए। कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने और कोई दूसरा युद्ध नहीं किया। हिंसा के बदले शांति की नीति को उन्होंने अपनाया। बौद्ध रीति नीति का उनपर प्रभाव पड़ा था. मनुष्य और पशु-पक्षी के ऊपर हिंसा को रोकने के लिए अशोक ने प्रयास किए। साम्राज्य के सभी जगह उन्होंने धम्म की बातों को पहुँचाया था।

कुछ बातें

मौर्य शासन और जंगल के निवासी

मौर्य शासन विभिन्न प्रकार के लोगों को एक ही शासन के अन्तर्गत लाना चाहते थे। लेकिन जंगल के निवासियों के प्रति उनकी सोच अच्छी नहीं थी। जंगल में जो लोग रहते थे, उन्हें नीच, असभ्य और बेकार समझा जाता था। अटवी का अर्थ है —जंगल। जो जंगल में रहते है वे आटवीक है। कहा जाता था कि वे विभिन्न प्रकार के झमेले का सूत्रपात मौर्य साम्राज्य में करते थे। वहीं दूसरा समूह जंगल के निवासी अरण्यचर था। वे बहुत ही शांत और अच्छे थे। लेकिन जंगल के निवासियों को जनपद में नहीं रखा जाता था। गुप्तचर ऋषि के रूप में उनपर नजर रखते थे। जंगल से बहुत कुछ मिलता था। इस जंगल के ऊपर अपना कब्जा जमाना जरूरी था। पेड़ काटने अथवा पशु-पक्षी को मारने पर उन्हें दण्ड भी मिलेगा ऐसी घोषणा सम्राट अशोक ने किया था।

कुछ बातें

अशोक के धम्म

सम्राट अशोक के धम्म और बौद्ध धर्म की मूल बातों में कुछ समानता देखने को मिलती है। लेकिन धम्म बौद्ध धर्म नहीं है। क्योंकि, अस्टार्गिक मार्ग की बातें अशोक के धम्म में नहीं है ऐसा कि निर्वाण प्राप्ति की भी बातें नहीं है। वास्तव में धम्म में कुछ सामाजिक आचरण के ऊपर ही ज्यादा जोर दिया गया। हिंसा नहीं करना ही इसकी मूल बातें है। प्राणी हत्या (जीव हत्या) को बन्द करने के ऊपर सम्राट अशोक ने ज्यादा जोर दिया था। इतना ही नहीं शिकार और मछली पकड़ने पर भी पाबंदी जारी किया गया। सम्राट अशोक ने घोषणा किया था कि एक जीव दूसरे जीव का भोजन नहीं हो सकता है। इसके साथ ही साथ दया, दान, सत्य कथा— इन सभी आचरण की बातें भी धम्म में कहा गया है अशोक ने अपनी प्रजा को संतान कहा था। इसलिए कहा जाता था कि प्रजा भी पिता के समान सम्राट अशोक को मानते थे। सम्राट को मानकर ही चलना मौर्य साम्राज्य की बुनियाद थी।

मानचित्र ६.१ : अशोक के शासन काल का साम्राज्य (ईसा पू० तृतीय शताब्दी)

६.३ मौर्य शासन का अंतिम समय, कुषाण और सतवाहन शासक

सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य में विभिन्न प्रकार की समस्या देखने को मिली। योग्य सम्राट के अभाव में छोटे राजा स्वाधीन होने का प्रयास किए। इस समय विभिन्न विदेशी जाति भारत में आने लगे। सब मिलकर परिस्थिति काफी जटिल हो गई। ईसा पू०– १८७ साल के लगभग अंत में मौर्य सम्राट वृहद्रथ को हटाकर पुष्पमित्र सुंग राजा हुए।

याद रखो

मौर्यो के पश्चात् मगध में सुंगो का शासन प्रारम्भ हुआ। पुष्पमित्र एवं अग्निमित्र सुंगो के दो प्रधान शासक थे। सुंगो के प्राय: ५० वर्ष के बाद मगध का शासक कान्वरा हुए। चार कान्व शासक के बारें में जानकारी मिलती है। ईसा पू० के प्रथम शताब्दी के अंत में कान्वों का शासन समाप्त हो गया था।

इस समय उपमहादेश के उत्तर–पश्चिम सीमांत पर राजनीतिक स्थिति बदल गई। वाक्ट्रिया ग्रीक और शक–पल्लव अनेक क्षेत्रों में शासन करना आरम्भ किए। लेकिन अंत तक कुषाण ही साम्राज्य बनाया था।

कुछ बातें

गंगारिदाई

ग्रीक और रोमन साहित्य में मगध के पूर्व की ओर एक शक्तिशाली राज्य के बारे में जानकारी मिली और उसका नाम गंगारिदाई अथवा गंगारीद है। इस राज्य की राजधानी गंगा अथवा गांगे बन्दरगाह–नगर था। तलेमीर के अनुसार —गंगा नदी का पाँच मुहँ अथवा मुहाना सभी गंगारिदाई से जुड़ा हुआ था। राजा नन्द के शासन काल में इस राज्य के साथ मगध का सम्पर्क की बातें ग्रीक लेखक ने लिखा 1अलेकजेण्डर के आक्रमण के समय ही गंगारिदाई की सैनिक मगध सैनिकों के साथ युक्त थी। इस राज्य के हाथी वाहिन और योद्धाओं की वीरता की कहानी को ग्रीक लेखकों ने लिखा। ऐसा लगता है कि गंगारिदाई राज्य को ही पेरीप्लास के लेखक ने गंगादेश के रूप में उल्लेख किए। इस राज्य के नाम से ही गंगा नदी के सम्बंध में उसकी स्थिति स्पष्ट होती है। चीन साहित्य और कालिदास के लेखनी से तुलना करने पर एक और विषय उभरकर सामने आता है। वह — गंगादेश अथवा गंगारिदाई और बंग में स्थित एक जगह है। मगध और गंगारिदाई दोनों का प्रयोग करते थे। ग्रीक लेखक दिउदोरास के अनुसार — भारतवर्ष में विभिन्न जातियों का निवास है। लेकिन गंगारिदाई जाति ही सर्वश्रेष्ठ जाति है।

पुरातत्त्वकार को ताम्रलिप्त अथवा तमलूक, चन्द्रकेतुगढ़, देगंगा इत्यादि स्थानों पर असंख्य प्राचीन उपादान मिले। उन सभी उपादानों के साथ गंगारिदाई के साथ सम्बंध था, ऐसा माना जाता है।

कुषाण कौन थे ?

मध्य एशिया से एक यायावर समूह पश्चिम की ओर चले गए। वे यहाँ के आफगानिस्तान और भारतीय उपमहादेश के उत्तर–पश्चिम भाग में पहुँचे। इनमें से इडेय–झी समूह सबसे महत्त्वपूर्ण था। इस समूह की एक शाखा कू एई सुयात था। वे वाकट्रियार के ऊपर अधिकार कायम किए हुए थे। ये लोग ही भारतीय इतिहास में कुषाण के नाम से परिचित थे। धीरे–धीरे कुषाणों ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया।

चित्र ६.४ :
कुजुल कदामिसेसर की ताँबें की मुद्रा।

चित्र ६.५ :
बिम कदाफिसेसर की सोने की मुद्रा।

चित्र ६.६ :
कनिष्क के सोने की मुद्रा।

चित्र ६.७ :
हुरिष्क के सोने की मुद्रा।

कुषाण साम्राज्य को प्रतिष्ठित करने का प्रधान कृतित्व कुजूल कदाफिसेस को था। काबुल और काश्मीर का क्षेत्र उसके दखल में था। इसके बाद कुजूल का पुत्र बिम कदफिसेस शासक बना। सिंधु नदी के जलवायु क्षेत्र में बिम का शासन था। विशाल शक्तिशाली कुषाण शासक के रूप में जमकाला की उपाधि विम ने लिया था। भारतीय उपमहादेश में सोने की मुद्रा को सर्वप्रथम उसने ही चालू किया।

बिम का पुत्र प्रथम कनिष्क कुषाणों के श्रेष्ठ राजा थे। अन्ततः तेईस वर्ष तक कनिष्क ने शासन किया। ७८ ईसवी में वे शासक बने। उसी साल से ही शताब्दी (शकाब्द)की गिनती शुरू हुई। कनिष्क के शासन काल में कुषाण का शासन गंगा के पर्वतीय क्षेत्रों के विशाल भाग में फैल गया था. यहाँ के पाकिस्तान का प्रायः पूरा क्षेत्र ही कुषाण शासक के अन्तर्गत था। मथुरा तक भारतीय उपमहादेश में कुषाणों का शासन फैल गया था। कनिष्क की राजधानी पुरूषपुर अथवा पेशावर था। लेकिन कुषाणों का प्रधान शासन केन्द्र वाकट्रिया अथवा वालहिक प्रदेश था।

प्रथम कनिष्क के बाद वासिष्क और हुविष्क शासक बने। धीरे-धीरे कुषाणों के शासन में पतन दिखाई दिया। एक समय पश्चात् कुषाण शासकों के बारें में विशेष जानकारी नहीं मिलती है।

कुछ बातें

कलिंगराज खारवेल हाथी गुफा के शिलालेख :

मौर्य सम्राट अशोक के शासन काल में कलिंग मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। मौर्यो के पश्चात् कलिंग पुनः स्वाधीन हो गया। चेदी वंश के शासकों ने कलिंग पर शासन करना आरम्भ किया। इस वंश के शासक खारबेल कलिंग का प्रथम शक्तिशाली राजा था। ईसा पू० के प्रथम शताब्दी के अंत तक खारबेल का शासन था। हाथी गुफा के शिलालेख से खारबेल के बारे में जानकारी मिलती हैं।इस शिलालेख में ही भारतवर्ष शब्द का प्रयोग किया गया। लेकिन वहाँ पर भारतवर्ष का मतलब सम्भवतः गंगा के पर्वत्तीय क्षेत्र का एक भाग समझा जाता था। लेकिन ईसा के प्रथम शताब्दी के प्रथम में ही चेदियों का शासन समाप्त हो गया था।

दक्षिण भारत में सतवाहन शासन

मौर्य साम्राज्य के बाद दक्षिणात्य और दक्षिण भारत में सतावहन शासन देखा गया। इस समय दक्षिणात्य के उत्तर-पश्चिम भाग और गुजरात क्षेत्र में शको का शासन था। ईसा पूर्व के प्रथम शताब्दी के द्वितीय भाग के दक्षिणात्य में सतवाहन का शासन शुरू हुआ था। लगभग २२५ ईसवी अथवा उसके कुछ समय पश्चात् सतवाहन का शासन समाप्त हुआ।

सतवाहन वंश के प्रथम शासक सिमुक के शासन काल में प्रतिष्ठान और विभिन्न घाटी क्षेत्रों में सतवाहन का शासन था। राजा प्रथम सतकर्णी सतवाहन वंश के तृतीय राजा थे। उसके शासन काल में सतवाहनों का प्रभाव विस्तार हुआ था। प्राय: पूरे दक्षिण भारत में उसकी क्षमता का विस्तार हुआ। लेकिन सतवाहनों के प्रधान विरोधी शक्ति पश्चिम भारत के शक-क्षत्रप थे। उस समय दक्षिणात्य की राजनीति में शक-सतवाहन की लड़ाई में शासक नहपान सफल भी हुए थे।

सतवाहनों की क्षमता गौतमीपुत्र सतकर्णी के शासन काल में पुन: लौट आया। पश्चिम के पर्वतीय क्षेत्र से लेकर पूर्व के पर्वतीय क्षेत्र तक समस्त दक्षिणात्य में उनका शासन था। शक-क्षत्रप को पराजित करके दक्षिण और पश्चिम भाग एवं मालवे में भी गौतमीपुत्र ने अपना अधिकार कायम किया। उसके शासन काल में नासिक लेख और कार्ले लेख से उनके राज्य विस्तार के बारे में जानकारी मिलती है।

एक दूसरे शक-क्षत्रप समूह के साथ भी सतवाहनों की लड़ाई हुई थी। इस समूह के विख्यात शासक रूद्रदामन थे। उसे महाक्षत्रप की उपाधि मिली थी। उनके कृतित्त्व के बारें में जुनागढ़ में पाए गए एक शिलालेख से जानकारी मिलती है। शक-क्षत्रप शासकों की क्षमता उज्जैन से गुजरात और काथियाबाड़ तक फैला हुआ था।

शक – सतवाहन लड़ाई के पीछे राजनीतिक और अर्थनीतिक कारण था। विशेष कुछ क्षेत्रों पर इन दोनों शक्ति पर अधिकार जमाना जरूरी था। वैसा ही एक क्षेत्र पूर्व और पश्चिम का मालव क्षेत्र था। पूर्व मालव के कोसा क्षेत्र में एक हीरे का खान भी था। पश्चिम मालव के जरिए समुद्र-व्यापार होता था। इसके अलावा दक्षिणात्य के पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र से रोम-भारत का व्यापार होता था। फलस्वरूप इन क्षेत्रों की दखलदारी के लिए शक और सतवाहनों में लड़ाई हुआ करती थी।

धीरे-धीरे दक्षिणात्य में सतवाहन का शासन समाप्त हो गया। उसके स्थान पर कुछ छोटे-छोटे राजवंश तैयार हुए।

कुषाण एवं सतवाहन की शासन पद्धति

प्राचीन चीन के सम्राट स्वयं को देवता का पुत्र कहते थे। कुषाण वास्तव में चीन से आए थे। इसीलिए वे चीनी सम्राट की भाँति स्वयं को देवपुत्र अर्थात् देवता के पुत्र के रूप में घोषित करते थे। बिम कदाफिसेस दमअर्त अथवा विश्व ब्रह्माण्ड कर्त्ता की भी उपाधि लिए थे। कनिष्क की उपाधि महाराजा राजाधिकार देवपुत्र शाही ने लिया। कुषाणों की मुद्रा में सिर के पीछे एक प्रकार का ज्योतिर्वलय दिखाई देता था। वैसा ही ज्योतिर्वलय देवताओं के सिर के पीछे खुदाई किया रहता था सम्राट और देवता दोनों

कुछ बातें

नासिक लेख

महाराष्ट्र के नासिक से दो लेख मिला है। पहला गौतमी पुत्र सतकर्णी के शासनकाल के १८ वर्ष, दूसरा २४ वर्ष के शको को ध्वंस करके गौतमीपुत्र सतवाहन के खोए हुए गौरव को वापस पाने का उल्लेख मिलता है। ऐसा लगता है कि वे पुन: नासिक क्षेत्र पर शासन किए थे। मुद्रा से भी इस बात का प्रमाण मिला है। पश्चिम की घाटी से पूर्व की घाटी तक पूरे दक्षिणात्य में अपना अधिकार कायम किए थे। शक क्षत्रप महपान के विरूद्ध सफल होने के बावजूद कादेमक वंश के शक राजा चष्टनेर से गौतमीपुत्र सतकर्णी पराजित हुए थे।

भारतीय उपमहादेश की कुछ राजशक्ति

(ईसा पू० के द्वितीय शताब्दी से लेकर ईसा के तृतीय शताब्दी)

को एक ही समझाने के लिए शासक वर्ग विभिन्न प्रकार के प्रयास करते थे। वैसा ही एक प्रयास देवकुल की प्रतिष्ठा थी। विशाल कुषाण साम्राज्य में विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते थे। उन सभी को एकजुट करने के लिए ही शासक को देवता के रूप में प्रचार किया जाता था। देवकुल मंदिर जैसा ही एक पूजा स्थल था। वहाँ पर कुषाण सम्राट की मूर्ति रखी जाती थी। मथुरा में एक देवकुल था। वहाँ पर सम्राट बिम का सिहांसन पर बैठा हुआ मूर्ति पाया गया। सम्भवतः प्रथम कनिष्क का सिर टूटा हुआ मूर्ति इसी देवकुल का था।

कुषाण शासन में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ दो लोग मिलकर राजपाट चलाते थे। कुछ क्षेत्रों में यह भी देखा गया कि पिता और पुत्र दोनों एक साथ शासन का कार्य करते थे। शासन व्यवस्था की सुविधा के लिए साम्राज्य को कई प्रदेशों में बाँटा जाता था। इन प्रदेशों के शासक को क्षत्रप कहा जाता था।

सतवाहन शासन व्यवस्था में राजा ही प्रधान था। इतना ही नहीं वे सेना के भी प्रधान थे। कुषाणों की भाँति सतवाहन के शासक भी शासन व्यवस्था की सुविधा के लिए बड़े क्षेत्रों को छोटे-छोटे प्रदेशों में विभाजित किए थे। सतवाहन शासन में प्रदेश का दायित्व अमात्य नामक कर्मचारी पर रहता था। 'भाग' और 'वलि' दोनों प्रकार का

कर लिया जाता था। उत्पन्न फसल का $\frac{७}{६}$ भाग के रूप में हिसाब लिया जाता था। वाणिज्यिक लेन-देन से भी कर की अदाएगी की जाती थी। कुषाण-सतवाहन के समय में वाणिज्य की काफी उन्नति हुई थी। फलस्वरूप कारीगर और व्यापारियों से शासक वर्ग कर की अदाएगी किया करते थे ? व्यापारियो से नगद कर सतवाहन के समय लिया जाता था। सतवाहन शासक धर्मीय प्रतिष्ठान को जमीन देने पर कर नहीं लेते थे। विशेष क्षेत्रों में कभी-कभी कर में रियायत भी दिया जाता था। मौर्य साम्राज्य की भाँति कुषाण और सतवाहन ने भी नमक पर कर लगाया था।

राजतांत्रिक शासन के साथ-साथ अराजतांत्रिक समूह का भी शासन था। मध्य भारत और पश्चिम भारत के कुछ क्षेत्रों में अराजतांत्रिक समूह टीका हुआ था। वे स्वयं ही ताँबे की मुद्रा का प्रचलन शुरू किये। राजशक्ति के साथ एवं समूहों के साथ लड़ाई भी हुआ करता था।

कुछ बातें

कनिष्क की मूर्ति

१९११ ईसवी में मथुरा के नजदीक के क्षेत्र से एक मूर्ति मिली। उसका सिर और केहुनी टूटा हुआ था। उसे देखकर एक वीर योद्धा राजा की मूर्ति प्रतीत होती थी। मूर्ति के दाहिने हाथ पर एक राजदण्ड पकड़ा हुआ था। बाँयी हाथ की मुट्ठी पर हस्तकला की हुई तलवार का बट था लम्बे पैरों तक उस मूर्ति ने कोट पहना हुआ था। कमर में बेल्ट भी लगा हुआ था। उसके ऊपर पैरों की एड़ी तक एक आलखल्ला भी था। मूर्ति के पैरों में जूता भी था। मूर्ति के नीचे ताम्रलिपि में कुछ लिखा गया था। इससे यह जानकारी मिली कि वह कुषाण सम्राट प्रथम कनिष्क की मूर्ति थी।

६.४ गुप्त साम्राज्य

अनुमानत: २६२ ईसवी के लगभग उत्तर भारत में कुषाण शासन का अंत हो गया था। उसके भी प्राय: पचास वर्ष से भी ज्यादा उत्तर भारत में गुप्त शक्ति महत्त्वपूर्ण होते गयी। पहले पहल तो गुप्त शासक महाराज की उपाधि लेते थे ? लेकिन सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम के समय से ही गुप्त शासक महाराजाधिराज की उपाधि लेते थे।

अर्थात् चन्द्रगुप्त प्रथम के समय से ही गुप्त शासन की क्षमता चारों तरफ फैल गयी थी। ३१९-३३० ईसवी में चन्द्रगुप्त प्रथम शासक बने। इस समय से ही गुप्त काल का आरम्भ माना जाता है। मध्य गंगा की घाटी के आधार करके ही गुप्त साम्राज्य का विस्तार हुआ था। सम्भवत: ३३५ ईसवी तक चन्द्रगुप्त प्रथम का शासन काल था।

परवर्ती शासक समुद्रगुप्त के शासन काल में (अनुमानत: ३३५ से ३६५ ईसवी तक) गुप्त साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ था। उत्तर भारत अथवा आर्यावत के नौ शासकों को समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। जंगल अथवा आटविक राज्य भी उनके अधीन हो गया था। जिसके परिणास्वरूप पूर्व राढ से पश्चिम गंगा घाटी के ऊपर के भाग तक गुप्त शासन का विस्तार हुआ। दक्षिण भारत में भी बारह राजाओं को समुद्रगुप्त ने पराजित किया ?

सुदूर दक्षिण में तामिलनाडू के उत्तर-पूर्व भाग तक गुप्त साम्राज्य का अधिकार फैला हुआ था। लेकिन दक्षिण भारत में अन्ततः बारह राजाओं के शासन को समुद्रगुप्त ने वापस लौटा दिया।

उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक शासन व्यवस्था को कायम रख पाना सम्राट के लिए सम्भव नहीं था। उस समय ही कुछ राजशक्ति समुद्रगुप्त को कर देता था। उसे करद राजा कहा जाता था।

समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ३८६ ईसवी (५६ गुप्ताव्द) के लगभग शासक बना। गुजरात क्षेत्र से शक-क्षत्रप शासको को हटाने का कार्य चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ही किया। इसलिए उन्हें शकारी (शक + अरी (शत्रु) = शकारी। उसके शासन काल में ही सबसे पहले चाँदी की मुद्रा का प्रचलन आरम्भ हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में गुप्त साम्राज्य की परिधि का विस्तार हुआ था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमार गुप्त प्रथम सम्राट बने। (४१४ -४५४ / ४५५ ईसवी)। उसके शासन काल में गुप्त साम्राज्य की परिधि और क्षमता पहले के ही जैसा था। उन्होंने साम्राज्य में विभिन्न प्रकार की मुद्रा का प्रचलन आरम्भ किया। उसके समय में ही नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। कुमार गुप्त प्रथम का पुत्र स्कन्दगुप्त इसके बाद सम्राट बना। अनुमानतः ४५८ ईसवी में उपमहादेश के उत्तर-पश्चिम की ओर हुण समूहों ने आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने सफलता पूर्वक इस आक्रमण को रोका। वे ही सम्भवतः अंतिम गुप्त सम्राट थे, जिनका शासन क्षेत्र विशाल था। उसके बाद से तो गुप्त साम्राज्य की शक्ति कम होती गई। छोटे-छोटे स्थानीय शासक गुप्त शासको की बातों को अस्वीकार करने लगे। उत्तर-भारत में कुछ क्षेत्रीय शासक को भी देखा गया।

दक्षिणात्य में वाकटक शासन

उत्तर भारत में गुप्त शासन के समय ही दक्षिणात्य में वाकटक शासन आरम्भ हुआ था। अनुमानतः २२५ ईसवी के लगभग वाकटक शक्ति दक्षिणात्य में काफी बड़ी शक्ति के रूप में उभरी। सतवाहन शासन तब तक पूरी तरह से समाप्त हो गया था। ईसा के चतुर्थ एवं पंचम शताब्दी में दक्षिणात्य और मध्य भारत के बहुत बड़े भाग तक वाकटक शान था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावतीगुप्त का विवाह वाकटक के राजा रूद्रसेन द्वितीय के साथ हुआ था। जिसके परिणामस्वरूप दक्षिणात्य में भी गुप्त शासन का प्रभाव स्थापित हुआ था। रूद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् प्रभावतीगुप्त ही वाकटक की शासक बनी।

आंध प्रदेश के दक्षिण भाग में क्रमशः पल्लवों की शक्ति बढ़ रही थी। अनुमानतः साँतवी शताब्दी के प्रथम से ही दक्षिण भारत में चालुक्य और पल्लव ही प्रधान शक्ति बनकर उभरी। याद रखने की जरूरत है कि दक्षिण का पल्लव वास्तव में पल्हव अथवा पार्थियों से अलग है।

कुछ बातें

इलाहाबाद प्रशस्ति

इलाहाबाद दुर्ग के भीतर एक शीलालेख है। उस लेख में गुप्त युग की ब्राह्मलिपि और संस्कृत भाषा में खुदाई दी गयी थी। इलाहाबाद के कौसम्बी ग्राम में वह लेख था। परवर्ती समय में मुगल सम्राट अकबर उसे वहाँ से लाकर दुर्ग में रखा। इस लेख में ही प्रशस्ति की खुदाई की गई। यह प्रशस्ति हरिषेण द्वारा गया था। वे सम्राट समुद्रगुप्त के दरबारी कवि थे। इस लेख में सम्राट समुद्रगुप्त का गुणगान किया गया था। सम्राट के रूप में समुद्रगुप्त के युद्ध, राज-काज इत्यादि बातों को लिखा गया था। इस गद्य और पद्य दोनों में ही लिखा गया था। लेकिन इस लेख में केवल समुद्रगुप्त की अच्छी बातों का ही जिक्र है। इसके बावजूद इस समय के इतिहास की जानकारी के लिए यह लेख काफी महत्त्वपूर्ण है।

गुप्त और वाकटक प्रशासन

ईसा के ३०० से ६०० ईसवी तक मध्य भारत के उपमहादेशों की राजनीति और शासन व्यवस्था में काफी परिवर्तन हुआ था। पूरे उपमहादेश में राजतांत्रिक शासन व्यवस्था का विस्तार हुआ था। अराजतांत्रिक शक्ति लगभग समाप्त हो गई थी। ईसा के चौथे शताब्दी के आरम्भ में वैशाली क्षेत्र में लिच्छवि समूह का बोलबाला था। बाद में वैशाली पूरी तरह से गुप्त सम्राट के प्रादेशिक शासन केन्द्र के रूप में परिणत हुआ।

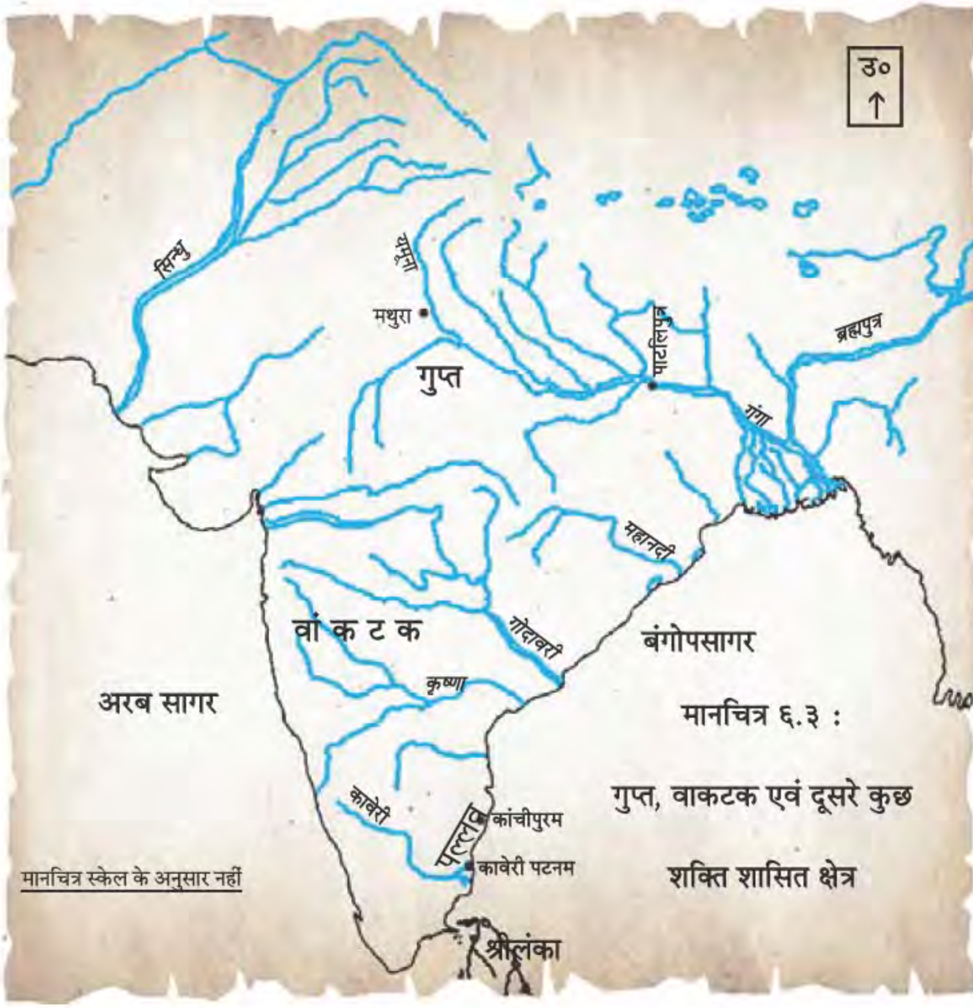

मानचित्र ६.३ : गुप्त, वाकटक एवं दूसरे कुछ शक्ति शासित क्षेत्र

ईसा के चौथे शताब्दी के बाद उत्तर भारत में अराजतांत्रिक समूह लगभग नहीं था। साथ ही साथ जंगल क्षेत्र के आटविक राज्य साम्राज्य का प्रशासनिक क्षेत्र बन गया था।

गुप्त शासन के बुनियादी सरंचना में सम्राट ही प्रधान था। विशाल क्षमता को दिखाने के लिए वे बड़ी-बड़ी उपाधि लेते थे। वाकटक राजा केवल मात्र महाराज की उपाधि का ही प्रयोग करते थे। गुप्त सम्राट अपनी राजनैतिक क्षमता का दिखाने के लिए बड़े-बड़े यज्ञ भी किया करते थे। कुषाणों के जैसा ही गुप्त सम्राट भी अपनी तुलना भगवान से करते थे।

कुछ बातें

चन्द्र राजा का स्तम्भ

दिल्ली के कुतुबमीनार के पास एक ऊँचा लोहा का स्तम्भ है उसके ऊपर एक लेख की खुदाई की गयी थी, उसमें चन्द्र नाम के एक शक्तिशाली विष्णुभक्त राजा का युद्ध वर्णन किया गया था। उस लेख में साल-तारीख का उल्लेख नहीं है। यह चन्द्रराजा कौन थे, इसके बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं मिली। यह लेख सम्भवत: ईसा के पाँचवी शताब्दी में ही खुदाई किया गया था।

इस चन्द्रराजा को चन्द्रगुप्त द्वितीय ही माना जाता था। क्योंकि लेख भी उन्हीं के समकालीन था। इसके अलावा चन्द्रगुप्त द्वितीय विष्णु के भक्त थे। लेकिन असंख्य मेल होने के बावजूद जो लेख में कहा गया था। कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सभी क्षेत्रों पर जीत हासिल नहीं किया था। यह वर्ण काफी हद तक काल्पनिक है।

चित्र ६.८ :
समुद्रगुप्त के सोने की मुद्रा

चित्र ६.९ :
चन्द्रगुप्त द्वितीय के सोने की मुद्रा

चित्र ६.१० :
कुमारगुप्त के सोने की मुद्रा

चित्र ६.११ :

सम्राट के शासन कार्य में राजकर्मचारी सहायता करते थे। गुप्त और वाकटक शासन में विभिन्न पद एवं मर्यादा पर राजकर्मचारी थे। अमात्य और सचिव सबसे महत्त्वपूर्ण राजकर्मचारी थे। गुप्त साम्राज्य में कुछ प्रदेशों को बांटा गया था। और इन प्रदेशों को मुक्ति अर्थात् मगध मुक्ति कहा जाता था। गुप्त साम्राज्य के पश्चिम भाग में मुक्ति के बदले देश शब्द का प्रयोग किया जाता था। प्रदेश का शासन भार गुप्त साम्राज्य के राजकुमारों के हाथों में था। वाकटक प्रदेश राज्य के नाम से परिचित था। राज्य के शासक को सेनापति कहा जाता था।

प्रदेश से छोटा जिला क्षेत्र भी गुप्त शासन में विषय के नाम से परिचित था। वाकटक शासन में विषय शब्द के बदले में जिला क्षेत्रों के 'पट्वा आहार' कहा जाता था। जिला और ग्राम स्तर के शासन व्यवस्था के क्षेत्र में विभिन्न जनप्रतिनिधियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। गुप्त साम्राज्य के शासन में राजकुमार और राजकुमारियों की विशेष भूमिका थी। लेकिन गुप्त साम्राज्य के अंतिम समय में शासन व्यवस्था काफी दुर्बल हो गया था।

६.५ गुप्त के ऊपर उत्तर भारत की अवस्था

ईसा के छठवीं शताब्दी के मध्य के समय से लेकर गुप्तों की क्षमता क्रमशः कम होता गया। एक समय ऐसा आया कि गुप्त साम्राज्य बिखर गया और उसका स्थान छोटे-छोटे राज्यों ने लिया। एक-एक क्षेत्र को लेकर ही निर्मित राज्यों का क्षेत्रीय राज्य कहा जाता था।

पुषाभूतियों का राज्य : हर्षवर्धन का शासन

गुप्त साम्राज्य के बाद ईसा के साँतवी शताब्दी में बड़े साम्राज्य देखने को नहीं मिला। पुषाभूति वंश के हर्षवर्धन ने साम्राज्य बनाने का प्रयास किया। पहले पुषाभूति थानेदार अथवा स्थानीश्वर के शासक थे। प्रभाकर वर्धन के समय से ही पुषाभूति की क्षमता बढ़ते गयी। ६०५ ईसवी के लगभग प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई। उस समय उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन ने शासन का दायित्व सम्भाला।

एक ओर कन्नौज-मालव द्वन्द्व में कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा मारे गये। उसके साथ प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री का विवाह हुआ था। राज्यवर्धन उस समय मालव के विरूद्ध युद्ध का आरम्भ किए। मालव के राजा देवगुप्त के सहयोगी गौड़ के राजा शशांक के हाथों राज्यवर्धन की मृत्यु हुई। उस समय हर्ष कन्नौज और स्थानीश्वर दोनों ने शासन भार सम्भाला। ६०६ ईसवीं में हर्ष सिंहासन पर बैठने के साल से ही हर्षाब्द की गिनती शुरू हुई।

हर्षवर्धन के साथ उस समय के असंख्य राज्य शक्तियों के साथ युद्ध हुआ था। मगध पर जीत हासिल करके हर्ष मगधराज की उपाधि लिए थे। शशांक के साथ हर्ष का विरोध काफी दिनों का था। लेकिन शशांक को कभी भी प्रत्यक्ष तौर पर हर्ष पराजित नहीं कर पाए। चालुक्य शासक पुलकेशीन द्वितीय के साथ भी हर्ष का युद्ध हुआ था। पश्चिम घाटी के वाणिज्यिक बन्दरगाह को दखल करने का प्रयास दोनों ने किया था। लेकिन युद्ध का परिणाम हर्ष के विरूद्ध हुआ। पुलकेशीन द्वितीय के दरबारी कवि रविकीर्ति आइहोल ने प्रशस्ति लिखा था. उसमें स्पष्ट कहा गया है कि युद्ध में हर्ष का हर्ष आनन्द खण्ड-विखण्ड अथवा म्लान हो गया था।

अनेक सैनिक अभियान करने के बावजूद हर्ष का सारा अभियान सफल नहीं हुआ था। हर्ष के सभी उत्तरपथनाथ (उत्तर भारत के समस्त रास्तों के प्रभु) कहा जाता था। लेकिन वास्तव में समस्त उत्तर भारत में हर्ष का शासन था, ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता है। लेकिन उत्तर भारत के अंतिम बड़े क्षेत्रों में शासक के रूप में हर्षवर्धन ही सबसे ज्यादा विख्यात थे। वे शिलादित्य की उपाधि लिए थे।

शासन व्यवस्था के प्रधान व्यक्ति हर्षवर्धन स्वयं थे। उन्हें मंत्री परिषद सहायता करता था। इसके अलावा अमात्यों के भी हाथों में राज काज का दायित्व रहता था। लगातार युद्ध करने के कारण ही हर्ष की विशाल सेनाएँ थी।

इस सभी शासन व्यवस्था के लिए आवश्यकता सम्पद कर से ही आती थी। जमीन से उत्पादित फसल का $\frac{१}{६}$ भाग कर लिया जाता था। इसके अलावा व्यापारियों से भी कर की वसूली की जाती थी। धार्मिक प्रतिष्ठान को बिना कर के ही जमीन का दान दिया जाता था।

प्रादेशिक शासन के क्षेत्र में गुप्त शासन की तरह बुनियादी संरचना हर्ष के समय भी देखा जाता था। सम्भवत: शासन व्यवस्था को चलाने के लिए ही मंत्रियों को लेकर गठित परिषद उनकी सहायता करते थे। दूर के प्रदेशों में सामंत राजा का कोई प्रतिनिधि शासन करता था। प्रत्येक प्रदेश अथवा मुक्ति कुछ विषय अथवा जिला में विभक्त था। शासन व्यवस्था में सबसे नीचे ग्राम था।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् पुषाभूति का शासन समाप्त हो गया। विभिन्न छोटे-छोटे शासक हर्ष के अधीन विभिन्न इलाके (क्षेत्र) को दखल कर लिया।

कुछ बातें

वाणभट्ट का हषचरित

वाणभट्ट हर्षवर्धन को लेकर हर्षचरित काव्य को लिखे। यह वास्तव में एक प्रशस्ति काव्य था। अर्थात् इस काव्य में केवल हर्ष का गुणगान किया गया था। साथ ही साथ पुषाभूतियों के राजत्व और उसके इतिहास की आलोचना वाणभट्ट ने किया। हर्ष का गुणगान करते हुए उनके विरोधियों को तुच्छ दिखाया गया। जैसे राजा शंशाक को छोटा करके दिखाने का प्रयास किया गया। हर्षवर्धन की समाप्ति होती है। हर्षचरित वास्तव में हर्षवर्धन की संक्षिप्त जीवनी है। लेकिन केवल यह गुणगान करने के उद्देश्य से ही लिखा गया था यह स्वीकार कर लेना निरपेक्ष नहीं होगा।

कुछ बातें

सुयान जांग का वर्णन करते हर्षवर्धन, बौद्ध सम्मेलन और प्रयाग का महादान

साँतवी शताब्दी के प्रथम में चीनी बौद्ध भिक्षुक सुयान जांग भारतीय उपमहादेश में आए थे। इसी अभिज्ञता की बात को सी.यू.की. ग्रंथ ने लिखा। सुयान जांग द्वारा लिखे हर्षवर्धन के प्रसंग में बहुत सारी बातें है। लेकिन हर्ष के प्रति सुयान जांग पक्षपाती थे। हर्ष का विभिन्न प्रकार से उन्होंने गुणगान किया था। उनके द्वारा किया गया कुछ वर्णन सत्य प्रतीत नहीं होता है।

सुयान जांग कन्नौज में काफी बौद्धविहार देखे थे। उसके आस-पास मंदिर भी था। सुयान जांग ने हर्ष के बौद्ध धर्म के प्रति लगाव की बात को ही कहा था। वही दूसरी ओर वाणभट्ट के लेख में हर्षवर्धन को शिव भक्त बताया गया था।

सुयान जांग ने लिखा था कि हर्षवर्धन प्रत्येक वर्ष बौद्ध सम्मेलन का आयोजन करते थे। वहाँ पर वे २१ दिन तक विचार-विमर्श करते थे। जो अच्छे कार्य करते थे, उन्हें पुरस्कृत किया जाता था। गलत कार्य करने पर उन्हें राज्य से निकाल दिया जाता था। प्रयाग में हर्ष के महादान क्षेत्र और उत्सव को लेकर भी सुयान जांग ने लिखा। महादान के क्षेत्र में बुद्ध और शिव की मूर्ति बैठाया जाता था। आठ दिनों तक विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का दान किया जाता था। जिसके परिणामस्वरूप पाँच साल तक जमा की गई सम्पत्ति समाप्त हो जाती थी। सब कुछ दान करके हर्ष केवल एक पुरानी पोशाक ही पहनते थे इसके बाद बुद्ध की पूजा करके उत्सव समाप्त होता था। सुयान जांग ने सुना था कि हर्षवधर्न प्रत्येक पाँच साल के अन्तराल पर यह उत्सव करते थे।

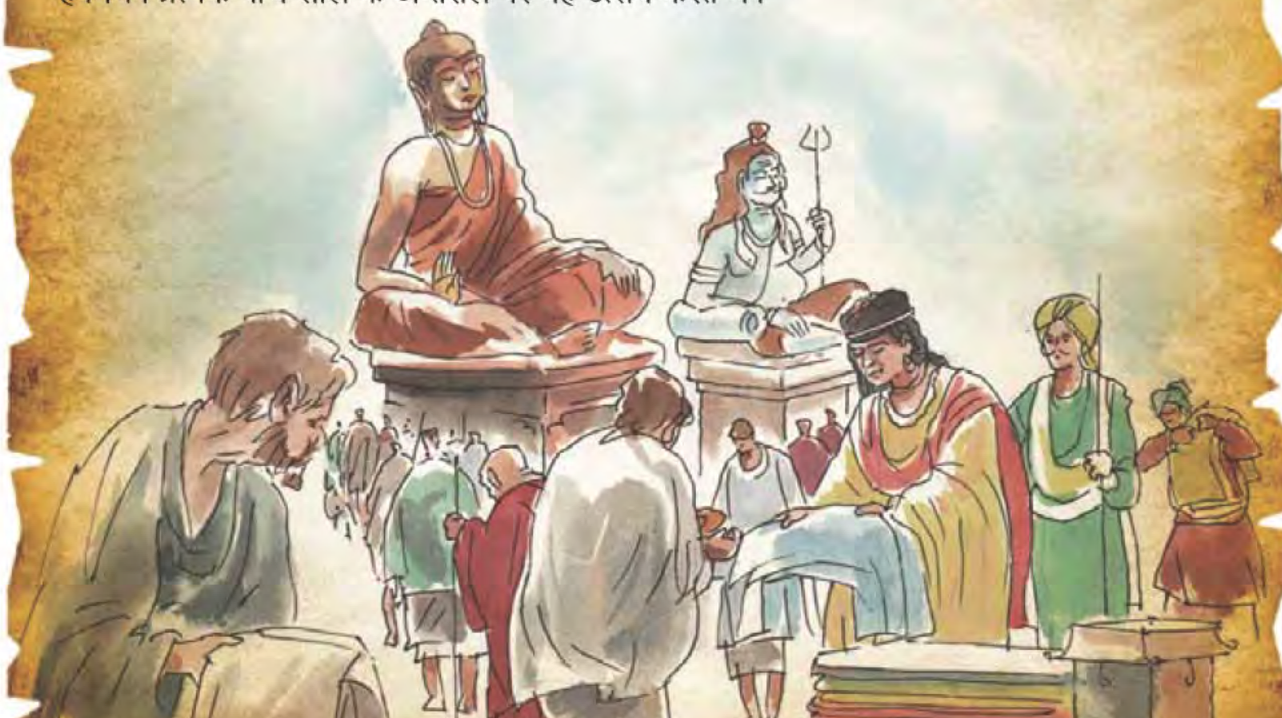

सोचकर देखो ढूंढ़कर देखो

१. **नीचे दिए गये वाक्यों में कौन सही (✓) और गलत (×) है, उसे लिखो :**

१.१ सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त मौर्य के बीच हमेशा शत्रुता थी।

१.२ मौर्य शासन काल में महिला को भी महामातेर का दायित्व मिलता था।

१.३ कुषाण इस देश के ही नागरिक थे।

१.४ चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्ताब्द गिनने आरम्भ किए।

२. **नीचे दी गई विवृति के साथ कौन सी व्याख्या सबसे ज्यादा सटीक है, उसे चुनकर लिखो :**

२.१ विवृति : अशोक ने अपने साम्राज्य में पशु हत्या को बन्द किया था।

व्याख्या १ : अपने राज्य में पशुओं की संख्या बढ़ाने के लिए।

व्याख्या २ : धम्म का अनुसरण करने के लिए।

व्याख्या ३ : पशु व्यापार बढ़ाने के लिए।

२.२ विवृति : कुषाण सम्राट अपनी मूर्ति देवाल्यों में रखते थे।

व्याख्या १ : वे देवता के वंशधर थे।

व्याख्या २ : वे प्रजा के सामने स्वंय को देवता जैसा ही सम्मानीय के रूप में उपस्थित करते थे।

व्याख्या ३ : वे देवताओं की काफी भक्ति करते थे।

२.३ विवृति : गुप्त सम्राट बड़ी-बड़ी उपाधियाँ लेते थे।

व्याख्या १ : उपाधि सुनने में अच्छा लगता था।

व्याख्या २ : प्रजा देती थी।

व्याख्या ३ : सम्राट इसके जरिए अपनी विशाल क्षमता का प्रदर्शन करते थे।

२.४ विवृति : सुयान जांग चीन से भारतीय उपमहादेश में आए थे।

व्याख्या १ : भारतीय उपमहादेश घुमने के लिए।

व्याख्या २ : हर्षवर्धन के शासन के विषय में पुस्तक लिखने के लिए।

व्याख्या ३ : बौद्ध धर्म के बारे में और अधिक पढ़ाई-लिखाई करने के लिए।

३. **अपनी भाषा में सोचकर लिखों (तीन/चार लाईन) :**

३.१ कलिंग युद्ध के परिणाम के साथ अशोक का धम्म से क्या सम्बंध था? धम्म उसके शासन को कितना प्रभावित किया था?

३.२ मौर्य सम्राट गुप्तचर की नियुक्ति क्यों करते थे।

२.३ मौर्य सम्राट और गुप्त सम्राट के मध्य क्षमता और मर्यादा की तुलना कीजिए।

४. **स्वयं करो :**

मौर्य, कुषाण और गुप्त काल के मुद्राओं की तुलना करने पर क्या-क्या समानता-असमानता देखने को मिलेगा।

७

अर्थनीति और जीवनयात्रा

अनुमानिक : ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से ईसा के सप्तम शताब्दी का प्रथम भाग

राजा-सम्राटों की कहानी सुनने में अच्छा लगता है। लेकिन केवल राजाओं के क्रिया-कलाप के बारें में ही कहानी सुनना रूबी को अच्छा नहीं लगता है। इसीलिए सभी दादाजी के पास गए। उन्होंने कहा कि आपको आज हम सभी को कहानी सुनानी होगी। लेकिन राजा अथवा पौराणिक कहानी नहीं बल्कि लोगों की कहानी। दादाजी ने कहा, अच्छा तो यही सही। वह वहाँ पर बैठकर ऊँची आवाज में आवृति किए। वे चिरकाल/ दॉड़ खींचते, हल को पकड़े रहते। वे मैदान-मैदान/ बीज को बोकर, पके धान को काटते/ वे काम करते/ नगर प्रांत में/ दादाजी के मुँह से आवृति सभी सुन रहे थे। फिर दादाजी ने कहा, राजक्षत्र टूट गया, रणडंका शब्द नहीं उठा; / जय स्तम्भ मूढ़सम अर्थ उसका भोला अचानक कहानी में कविता की बात कैसे आ गयी। इसका मतलब क्या है? दादाजी ने समझाकर कहा, इस कविता को वे लोग साधारण लोगों की मानते है। वे हमेशा स्वयं अपने ही काम को करते रहते है। खेतों में फसल उगाते है। नदी में नाव चलाते है। नगर और ग्राम सभी जगहों पर साधारण लोगों का कार्य और व्यापार चलता रहता है। लेकिन साम्राज्य अधिक दिनों तक नहीं रहता हैं। एक लोग शासक होते है, लेकिन उनका शासन कुछ वर्षो तक ही रहता है। इसके बाद दूसरे शासक बनते हैं। जिससे एक साम्राज्य टूटकर दूसरा साम्राज्य बनता हैं। राजक्षत्र भी साम्राज्य के साथ ही टूट जाता है। साम्राज्य रहने पर ही तो युद्ध होता है। लेकिन वे सब युद्ध भी एक दिन रुक जाता हैं। रणडंका का मतलब युद्ध (रण) बाद्ययंत्र (डंका)। ये सारे शब्द अब सुनने को नहीं मिलता है।

युद्ध में जीतकर वे ऊँची-ऊँची स्तम्भ बनाते है। वह स्तम्भ एक समय टूट गया। उसे नहीं तोड़ने के बावजूद उसका जुलूम (अत्याचार) कम हो गया। अर्थात सम्राट, साम्राज्य, युद्ध में विजय एक समय सब कुछ फीका सा हो गया। लेकिन किसान अपने खेतों में बीज को बोंते है। पके फसल को काटते है। वह फसल एक सम्राट का पेट भरता था। क्योंकि सम्राट स्वयं खेती नहीं करते थे। यही वजह है कि आज भी किसानों द्वारा की गई खेती से ही हमारा पेट भरता है।

यह कहकर दादाजी ने पुनः आवृति की। सैकड़ों साम्राज्य के भग्नशेष — बाद में / वे काम किए /— अंत में कहा, आज सम्राट नहीं है, और न ही साम्राज्य ही है। लेकिन किसान है, कारीगर शिल्पी है। ये लोग ही समाज को चलाते है। ये ही खाद्य का उत्पादन करते है। हमारी रोजमर्रा की जरुरत को पूरा करते हैं। हमलोग सभी इनके अन्तर्गत आते है। हमलोग साधारण मनुष्य है लेकिन हममें से सभी का नाम विख्यात नहीं है। राजा सम्राट का नाम सभी जानते है लेकिन सम्राट अशोक का रथ कौन चलाता था ? उसका नाम कोई भी नहीं जानता है। इन सभी बातों को सुनकर अरूण ने कहा, हाँ यह तो वास्तव में घोर अन्याय है। राजाओं की बातों को कितना विस्तार से बताया जाता है, लेकिन साधारण लोगों की बातों को उस तरह से नहीं बताया जाता। उनके नाम भी हम जान नहीं पाते हैं। उस समय सबने मिलकर यह तय किया कि विद्यालय जाकर सर से यह सारी बातें कहेंगे।

दूसरे दिन सर ने सारी बातें सुनी। सुनकर उन्होंने कहा, तो आज कक्षा-कक्ष में प्राचीन भारत के साधारण लोगों के बारें में आलोचना की जाए। साधारण लोगों को लेकर ही समाज का निर्माण होता है। उनके कार्य के जरिए ही सम्पद तैयार होता है। उसी सम्पद से ही राजा और सम्राटों का शासन चलता था। तो अब उस समय के समाज, अर्थनीति और साधारण लोगों की बातों के बारें में बताता हूँ। आप लोग तो ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी के लगभग सोलह महाजनपद के बारें में जानते हो, इसी समय से ही आलोचना शुरु की जाए।

७.१ ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व के चतुर्थ शताब्दी : सोलह महाजनपद का समय

महाजनपद के समय भारतीय उपमहादेश के अर्थनीति और समाज भी बदल गया था। जनपद कहने से कृषि आधारित ग्रामीण क्षेत्र को समझा जाता था। फलस्वरूप जनपद और महाजनपद में कृषिजीवी लोगों की बस्ती भी थी। महाजनपदों में राजकर्मचारी और योद्धाओं का भरण-पोषण की आवश्यक सामग्री के लिए सम्पद कृषि से ही आता था। अधिकांश जनपद गंगा घाटी के किनारे था। इस क्षेत्र की नदियाँ में साल के अधिकांश समय जल ही रहता था। उसके साथ ही वहाँ पर्याप्त परिमाण में वर्षा होती थी। जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र की उर्वर मिट्टी खेती के लिए काफी उच्छी थी।

कृषि कार्य ही उस समय प्रधान जीविका थी। उस युग के विभिन्न लेखों में कृषि कार्य के बारें में विवरण मिलता है। उर्वरता के अनुसार जमीन को विभिन्न प्रकार से बंटवारा किया जाता था। विभिन्न प्रकार की ऋतुओं में विभिन्न प्रकार की खेती होती थी। ऋतु के अनुसार फसलों के अलग-अलग नाम भी थे। कृषि में धान ही प्रधान फसल था। धानों में सबसे प्रमुख शालि धान था। मगध क्षेत्र में शालि धान की खेती सबसे ज्यादा होती थी। कृषि जमीन फसलों में गेहूँ, जौ और ईख की खेती होती थी।

पहले की तरह जमीन के ऊपर सभी का समान अधिकार नहीं था। लेकिन कुछ लोगों के पास अत्यधिक परिमाण में जमीन का अधिकार था। इसके साथ ही साथ जमीनहीन किसान भी थे। कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी होता था। कृषि के लिए पालतू पशुओं की जरुरत थी। इसलिए ईसा पूर्व के पंचम शताब्दी से पालतू पशुओं की बलि क्रमशः कम होने गयी।

कुछ बातें

उत्तर भारत के काले चमकते हुए मिट्टी के बर्तन

गौतम बुद्ध के समय में एक प्रकार से मिट्टी का बर्त्तन बनाने का शिल्प की काफी उन्नति हुई थी। पुरातत्वकार उन सभी को उत्तर भारत के काले चमकते हुए मिट्टी का बर्त्तन कहते थे। इन बर्त्तनों में पहले के समय के धूल धुसरित मिट्टी के बर्तनों से काफी उन्नत किस्म की मिट्टी से इन बर्त्तनों को बनाया जाता था। कुम्हारों के चक्के का व्यापक प्रयोग होने के कारण यह बर्तन बनाना काफी सहज था। बर्त्तनों की प्रमुख विशेषता यह थी कि वह लोहे की मिट्टी के बर्त्तनों को अच्ची किस्म के चूल्हे में जलाकर काला किया जाता था। जलाने के बाद बर्त्तनों को पॉलिश किया जाता था। इन मिट्टी के बर्त्तनों से विभिन्न प्रकार की थाली और कटोरे बनाये जाते थे।

इस समय कारीगरी शिल्प और विभिन्न प्रकार के पेशा का विवरण भी मिलता है। इस समय लोहे की वस्तुएं पुरातत्वकार को मिला। इनमें से अधिकांश युद्धों का अस्त्र-सस्त्र था। इसके अलावा दॉब, कुल्हाड़ी और कुछ हल भी पाया गया है। लोहे की कुल्हाड़ी और आरी से सहजता से घने वनों की कटाई होती थी। जिसके परिणाम स्वरूप बस्ती और कृषि जमीन को बढ़ा पाना सहज हो गया। महाजनपद युद्धों के समय लोहे के अस्त्र का प्रयोग करते थे। मध्य गंगा की उपहारी के कुछ क्षेत्रों में आकरिक लोग पाया जाता था। दक्षिण भारत में लोहे की वस्तु कृषि कार्य के लिए प्रयोग होता था। लेकिन लोहे से बने हल का प्रयोग दक्षिण भारत में इस समय तक नहीं हो पाया था। वस्त्र शिल्प के रूप में वाराणसी काफी प्रसिद्ध था। गहना बनाने का शिल्प भी इस समय देखने को मिला। मूल्यवान और कम मूल्यवान विभिन्न प्रकार के पत्थर और माला का गहना बनाने के कार्य में प्रयोग होता था।

कृषि और पशुपालन के साथ-साथ व्यापार भी जीविका का महत्त्वपूर्ण अंग था। इस समय वाणिज्य की उन्नति हुई। मुद्रा व्यवस्था का विकास इसका सबसे बड़े प्रमाण है। धनी व्यापारियों के साथ-साथ छोटे दुकानदार और व्यापारी भी था। बैल गाड़ी में माल की लदाई करके व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार करने जाते थे। गाय और घोड़ा का भी व्यापार होता था। उत्तर भारत में स्थल मार्ग और जल मार्ग से व्यापार करना आसान था। उस तुलना में समुद्र मार्ग से कम व्यापार होता था। व्यवसाय करने के लिए उधार देना-लेना आवश्यक था। जैन और बौद्ध धर्म में इसके लिए छूट दी गई थी। लेकिन उधार लेकर उसे चुकाना उचित समझा जाता था। विनिमय के जरिए इस समय धातु की मुद्रा का प्रयोग देखा गया। कार्षापन एक प्रकार से प्रचलित धातु की मुद्रा थी। गोल और चौड़ाई आकार की आकृति के काफी चाँदी की मुद्राएं भी पायी गयी। मुद्रा व्यवसाय के विकास से ज्ञान होता है कि व्यवसाय-वाणिज्य इस समय बढ़ा था। लेकिन विन्ध्यांचल पर्वत के दक्षिण भाग में इस मुद्रा के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है।

प्राचीन भारत के इतिहास में पहला नगर हड़प्पा सभ्यता को देखा गया। उसे प्रथम नगरायण कहा जाता है। उसके प्राय: चार हजार वर्ष के बाद ही पुन: नगर बनते हुए देखा गया। यह नगरायण मूलत: उत्तर भारत में विशेषकर गंगा घाटी में बना था। ईसा पूर्व के ६०० साल के लगभग बने इस नगरायण को द्वितीय नगरायण के रूप में परिचित था। उस युग के लेख में ग्राम और नगर के मध्य स्पष्ट पार्थक्य देखने को मिला। अधिकांश महाजनपदों की राजधानी ही प्रसिद्ध नगर था। वे नगर पत्थर और मिट्टी अथवा ईंट से बने प्राकार से घिरा हुआ था।

नगर ग्रामीण बस्ती की तुलना में आकार में बड़ा था। शासन और व्यवसाय से जुड़े हुए लोग प्रधानत: नगर में रहते थे। इनमें से कोई भी स्वयं अपने लिए खाद्य उत्पादन

नहीं करता था। फलस्वरूप इसके लिए नियमित खाद्य ग्राम से आता था। इसलिए तो नगर ग्रामीण इलाके के आस-पास बनता था। नये नगर बनने के फलस्वरूप कुछ नवीन जीविका के बारें में भी जानकारी मिली है। इस समय उत्तर भारत में धोबी, नाई और चिकित्सक (वैद्य) की जीविकी काफी परिचित था।

परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुष के बाद ही था। महिलाओं के लिए शिक्षा का अवसर क्रमशः कम हो गया था। छोटी सी उम्र में लड़कियों का विवाह करने की परम्परा क्रमशः समाज में बढ़ गया। लेकिन महिलाओं के प्रति बौद्ध धर्म का सोच-विचार ब्राह्मण धर्म की तुलना में कुछ उदार था।

७.२ अनुमानतः ईसा पूर्व के चतुर्थ शताब्दी के अंतिम भाग से ईसा पूर्व के द्वितीय शताब्दी का प्रथम भाग : मौर्य युग

मौर्य युग में समाज में धनी और गरीब तथा दूसरों में भेदभाव की भावना थी। महिलाओं की साधारण स्थिति मौर्य काल में भी पहले के ही तरह था। लेकिन घर-गृहस्थली के कार्यो के अलावा महिलाए कुछ पेशाओं में योगदान करने के लिए बाहर भी जाती थी। सूत उत्पादन के कार्य में महिला श्रमिकों के बारें में जानकारी मिलती है। गुप्तचर और राजकर्मचारी के रूप में भी महिलाओं की नियुक्त होती थी।

मौर्य युग में अर्थनीति मूलतः कृषि के ऊपर ही निर्भर था। अत्यधिक नदी होने के कारण साल में अन्ततः दो बार वर्षा के कारण जमीन उर्वर रहता था। विभिन्न प्रकार और परिमाण के अनेक फसलों के बारें में जानकारी मिलती है। समाज के अधिकांश लोग कृषि कार्य के साथ जुड़े हुए थे। आबादी का क्षेत्र बढ़ाने की ओर भी उस काल में विशेष ध्यान दिया जाता था।

कारीगर और व्यापारियों के कार्यो की खोज-खबर राष्ट्र लेता था। खदान और खनिज सम्पद के ऊपर राष्ट्र का एकाधिक अधिकार था। खदानों की देखभाल के लिए राजकर्मचारी की नियुक्ति की जाती थी। नमक को भी खनिज द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया। सूत और मुद्रा बनाने को शिल्प पर भी राष्ट्र की नजरदारी चलती थी। लेकिन सभी क्षेत्रों में यह नजरदारी एक ही प्रकार का नहीं था।

व्यापार के विभिन्न पहलूओं के सम्पर्क के बारें में खोज खबर रखने के लिए अलग से राजकर्मचारी रहते थे। मौर्य काल में राजधानी के साथ साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में यातायात की व्यवस्था उन्नत हुई थी। नियमित राजपथ की देखभाल करने के लिए राजकर्मचारी रहते थे। रास्ते के किनारे दूरी और दिशा को समझाने के लिए संकेत (फलक) लगाया जाता था। उनमें से अधिकांशतः आज के माईल फलक जैसा ही था।

चित्र ६.९ :
प्राचीन भारतीय उपमहादेश के विभिन्न प्रकार की मुद्रा।

कुछ बातें

मेगस्थनीज की दृष्टि में भारतीय उपमहादेश का समाज

मेगस्थनीज भारतीय उपमहादेश के समाज के चार वर्णन की बातों के बारें में नहीं जानते थे। पेशादार और वृतिजीवी विभिन्न जातियों को उन्होंने देखा था। उनके अनुसार भारत का जनसमाज सात जातियों में विभक्त था। जैसे :- ब्राह्मण अथवा पण्डित, किसान, पशुपालक और शिकारी, शिल्पी और व्यवसायी, योद्धा, गुप्तचर अथवा पर्यटक एवं सचिव अथवा मंत्री। मेगस्थनीज ने कहा था कि भारत में दास प्रथा नहीं था।

मेगस्थनीज के अनुसार प्राचीन काल में भारतवासी नगर में नहीं रहते थे। वे कभी भी किसी जाति पर आक्रमण नहीं किए। दूसरी जातियाँ भी भारतवासियों के ऊपर आक्रमण नहीं किए। अलेकजेण्डर ही एक मात्र ऐसे थे, जिन्होंने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। मेगस्थनीज के अनुसार भारत में कभी भी अकाल नहीं पड़ा। लेकिन मेगस्थनीज की सारी बाते सठीक नहीं है।

???

सोचकर देखो

वैदिक समाज के साथ मौर्य काल के समाज में क्या-क्या समानता और असमानता देखने को मिलता है?

मौर्य काल में साधारण पुरुष लगभग आज की तरह ही धोती-चादर की तरह पोशाक पहनते थे। महिलाएँ पोशाक के ऊपर चादर और दुपट्टे का प्रयोग करती थी। घनी और राजपरिवार के स्त्री-पुरुष कीमती पोशाक पहनते थे। सूती कपड़ो की मांग साधारण लोगों में सबसे ज्यादा था। पशम और रेशम के कपड़े का प्रयोग होता था। अधिकांश पुरुष सिर पर पगड़ी पहनते थे। धनी लोग कीमती पत्थर और सोने से बने गहने पहनते थे।

मिट्टी, पत्थर, ईंट अथवा लकड़ी से घर बनाया जाता था। घर के भीतर और बाहर पलस्तर किया जाता था। कुछ लोग भी दीवार पर चित्र भी बनाते थे। घर के सामानों के लिए खाट अथवा चौकी, चटाई, तोशक, चादर, तकिया इत्यादि का प्रयोग होता था।

७.३ अनुमानतः ईसा पूर्व के द्वितीय शतक से लेकर ईसा के चतुर्थ शतक के प्रथम बाग तक : कुषाण युग

अर्थनीति और सामाजिक दृष्टि से इन पाँच सौ वर्षा में काफी कुछ बदलाव को देखा जाता है। विन्ध्यांचल पर्वत के दक्षिण में पहले की तरह कृषि ही प्रधान जीविका थी। धान, गेहूँ, जौ, ईंख (गन्ना) कपास प्रधान फसल था। दक्षिणात्य में काली मिट्टी में रूई की अत्याधिक खेती होती थी। केरल में गोलमरीच की खेती काफी प्रसिद्ध थी।

कृषि कार्य के विभिन्न प्रकार के उपकरण का प्रयोग इस समय देखने को मिला। मिट्‌टी की खुदाई से लोहे का कुल्हाड़ी, कुदाल एवं दॉव इत्यादि मिला। इस समय समस्त जमीन के ऊपर सम्राट का मालिकाना नहीं था। बल्कि अधिकांश जमीन के मालिक निर्दिष्ट व्यक्ति था।

कुछ बातें

प्राचीन भारतीय उपमहादेश की जल सिंचाई व्यवस्था

कृषि कार्य की उन्नति के लिए जरुरी है अच्छी सिंचाई व्यवस्था। प्राचीन भारतीय उपमहादेश के शासक इस ओर ध्यान देते थे। नदी का जल सिंचाई के जरिए खेतों में पहुँचाने के लिए विभिन्न प्रयास करते थे। जल सिंचाई प्रकल्प को सेतु कहा जाता था। यह सेतु दो प्रकार का था। एक प्रकार का सेतु प्राकृतिक जल के उत्स को आधार करके था तो दूसरा कृत्रिम उपाय दूसरे क्षेत्र से आवश्यक जल को लाकर सेतु बनाया जाता था। सेतु जल का प्रयोग करने के लिए किसानों को जल कर भी देना पड़ता था। धनी व्यक्ति स्वयं के प्रयास से जल सिंचाई प्रकल्प को तैयार करते थे।

कुषाण युग में सेतु की क्षति करने पर नुकसान (दण्ड) देने के बारें में भी उल्लेख मिलता है। कुआ अथवा जलाशय बनाना अच्छा कार्य समझा जाता था। सिंचाई के कार्य के लिए एक प्रकार के यंत्र का प्रयोग आरम्भ हुआ। यह यंत्र एक चक्के के प्रकार का था, जिसपर एक पात्र लगा रहता था। बड़ा कुआ अथवा जलाशय में इस यंत्र को लगाया जाता था। चक्के को घुमाकर बाल्टी (पात्र) से कुए का जल बाहर निकाला जाता था। इस यंत्र को बनाने तथा मरम्मत करने का भी कारीगर था।

गुप्त युग में कृषि कार्य बढ़ने के साथ-साथ सिंचाई व्यवस्था में उन्नति को देखा गया। ताम्र लेखों में ग्राम में तालाब खोदने की बातों का उल्लेख मिलता है। सिंचाई की उन्नति पर राजा का विशेष ध्यान था। साथ ही साथ धनी व्यक्ति भी व्यक्तिगत प्रयास से जल सिंचाई की व्यवस्था करते थे।

सुदर्शन ह्द

प्राचीन भारतीय उपमहादेश में राजकीय प्रयास से जल सिंचाई व्यवस्था का एक प्रधान उदाहरण सुदर्शन ह्द था। मौर्य युग से लेकर गुप्त युग तक इस ह्द का प्रयोग होता था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में काथियावाड़ क्षेत्र में यह ह्द बनाया गया था। वाड़ का मतलब— शहर है। यह एक प्रकार से नदी आधारित बड़े पैमाने का एक सिंचाई प्रकल्प (सेतु) है। अशोक के शासन काल में सिंचाई प्रकल्प में खाल (नाला) को भी जोड़ा गया। शक शासक रूद्रदामन इस ह्द का संस्कार (१५० ईसवी) में किया। बाँध को और बड़ा और शक्तिशाली बनाया गया। इस पूरे कार्य का वर्णन रूद्रदामन ने जुनागढ़ के एक शिलालेख में इसकी खुदाई कराई थी। गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के शासन के प्रथम वर्ष में ही पुनः ह्द की मरम्मत की आवश्यकता पड़ी (१३६ गुप्ताब्द अथवा ४५५/४५६ ईसवी)। ईसा पूर्व के चतुर्थ शतक से लेकर ईसा के पंचम शतक तक सुदर्शन ह्द का लगातार प्रयोग होता था।

इन पाँच सौ वर्षो में उपमहादेश के भीतर और बाहर वाणिज्य का विकास देखने को मिलता है। वाणिज्य की उन्नति में जल मार्ग और स्थल मार्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। विदेशी बाजार में उपमहादेश के मसलीन और दूसरे कपड़े की मांग थी। इसके अलावा हीरा, वैदुर्य, मुक्ता और मशाला का विदेशी बाजार में विशेष महत्त्व था। चीन का

रेशम आयात द्रव्यों में सबसे प्रधान था। काँच से बने विभिन्न वस्तुओं का विदेशों से आयात किया जाता था। इस समय कारीगरी शिल्प और पेशा में विभिन्नता बढ़ी थी। वाराणसी और मथुरा कीमती कपड़ा बनाने के लिए प्रसिद्ध था। प्राचीन बांग्ला का सूक्ष्म सूती कपड़ा मसलीन का भी विशेष महत्त्व था।

कुछ बातें

नये-नये नगर

ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी में प्रधानत: उत्तर भारत में नगरायण हुआ था। दूसरी तरफ इस समय प्राय: पूरे उपमहादेश में नए नगर बना। तक्षशिला सिरकाप का पुरातत्वकारों ने मिट्टी खोदकर एक नगर का खोज किया। उससे यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व २०० से ३०० ईसी ईसवी तक नगरों की काफी उन्नति हुई थी, कुषाण युग में गंगा-जमुना कादा मिट्टी, ईंट और जली हुई ईंट का प्रयोग होता था। इस समय मथुरा में काफी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक और वाणिज्य केन्द्र था। मथुरा का भाष्कर्य और दूसरा शिल्प भी प्रसिद्ध था।

मौर्य युग में प्राचीन बंगाल में महास्थानगढ़ और वानगढ़ नगर होने का उल्लेख मिलता हैं। वही दूसरी तरफ इस समय ताम्रलिप्त, चन्द्रकेतुगढ़ इत्यादि नगर भी बना था। प्राचीन उड़ीसा का क्षेत्र शिशुपालगढ़ नगर का भी खोज मिला। दक्षिणात्य और दक्षिण भारत में इस समय नये-नये नगर बना। काबेरी नदी एवं द्वीप पर काबेरीपट्नम बन्दरगाह काफी प्रसिद्ध था।

इस समय वर्णाश्रम और चतुराश्रम व्यवस्था काफी कठोर था। पश्चिम और मध्य एशिया से अनेक समूह इस समय भारतीय उपमहादेश में आया था। धीरे-धीरे इनमें से अधिकांशत: भारतीय समाज में घुल-मिल गए।

मौर्य युग जैसा इस समय भी खाली समय को बीताने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय थे। जैसे:- नृत्य, गीत और अभिनय का भी प्रचलन था। साथ ही साथ जादू का खेल और विभिन्न प्रकार की रस्सी के कसरत से साधारण लोगों को खुशी मिलती थी। पाशा (शतरंज) खेलना, शिकार, रथ का दौड़, कुश्ती इत्यादि खेल धनी लोगों के लिए समय बीताने का जरिया था। बड़े-बड़े उत्सवों में समस्त लोगों के लिए बिना पैसे के भोजन और पेयजल का वितरण किया जाता था।

समाज में जीवन का आधार परिवार था। पिता परिवार के प्रधान थे। दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में माँ के नाम के साथ संतान का नाम युक्त (जुड़ा) रहता था। सतवाहन शासकों के अधिकांश नाम इसका प्रमाण है। लेकिन समाज में महिला की स्थिति पुरुषों से नीचे थी। परिवार में लड़की के बदले अगर लड़के का जन्म होता था तो अधिक आनन्द मनाया जाता था। शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाएं पिछड़ी हुई थी। कम उम्र में लड़कियों की शादी करवाने की बातों का उल्लेख मिलता है।

कुछ बातें

सतवाहन के शासन काल में दक्षिण भारत का ग्राम-जीवन

चित्र ७.२ :
सतवाहन शासन काल की मुद्रा

ईसा के प्रथम शताब्दी अथवा द्वितीय शताब्दी के लगभग सतवाहन-राजा हाल ने एक पुस्तक का संकलन किया। प्राकृत भाषा में लिखी गई इस पुस्तक का नाम गाथा सप्तशती (सात सौ गाथा का संकलन)। इस पुस्तक में उस समय के दक्षिणात्य ग्राम जीवन के विभिन्न पहलू के सम्बंध में जानकारी मिलती है। पुस्तक में चित्रित सारे चरित्र में ग्राम का साधारण लोग है।

ग्रामवासी मूलतः कृषिजीवी थे। धान, तेल का बीज, कपास और शन प्रधान फसल था। ग्राम के घर-द्वार बीचाली से बना था एवं दीवार देकर घिरा रहता था। तालाब फूलों का बगीचा और बरगद का पेड़ सभी कुछ ग्राम में देखने को मिलता था। ग्राम में विभिन्न प्रकार के पालतू पशु-पक्षी भी था। ग्राम में चौड़ा और पतला दोनों प्रकार के रास्ते थे। वर्षा के समय रास्ता कीचड़ से भर जाता था। ग्राम का शासन ग्रामीणों के हाथों में ही था। चोरी-डकैती से पैसा बचाने के लिए अधिकांश लोग मिट्टी की खुदाई करके मिट्टी के नीचे पैसे रखते थे। विभिन्न प्रकार के बाद्य यंत्र और चित्र बनाने की प्रथा ग्रामों में थी। उत्सव के समय ग्रामीण लोग नृत्य, गीत और बाद्य यंत्रों पर झूम उठते थे। सूर्य, अग्नि इत्यादि देवताओं की पूजा मंदिर में होता था। ग्राम में बौद्ध धर्म का भी प्रचलन था।

७.४ अनुमानतः ईसा के तृतीय शताब्दी से सप्तम शताब्दी के प्रथम भाग तक : गुप्त और गुप्त का परवर्ती युग

इस समय काल तक भी कृषि ही प्रधान जीविका थी। धान प्रधान फसल था। ईंख, रुई, तील, सरसो और तेल बीज की खेती होती थी। दक्षिण भारत में सुपारी, नारियल और विभिन्न प्रकार के मशालों की खेती का उल्लेख मिलता है। उस समय विभिन्न लेखो में जमीन का विभिन्न प्रकार का भाग देखने को मिलता है। आबादी वाली जमीन को वास्तव जमीन और जंगल से अलग करके चिह्नित किया जाता था ? इस समय प्राचीन बंगाल के जमीन माप और आयतन में विभिन्न हिसाब की बातों का उल्लेख मिलता है।

गुप्त काल में बंगाल में पाया जाने वाला ताम्र लेखों में जमीन खरीदने–बेचने की बातों का उल्लेख मिलता है। कुछ क्षेत्रो में एक जमीन को पहले खरीदा जाता था। उसके बाद उस जमीन को ब्राह्मण अथवा बौद्ध विहारक को दान दे दिया जाता था। यह दान किया हुआ जमीन साधारण कर के अन्तर्गत नहीं आता था। गुप्त और गुप्त के परवर्ती युग में धार्मिक उद्देश्य के कारण इस जमीन दान को अग्रहार व्यवस्था कहा जाता था। इस व्यवस्था के फलस्वरूप जमीन का व्यक्तिगत मालिकाना काफी बढ़ा था। दान में मिली हुई जमीन में कृषि श्रमिक की नियुक्ति की जाती थी। इस जमीन के उत्पादन से धार्मिक कार्यक्रम का खर्च ब्राह्मण और बौद्ध वहन करते थे। कुछ खाली जमीन को दान के रूप में भी दिया जाता था। उस जमीन में भी कृषि श्रमिक को नियुक्त किया जाता था। जिसके फलस्वरूप वे जमीन भी आबादी वाला जमीन हो गया। अर्थात अग्रहार व्यवस्था के फलस्वरूप कृषि कार्य काफी बढ़ा था।

इस समय लोहे से बनी शिल्प की काफी उन्नति हुई थी। दिल्ली का कुतुब मीनार के पास ही एक लोहे का स्तम्भ है। वह ईसा के चतुर्थ-पंचम शताब्दी में बना था। लेकिन आज भी वह जस का तस वैसा ही है। इसके अलावा इस युग में लेखक अथवा करणिक और चिकित्सक पेशा की बातों का उल्लेख मिलता है।

गुप्त युग में दूर के विदेशी वाणिज्य में थोड़ी कमी देखी गयी। इसका एक कारण था हुण का आक्रमण (इस विषय के बारें में नवम अध्याय में बताया गया है)। इसके फलस्वरूप रोम के साथ भारत का वाणिज्य में संकट उत्पन्न हुआ। लेकिन एशिया महादेश के विभिन्न भागों के साथ उपमहादेशों का वाणिज्य जारी था। पूर्व घाटी के ताम्रलिप्त बन्दरगाह का निर्यात इस समय और अधिक बढ़ गई। तमिलनाडु का काबेरी पट्नम बन्दरगाह पर नियमित दूर का वाणिज्य होता था।

कुछ बातें

कारीगर और व्यवसायियों का संघ

ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से ही व्यापार–वाणिज्य काफी बढ़ गया था। साथ ही साथ कारीगर और व्यवसायियों का संघ बना था। यह संघ कारीगरी और व्यापार से सम्बन्धित विवादों को मिटाते थे। इसके अलावा पेशागत सुरक्षा की ओर भी संघ ध्यान रखता था। वस्तुओं की गुणगत मान और कीमत ठीक रखने का दायित्व संघ के अन्तर्गत आता था। यह संघ श्रेणी, गण इत्यादि नामों से परिचित था।

कुछ बातें

प्राचीन भारतीय उपमहादेश के कारीगर

प्राचीन भारतीय उपमहादेश में विभिन्न प्रकार के कारीगरी शिल्प का प्रमाण मिला है। ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी तक विभिन्न कारीगरी शिल्प का विकास हुआ था। कारीगर अधिकांश समय इकट्ठा होकर एक ही क्षेत्र में निवास करते थे। कुषाण के शासन काल में भी कारीगरी शिल्प का वैचित्र्य बढ़ा था। कुम्हार, छुतोर एवं तांती की बातों का उल्लेख मिलता है। साथ ही साथ दूसरे कारीगर भी थे। जैसे :– सोने का गहना बनाने वाला स्वर्णकार। हाथी दाँत से वस्तुए बनाने वाले दन्तकार। तांती कपड़ा बुनते थे। कपड़े को रंग, रंगकार करता था। पोशाक में सूची शिल्प का कार्य सूचीकार करता था।

कुषाण युग के एक-एक पेशा को केन्द्र करके अलग निजस्व के कानून के अनुसार चलते थे। लेकिन बड़ी गड़बड़ी होने पर राजा अथवा सम्राट व्यवस्था लेते थे। श्रेणी अथवा संघ नियमित रूप से अर्थ का लेन-देन करता था। समाज के विभिन्न प्रकार के लोग वहाँ पर अपनी अमानत के पैसे को जमा रखते थे। नगर अर्थ के अलावा जमीन, पेड़ इत्यादि स्थायी अमानत के रूप में भी रखा जाता था। उस जमा अमानत पर सूद भी दिया जाता था। इस अमानत के पैसे को विभिन्न शिल्पों को मूलधन के रूप में दिया जाता था। इस तरह से श्रेणी अथवा संघ एक प्रकार से बैंक जैसा ही कार्य करता था। नर्मदा नदी के उत्तर में हीरे की खान को लेकर कुषाण, सतवाहन एवं शक-क्षत्रप के बीच लड़ाई हो रही थी।

गुप्त युग में अनेक सोना एवं चाँदी की मुद्राए पायी गयी। गुप्त राजाओं द्वारा आरम्भ की गई सोने की मुद्रा को दीनार और सुवर्ण कहा जाता था। सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में चाँदी की मुद्रा सर्वप्रथम चालू किया गया। उस मुद्रा का नाम रूपक था। सोना और चाँदी की मुद्रा व्यापार-वाणिज्य के काफी में ज्यादा प्रयोग होता था। रोजमर्रा के कार्यो के लिए ताँबे की मुद्रा का प्रचलन गुप्त शासकों ने आरम्भ किया था। लेकिन गुप्त के समय में दक्षिण में वाकटक शासक किसी भी प्रकार की मुद्रा का प्रचलन नहीं किया। फलस्वरूप भारतीय उपमहादेश के सभी जगहों पर मुद्रा का लेन-देन एक समान नहीं था। इसके अलावा समाज में कृषि कार्य के बढ़ने से व्यापार-वाणिज्य का प्रतिशत कम हो गया था। इन सबके कारण नगर पहले की तुलना में दुर्बल हो गया था।

समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था चालू था। लेकिन सभी कठोर तरीके से उसे नहीं मानते थे। लेकिन निम्नवर्ग के लोगों के प्रति ब्राह्मणों का मनोभाव में विशेष बदलाव नहीं आया था। एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण और शुद्रों को अलग-अलग सजा मिलती थी। उधार लेने पर शुद्रों को काफी ज्यादा पैमाने पर सूद देना पड़ता था। लेकिन इस युग में शुद्र कृषि, पशुपालन और व्यापार कर सकते थे। लेकिन उस समय सबसे ज्यादा खराब स्थिति चण्डालों की थी। वे ग्राम अथवा शहर में नहीं रह सकते थे। ऐसा था कि ब्राह्मण उनके द्वारा छू न लिए जाए इससे वे हमेशा बचा करते थे।

चित्र ६.३ : गुप्त युग की विभिन्न मुद्रा इनमें से एक समुद्रगुप्त द्वारा वीणा बजाने का निशाल भी है। वह कौन सा है?

गुप्त युग में परिवार का प्रधान पिता थे। लड़कियों की कम उम्र में शादी करने की परम्परा चालू थी। इस समय लड़कियों को शादी के समय कुछ सम्पद मिलता था। इस सम्पद (सम्पत्ति) के ऊपर केवल लड़कियों का ही अधिकार था। इन्हें स्त्रीधन कहा जाता था। लड़कियाँ अपनी इच्छानुसार इस सम्पद का प्रयोग करती थी। लेकिन स्त्रीधन प्रथा समस्त वर्णो के मध्य चालू नहीं था।

कुछ बातें

इस समय के भोज्य–पदार्थ

प्राचीन भारतीय उपमहादेश में चावल, गेहूँ, जौ और शाक–सब्जी ही प्रधान भोजन था। धनी व्यक्तियों में मांस खाने का ज्यादा प्रचलन था। मध्य वर्गीय समाज में दूध और दूध से बने विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ का प्रयोग होता था। गरीब लोग घी के बदले तेल का प्रयोग करते थे। इसके अलावा मटर, तील, मधु, गुढ़, नमक इत्यादि भोज्य पदार्थ का उल्लेख मिलता हैं। कुछ क्षेत्रों में निरामिस भोज्य–पदार्थ पर ज्यादा महत्त्व दिया जाता था। ऐसा कि सभी प्रकार की मछली खाने पर भी निषेधाधिकार था। दूध एवं विभिन्न प्रकार के फलों के रस से बने पानीय जल का प्रयोग होता था।

कुछ बातें

फाहि्यान के लेख में भारतीय उपमहादेश का समाज

गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में फाहि्यान चीन से भारतीय उपमहादेश में आया था। उनके लेख से उपमहादेश के मनुष्य और समाज के बारें में विभिन्न प्रकार की बातों की जानकारी मिलती है। लेकिन उनके लेख में कही भी चन्द्रगुप्त द्वितीय की बातों का उल्लेख नहीं है। फाहि्यान ने लिखा था, उपमहादेश में बहुत सारे नगर थे। मध्य देश का नगर काफी उन्नत था। वहाँ की जनता सुख से निवास करती थी। लेकिन चण्डाल नगर के बाहर रहता था इसकी जानकारी उन्होंने ही दी। जो दुष्ट प्रवृति के लोग थे, उन्हें ही चण्डाल कहा जाता था। इस देश के लोग अतिथियों का सम्मान करते थे। विदेशियों को किसी भी प्रकार की कोई परेशानी न हो उस ओर विशेष ध्यान देते थे। पाटलिपुत्र देश का श्रेष्ठ नगर था। वहाँ के लोग सुखी और सम्पदशाली थे। धनी विशिष्ट नगरों के विभिन्न स्थानों पर दातव्य चिकित्सा की व्यवस्था करते थे। बिना मूल्य में वहाँ से दवाईयाँ दी जाती थी। गरीब के लिए रहने एवं खाने की भी व्यवस्था थी।

सुयान जांग के लेख में — भारतीय उपमहादेश का समाज

सुयान जांग के लेख में भारतवर्ष ईन–तु नाम से परिचित हुआ। उनके अनुसार ईन–तु–र के लोग अपने देश को विभिन्न नामों से पुकारते थे। देश के पाँच भाग — उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्य। ईन–तु–ते में अस्सी राज्य है। प्रत्येक राज्य में निजस्व राजा होने के बावजूद वे बड़े सम्राट के अनुगत थे।

सुयान जांग ईन–तु को मूलतः गर्म देश कहा। वहाँ पर नियमित वर्षा होती थी। उत्तर और पूर्व के क्षेत्रों में मिट्टी काफी उर्वर है। दक्षिण क्षेत्र वन से ढंका है। पश्चिम क्षेत्र की मिट्टी पत्थर की ओर अनुर्वर है। धान और गेहूँ प्रधान फसल था। लोगों के बीच जातिगत भेद–भाव भी था।

शहर के घर ईंट और बालू से बनता था। घर का बरामदा लकड़ी से बनता था। ग्राम के घरों की दीवार और फर्श मिट्टी का था। विभिन्न प्रकार के कीमती धातु और पत्थरों का व्यवसाय होता था। शासक वर्ग जनता की सुविधा की बातों को हमेशा ध्यान में रखते थे।

सोचकर देखो

आपलोग उस समय के भोजन की एक तालिका बनाओं। साथ ही साथ आपलोग अभी जो भोजन खाते हो, उसकी भी एक तालिका बनाओं। इन तालिका की तुलना करो।

सोचकर देखो ढूढ़कर देखो

१। **निम्नलिखित कथन के साथ नीचे के व्याख्याओं में कौन-सी व्याख्या उपयुक्त है ? उसे ढूढ़कर लिखो।**

१.१) कथन : मौर्य परवर्ती युग में बहुत सारे गिल्ड बना था।

व्याख्या : १- राजा व्यापार वाणिज्य को बढ़ाने के लिए गिल्ड बनाया था।

व्याख्या : २- कारीगर और व्यापारी गिल्ड बनाये थे।

व्याख्या : ३- साधारण लोग पैसों की लेन-देन और एकत्रित रखने के लिए गिल्ड बनाया था।

१.२) कथन : दक्षिणात्य में अच्छी किस्म की रुई की खेती होती थी।

व्याख्या : १- दक्षिणात्य का काली मिट्टी रुई की खेती के लिए अच्छी थी।

व्याख्या : २- दाक्षिणात्य के सभी किसान केवल रुई की खेती करते थे।

व्याख्या : ३- दाक्षिणात्य की जमीन पर और कोई फसल नहीं होता था।

२। **सठीक शब्दों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :**

२.१) जनपद .... (कृषि आधारित / शिल्प आधारित / श्रमिक आधारित) ग्रामीण इलाका था।

२.२) मौर्य युग में अर्थनीति मूलतः .... (शिल्प / कृषि / व्यापार-वाणिज्य) के ऊपर निर्भर करता था।

२.३) गुप्त और गुप्त-परवर्ती युग में धार्मिक उद्देश्यों के लिए जमीन दान को .... (सामंत / बेगार / अग्रहार) व्यवस्था कहा जाता था।

३। **स्वयं की भाषा में सोचकर लिखो (तीन / चार लाईन) :**

३.१) प्रथम नगरायण (हड़प्पा) एवं द्वितीय नगरायण (महाजनपद) के मध्य किस प्रकार का पार्थक्य देखने को मिलता है ?

३.२) प्राचीन भारत में जल सिंचाई व्यवस्था क्यों की गई थी ? उस युग में जल सिंचाई व्यवस्था के साथ आज के जल सिंचाई व्यवस्था में कोई अंतर दिखाई पड़ता है ?

३.३) ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से ईसा के षष्ठ शताब्दी तक भारतीय उपमहादेश के उत्तर दक्षिण भाग में कृषि पद्धति और उत्पादित फसल में क्या अंतर दिखाई पड़ता है ?

४। **स्वयं करो :**

ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से ईसा के षष्ठ शताब्दी के समय तक किस-किस पेशा के लोगों के बारें में जान पाए, उसकी एक तालिका बनाओं। उनमें से कौन-कौन सा पेशा आज भी देखने को मिलता है? वैदिक समाज में शुरु जीविका के साथ इस समय के पेशाओं में क्या-क्या समानता-असमानता देखने को मिलती है ?

८ प्राचीन भारतीय उपमहादेश के संस्कृति चर्चा के विभिन्न पहलू

शिक्षा, साहित्य, विज्ञान और शिल्प

सर ने कहा, आप लोग संस्कृति और सभ्यता के बारें में बहुत कुछ जानते हो। आप लोगों ने देखा है कि केवल खाकर और पहनकर जीवित रहने पर मनुष्य खुशी में नहीं था। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को बनाकर चारों तरफ सुन्दर तरीके से सजाने का प्रयास वे करते थे। अच्छी तरह से सजाकर अपनी भाषा में स्वयं की एवं दूसरों की बातों को लिखा। इसी तरह से शिल्प, साहित्य का आरम्भ हुआ। इसके साथ-साथ चारों तरफ की विभिन्न बातों को लेकर उनके मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ था। उन सभी प्रश्नों का उत्तर ढूंढने के कारण ही विज्ञान की चर्चा शुरु हुई। प्राचीन भारतीय उपमहादेश में भी इसी तरह से शिक्षा, साहित्य, विज्ञान और शिल्प की चर्चा शुरु हुई। यहाँ पर ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से शिक्षा, साहित्य, विज्ञान और शिल्प चर्चा को लेकर आलोचना का सूत्रपात हुआ।

८.१ प्राचीन भारतीय उपमहादेश की शिक्षा चर्चा

पृथा के मन में प्राय: एक प्रश्न आता है। आज कक्षा में उसे वे सर से जानना चाही। पढ़ना और लिखना क्या दोनों एक है सर? सर ने कहा, कुछ अलग है। अब्बास ने कहा, कैसे अलग है? सर ने कहा, पढ़ना-सुनना में पढ़ना और सुनने की बातें है। लेकिन लिखने की

बात नहीं है। दूसरी तरफ लिखना-पढ़ने के मध्य लिखना और पढ़ने की बात है। आजकल आपलोग पढ़ना, लिखना और सुनना तीनों ही कर सकते हो। लेकिन सोचो तो, जब लिखने का प्रचलन नहीं था, उस समय सुन-सुनकर ही याद रखना पड़ता था। हड़प्पा लिपि थी, लेकिन साहित्य था कि नहीं इसकी जानकारी नहीं मिलती है। अरूण ने कहा, सर मैं जानता हूँ कि हड़प्पा लिपि को आज तक हम पढ़ नहीं पाए है। सलीम ने कहा, सर बहुत समय पहले पढ़ना और लिखना किस प्रकार से होता था ?

परवर्ती वैदिक युग में पढ़ाई-सुनने की प्रथा ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी के लगभग प्रचलित था। लेकिन उसके साथ-साथ बौद्ध विहार में एक नये प्रकार की शिक्षा पद्धति शुरु हुआ था। इस समय विभिन्न प्रकार की लिपि का प्रयोग शुरु हुआ। फलस्वरूप मौखिक शिक्षा के साथ-साथ विभिन्न लिपि को भी छात्रों को सीखना पड़ता था। वैदिक शिक्षा व्यक्तिगत था। अर्थात गुरु शिष्य सम्पर्क केन्द्रित था। उसे गुरुकुल व्यवस्था कहा जाता था। वही दूसरी ओर बौद्ध लिखना-पढ़ना विहार अथवा संघ में सीखता था। छात्रों को वहाँ से पढ़ना पड़ता था। नवीन कुछ विषय इस समय पढ़ाई के साथ जुड़ा। कृषि, चिकित्सा, राज्य शासन इत्यादि विषय भी पढ़ना पड़ता था। इस समय आश्रम के नाम से शिक्षा केन्द्र का विकास हुआ। वहाँ पर विभिन्न विषयों को पढ़ाया जाता था।

बौद्ध विहार में धार्मिक विषयों के अलावा भी दूसरे विषयों की पढ़ाई होती थी। वहाँ पर तीर और तलवार चलाना कुश्ती और विभिन्न प्रकार के खेल-कूद को भी सीखाया जाता था। श्रमण और भिक्षुओं को सूता काटना, कपड़ा बुनना सीखना पड़ता था। विहारों में छात्रों के रहने के लिए अलग से घर भी था। छात्र भर्ती के क्षेत्र में मेधा की जांच-पड़ताल करके ही लिया जाता था। पढ़ाई-लिखाई के लिए वेतन देना पड़ता था। गरीब छात्रों की सुविधा के लिए छात्रवृति दिया जाता था।

ईसा पूर्व के चतुर्थ शताब्दी के लगभग विभिन्न विषयों की पढ़ाई की बातों का उल्लेख मिलता है। वेद के साथ-साथ छन्द, काव्य, व्याकरण भी पढ़ाया जाता था। उसके साथ ज्योतिषविद्या, ज्योतिष. गणित, रसायन इत्यादि पढ़ना पड़ता था। लेकिन मूलत: ब्राह्मण ही इन विषयों पर चर्चा करते थे। क्षत्रियों को रोजमर्रा के शासन को चलाने के लिए कुछ विषय पढ़ना पड़ता था। जैसे :- युद्ध और शिकार, मुद्रा और नमूना पत्र परीक्षा। वैश्य और शूद्र को व्यापार-वाणिज्य, कृषि और पशुपालन विषय की पढ़ाई करना पड़ता था। इससे समझा जाता है कि जीविका के साथ पढ़ाई का एक सम्पर्क तैयार हुआ था। इस समय से ही कारीगरी विषय की पढ़ाई की बातों का ज्यादा उल्लेख मिलता है। कारीगरी शिक्षा के क्षेत्र में भी गुरु की भूमिका ही प्रधान थी। अभिभावकों की अनुमति लेकर छात्र किसी दक्ष कारीगर के पास जाते थे। कारीगर-गुरु के घर में ही छात्र रहते थे। उनके कर्मशाला में कार्य सीखते थे। कार्य सीखने के बाद अधिकांशत: गुरु के कर्मशाला में ही कार्य करते थे। कोई-कोई गुरु की अनुमति लेकर स्वयं एक अलग कर्मशाला बनाता था।

गुप्त युग की शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न शिक्षा प्रतिष्ठान की भूमिका को देखा जाता था। लेकिन गुरु के घर से पढ़ाई करने की पुरानी पद्धति का प्रचलन था। इस समय विभिन्न राजाओं ने विद्यालय बनवाया था। पाठ्य विषय में लिपि और भाषा एवं वैदिक साहित्य प्रधान था। साथ ही साथ काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, नाटक,

कुछ बातें

प्राचीन भारत के शिक्षक

आचार्य और उपाध्याय

प्राचीन भारत के वैदिक शिक्षा के साथ जुड़े हुए दो प्रकार के शिक्षक थे। आचार्यों के घर पर ही छात्र रहते और खाते थे। आचार्य बिना वेतन के छात्रों को पढ़ाते थे। इसके बदले छात्र आचार्य के विभिन्न कार्यों में सहायता करते थे, उन्हें आचार्य कहा जाता था। उपाध्याय एक निर्दिष्ट विषय-वस्तु को पढ़ाते थे। पढ़ाने के बदले में वे वेतन लेते थे। महिला उपाध्याय को उपाध्यायी कहा जाता था। बौद्ध शिक्षा में उपाध्याय की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वे बौद्ध विहार में रखकर ही पढ़ाते थे। बौद्ध छात्रों को बुद्ध, धम्म और संघ के नियमों को मानकर चलने का शपथ लेना पड़ता था।

कानून, राजनीति और युद्ध विद्या भी पढ़ाया जाता था। पेशा आधारित शिक्षा पर इस समय जोर दिया गया।

कुछ बौद्ध विहार को महाविहार भी कहा जाता था। देश और देश के बाहर से बहुत से छात्र इस महाविहार में पढ़ने आते थे। नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशील और बलभी महाविहार बहुत प्रसिद्ध था। राजा शिक्षा संस्थान को जमीन और पैसा देकर सहायता करते थे। कुछ प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र पाटलिपुत्र, कन्नौज, उज्जैयनी, मिथिला, तांजौर एवं कल्याण इत्यादि नगर।

नालन्दा महाविहार में किसी भी धर्म और वर्ण के छात्र पढ़ सकते थे। वहाँ पर रहने और खाने के लिए किसी प्रकार का पैसा खर्च नहीं करता पड़ता था। पढ़ाई समाप्त होने के पश्चात नालन्दा में नियमानुसार परीक्षा देना पड़ता था। चीन, तिब्बत, कोरिया, सुमात्रा एवं जाबा से छात्र नालन्दा में पढ़ने आते थे। नालन्दा में उस समय विख्यात पण्डित पढ़ाते थे।

कुछ बातें

तक्षशिला महाविहार

गंधार महाजनपद की राजधानी तक्षशिला था। ग्रीक, फ्रांस, कुषाण, शक इत्यादि विदेशी शक्ति समय-समय पर तक्षशिला पर अपना अधिकार कायम किया। इसलिए वहाँ पर विभिन्न देशों के पण्डितों का आना-जाना लगा हुआ था। बौद्ध धर्म तक्षशिला में काफी लोकप्रिय हुआ। धीरे-धीरे शिक्षा केन्द्र के रूप में भी तक्षशिला प्रसिद्ध हो गया।

देश के विभिन्न क्षेत्र से छात्र तक्षशिला में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते थे। सोलह से लेकर बीस वर्ष के उम्र तक छात्र वहाँ पर भर्ती हो सकते थे। धर्म और वर्ण नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर ही छात्रों की भर्ती होती थी। लगभग आठ वर्ष तक वे वहाँ पर पढ़ाई-लिखाई करते थे। राजा और व्यापारी इस महाविहार को चलाने के लिए पैसे और जमीन का दान देते थे।

यहाँ की परीक्षा पद्धति बहुत ही सहज थी। ऐसा लगता है कि वहाँ पर लिखित परीक्षा नहीं होती थी। लेकिन पढ़ाई का स्तर काफी उच्च स्तर का था। इस महाविहार के कुछ छात्र जैसे :- जीवक, पाणिनी एवं चाणक्य काफी प्रसिद्ध थे।

गुप्त युग के परवर्ती काल में कुछ आज जैसा ही कार्यशाला का एक कार्यक्रम शुरु हुआ था। उसका नाम विद्यारम्भ (विद्या + आरम्भ)। पाँच साल की उम्र से ही इस कार्यक्रम के जरिए अक्षरों से परिचित कराया जाता था। इस पर्याय के लिए छात्र को एक पाठ्य-पुस्तक और गणित भी पढ़ाया जाता था।

८.२ प्राचीन भारतीय उपमहादेश की साहित्य चर्चा

भाषा का प्रयोग बातचीत करने के लिए होता है। इतना ही नहीं लिखने के लिए भी भाषा की जरुरत पड़ती है। लेकिन मौखिक और लिखित भाषा में जमीन आसमान का अंतर होता है। मौखिक भाषा में आंचलिक क्षेत्र का प्रभाव रहता है, लेकिन लिखित भाषा में इन सबका प्रयोग नहीं होता है। उस समय सभी पढ़कर समझ पाए ऐसी ही भाषा में लिखा जाता है। प्राचीन भारत में मौखिक भाषा और लिखित भाषा अलग था। ऋग्वेद की भाषा छन्द अथवा छन्दस ऐसा अनुमान लगाया जाता था। उसी भाषा में सभी बातचीत करते थे। लेकिन धीरे-धीरे भाषा में आंचलिकता का प्रयोग पड़ना शुरु हो गया। जिससे विभिन्न अंचलों की भाषा बनने लगी। इसलिए भाषा और उसके प्रयोग के लिए नियम बनाने की जरुरत है। उसी नियम के कारण ही व्याकरण बना। प्रसिद्ध व्याकरण आचार्य पाणिनी ने ऐसा ही व्याकरण लिखा, जिसका नाम अष्टाध्यायी था। इसमें पाणिनी ने भाषा के विभिन्न नियम को बनाया। जिसके फलस्वरूप भाषा का संस्कार हुआ। संस्कार होकर जो भाषा बना उसी का नाम संस्कृत रखा गया।

विभिन्न अंचलों (क्षेत्रों) में एक ही भाषा का विभिन्न प्रकार से उच्चारण होना आरम्भ हुआ। उस भाषा को प्राकृत कहा जाता था। प्रकृत अथवा वास्तव में प्राकृत शब्द कहाँ से आया। इसलिए तो पाणिनी द्वारा संस्कार की गई भाषा से प्राकृत भाषा अलग है। दूसरी ओर छन्दस से तोड़कर-तोड़कर पालि भाषा बना। प्रकृत और पालि भाषा ही साधारण लोगों की मौखिक भाषा बनी। लेकिन ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से पालि और प्राकृत भाषा में लिखना आरम्भ हुआ। जैन (प्राकृत) और बौद्ध (पालि) धर्म का साहित्य भी इसी भाषा में लिखा गया।

ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से व्यापार-वाणिज्य में काफी उन्नति होने लगी। फलस्वरूप समाज में वैश्यों की मर्यादा काफी बढ़ गयी। नये-नये बन रहे नगरों में जाति और वर्ण का भेद-भाव कम होता गया। इसलिए पुरानी जाति और वर्ण व्यवस्था की व्याख्या करके संस्कृत भाषा में धर्मशास्त्र लिखने की परम्परा आरम्भ हुई। ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, इसी बात को धर्मशास्त्रों के जरिए सभी भाँति अवगत करवाया जाता था। इसके साथ ही साथ स्मृति शास्त्र नामक एक प्रकार की लेखनी का आरम्भ हुआ। उन लेखों में सम्पत्ति का अधिकार और रोजमर्रा के जीवन के विभिन्न पहलुओं को लेकर आलोचना की जाती थी। धर्म शास्त्रों में राजनीति को लेकर भी कुछ बातें रहती थी। लेकिन धर्म और स्मृति शास्त्र लिखने की परम्परा परवर्ती समय में भी जारी था। इसके अलावा राजनीति से सम्बंधित पुस्तक लिखने का प्रचलन भी इस समय था। इनमें से ही कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रसिद्ध हुआ।

कुछ बातें

मुगलमारी बौद्ध विहार

फाहियान और सुयान-जांग के लेखों से पता चलता है कि बंगाल में बहुत सारे बैद्ध विहार था। उनमें से एक पश्चिम मेदिनीपुर के दाँतन शहर के नजदीक मोगलमारी में था। पुरातत्वकार डॉ० अशोक दत्त ने इसकी खोज की। यह बौद्ध विहार नालन्दा विश्वविद्यालय के समय का ही था। पश्चिम बंगाल में आविष्कृत बौद्ध प्राचीन स्थल में से यह सबसे बड़ा था। लेकिन इस बौद्ध विहार का नाम क्या था, इसकी जानकारी नहीं मिल पायी। कुछ लोग कहते है सुवर्ण रेखा नदी इस विहार के नजदीक से ही बहता था। मगध से ताम्रलिप्त बन्दरगाह जाने के मार्ग के मध्य ही यह विहार अवस्थित था। इसलिए इस विहार में व्यापारियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

व्यापार-वाणिज्य बढ़ने के फलस्वरूप विभिन्न अंचलों से सम्पर्क स्थापित हुआ। नदी और समुद्र पार करते समय ग्रह-नक्षत्र के बारें में भी जानने की जरुरत पड़ती थी। फलस्वरूप इस समय गणित, ज्योतिषविद्या को लेकर भी ग्रह-नक्षत्र से सम्बंधित लेख देखने को मिलता है।

कुछ बातें
रामायण और महाभारत

राम को लेकर प्राचीन महाकाव्य लिखा गया था, इसलिए उसका नाम रामायण पड़ा। रामायण के लेखक के रूप में हम बाल्मीकि को जानते है। रामायण में कुल २४ हजार श्लोक है। पूरा महाकाव्य सात काण्ड (भाग) में बटा हुआ है। इनमें से प्रथम और साँतवा काण्ड सम्भवत: बाल्मीकि द्वारा नहीं लिखा गया। इन दोनों काण्डों को रामायण में बाद में जोड़ा गया।

रामायण के प्रमुख चरित्र राम, सीता और रावण है। राम-रावण के युद्ध की घटना ही रामायण की मूल कहानी है। उल्लेखनीय है कि रामायण का परवर्ती समय में विभिन्न प्रकार से अनुवाद हुआ था। उनकी कहानियों में कुछ अन्तर देखने को मिलता है। ठीक कब रामायण की रचना हुई, यह कह पाना मुश्किल है। लेकिन ईसा पूर्व के तृतीय शताब्दी से लेकर ईसा के द्वितीय शताब्दी के पहले रामायण की रचना हुई ऐसा अनुमान लगाया जाता है। क्योंकि ईसा पूर्व के द्वितीय शताब्दी के लगभग पालि साहित्य में रामायण की कहानी देखने को मिलती है।

महाभारत महाकाव्य वास्तव में भरत समूह के जीवन और कार्य-क्रम की कहानी है। महाभारत में आरम्भ में ८ हजार ८ सौ श्लोक था। कहा जाता था कि कृष्णद्वैपायन व्यास कौरव-पाण्डवों के युद्ध की कहानी को लेकर ही महाभारत की रचना किए। इस युद्ध में पाण्डवों की जीत हुई थी। महाभारत का प्राचीन नाम जयकाव्य था। वैशम्पायन उसमें और श्लोक को जोड़कर उसका नाम भारत दिया। सौती के बाद और श्लोक को जोड़कर महाभारत नाम रखा। अर्थात महाभारत किसी एक लोग की रचना नहीं है।

ईसा पूर्व के चतुर्थ शताब्दी के पहले महाभारत की कहानी की विशेष रूप से जानकारी नहीं मिलती है। ईसा पूर्व के चतुर्थ शताब्दी से ईसा के चतुर्थ शताब्दी के मध्य महाभारत का संकलन हुआ था। महाभारत की चर्चा करने से वेद चर्चा की भाँति ही सफलता मिलेगी ऐसा अनुमान लगाया जाता था। इसलिए महाभारत को पंचमवेद भी कहा जाता है।

महाभारत का मूल विषय कौरव और पाण्डव का युद्ध है। उसके साथ ही साथ भूगोल, विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति एवं समाज सम्बंधित अनेक विषयों के बारें में कहा गया है। पूरा महाभारत अठारह सर्ग में बटा हुआ है।

कुछ बातें
प्राचीन भारतीय उपमहादेश की लिपि

भाषा लिखते समय वर्ण और लिपि की जरुरत पड़ती है। प्राचीन भारतीय उपमहादेश में दो प्रकार की लिपि का प्रचलन था। खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपि। खरोष्ठी लिपि दाँयी ओर से बाँयी ओर लिखा जाता था। जबकी ब्राह्मी लिपि बाँयी ओर से दाँयी ओर लिखा जाता था। उत्तर भारत में ब्राह्मी लिपि से ही धीरे-धीरे देवनागरी लिपि बना। धार्मिक कार्यक्रम और देवता के कार्यो के लिए नगर के ब्राह्मण इस लिपि का प्रयोग करते थे। इसलिए इसका नाम देवनागरी पड़ा। ब्राह्मी लिपि का सबसे अधिक प्रयोग होता था। सम्राट अशोक के शिलालेखों में अधिकांशत: ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ है। ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी से पहले ही ब्राह्मी लिपि का प्रयोग शुरु हुआ था। धीरे-धीरे ही इस लिपि का नाम बदला।

संस्कृत व्याकरण के साथ-साथ विभिन्न अभिधान के लेख के बारें में भी जानकारी मिलती है। नाटक और अभिनय धनी लोगों के लिए मनोरंजन का साधन था। फलस्वरूप नाटक और अभिनय से सम्बन्धित विषयों को लेकर लिखना आरम्भ हुआ था। जैसे :- भरत के नाट्यशास्त्र के बारें में कहा जा सकता है।

ईसा पूर्व के २०० से लेकर ईसा के ३०० ईसवी तक विभिन्न भाषा में विभिन्न प्रकार का साहित्य लिखा गया था। उस समय धीरे-धीरे संस्कृत भाषा को राजदरबारों में महत्त्व मिल रहा था। इस समय पतंजलि महाभाष्य नामक संस्कृत व्याकरण की पुस्तक लिखे। इस समय तक दो प्रसिद्ध साहित्यकार अश्वघोष और भास हुए। साथ ही साथ संस्कृत भाषा में बुद्ध की कहानी भी लिखी गयी थी।

जैन अर्ध-मागधी और प्राकृत दोनों भाषा में साहित्य लिखते थे। इस समय के अधिकांश लेख प्राकृत भाषा में ही लिखा गया। साधारण शासन का कार्य प्राकृत भाषा में ही किया जाता था। सतवाहन के राजा हाल द्वारा लिखी गई गाहा-सउसंग अथवा गाथा सप्तशती प्राकृत भाषा का प्रसिद्ध कविता संकलन था।

दक्षिण भारत में तमिल भाषा साहित्य लिखने का प्रचलन इस समय आरम्भ हुआ। कहा जाता है कि मदुराई नगरी में तीन साहित्य सम्मेलन हुआ था। यह सम्मेलन संगम के नाम से परिचित था। संगम का मतलब एक स्थान पर इकट्ठा होना। इसलिए तमिल साहित्य को संगम साहित्य कहा जाता है। प्राचीन संगम साहित्य का महत्त्वपूर्ण उदाहरण एक कविता संकलन है। उस कविता में साधारण लोगों के बारें में जानकारी मिलती है। किसानों का जीवन, ग्राम का चित्र और नगर के विभिन्न बातें इन कविताओं में देखने को मिलती है। तमिल भाषा की व्याकरण चर्चा भी इस समय आरम्भ हुआ था।

चिकित्सा के विभिन्न पहलू को लेकर भी ग्रंथ रचना आरम्भ हुआ था। ब्राह्मण और बौद्धों के लेखों में विभिन्न प्रकार की औषधी और ऑपरेशन के बारें में जानकारी मिलती है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता चिकित्सा को लेकर लिखी गई दोनों पुस्तक विख्यात है। उस समय समाज में चिकित्सा का महत्त्व इतना था कि चिकित्सा शास्त्र को उपवेद कहा जाता था। इसके अलावा दूसरा विषय भी पुस्तक में लिखा गया था।

प्राचीन भारतीय उपमहादेश के साहित्य का इतिहास ईसा के ३०० से ६५० ईसवी तक काफी महत्त्वपूर्ण था। गुप्त और गुप्त के परवर्ती युग में संस्कृत भाषा और साहित्य की काफी उन्नति हुई। लेकिन इस समय जो साहित्य लिखते और पढ़ते थे वे सभी धनी लोग ही थे। फलस्वरूप साधारण लोगों के जीवन का चित्र इन लेखों में विशेष रूप से नहीं पाया जाता था। सम्राट और राजाओं के दरबार में संस्कृत साहित्य की चर्चा होती थी। दो एक घटनाक्रम को छोड़कर इस पूरे समय काल में महिला साहित्य के बारें में जानकारी नहीं मिलती है।

कुछ बातें

पुराण

पुराण शब्द का अर्थ है पुराना। पुराण में बीते हुए दिनों की बातें रहती है। पुराणों की संख्या अठारह है। लगभग ईसा पूर्व के पंचम अथवा चतुर्थ शताब्दी के पहले कुछ पुराणों की रचना हुई थी। बाकी पुराणों की रचना ईसा के द्वितीय से लेकर सप्तम शताब्दी के मध्य हुआ था।

राजवंश का इतिहास पुराणों की एक प्रधान आलोचना का विषय था। इसके अलावा कृषि, पशुपालन, व्यापार, भूगोल, ज्योतिषी इत्यादि बातें भी पुराण में है। पुराणों के साथ कहीं-कहीं इतिहास शब्द भी जुड़ा हुआ है। प्राचीन भारत में पुराण और इतिहास में अंतर निर्दिष्ट नहीं था। फलस्वरूप पुराण एक ऐसी कहानी हैं, जिसमें कुछ-कुछ इतिहास का उपादान भी मिला हुआ है।

कुछ बातें

अश्वघोष और भास

साधारण तरीके से यह कहा जाता है कि अश्वघोष कनिष्क के समय के साहित्यकार थे। अपनी रचना और अपने बारें में स्वयं अश्वघोष ने कुछ भी नहीं कहा। केवल यह निश्चित तौर पर जानकारी मिलती है कि वे बौद्ध संयासी थे। उनकी प्रसिद्ध रचना बुद्धचरित काव्य है। गौतम बुद्ध के जीवन और व्यक्तित्व बुद्धचरित काव्य में लिखा गया। ईसा के दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी के भास नाटककार थे। उनके कुछ नाटक महाभारत और रामायण विषय को लेकर भी लिखा गया था।

मूर्ति, चित्र और स्थापत्य शिल्प विषय में भी संस्कृत की पुस्तक लिखी गयी थी। लेकिन कारीगरी शिल्प के ऊपर आलोचना किसी भी पुस्तक में देखने को नहीं मिला। गुप्त युग के नाटक, अभिधान और विज्ञान विषय के विभिन्न लेख-पत्रों के बारें में जानकारी मिलती है। कवि एवं नाटककार कालिदास इस समय के सबसे प्रसिद्ध साहित्यकार थे। शुद्रक, विशाखदत्त एवं भारवि इत्यादि प्रमुख इस पर्याय के प्रसिद्ध लेखक थे।

कुछ बातें

शुद्रक का मृच्छकटिकम

शुद्रक का मृच्छकटिकम प्राचीन संस्कृत साहित्य की एक प्रसिद्ध नाटक है। मृच्छकटिकम का अर्थ है, मिट्टी से बनी छोटी गाड़ी। मृत मतलब गाड़ी और शकटिका का मतलब छोटा शकट अथवा गाड़ी। यह दोनों मिलकर ही मृच्छकटिकम है। इस नाटक का प्रधान चरित्र चारूदत्त था। उसका पुत्र छोटू रोहसेन के पड़ोसी व्यापारी के पुत्र ने सोने से बनी खिलौना गाड़ी को देखा। इसी प्रकार की खिलौने गाड़ी को लेने की जिद रोहसेन ने किया। तब उस समय उसे शांत करने के लिए एक मिट्टी का गाड़ी दिया गया, लेकिन इससे भी रोहसेन की जिद और रोना बन्द नहीं हुआ। इस नाटक का दूसरा प्रधान चरित्र बसंत सेना है। रोहसेन को रोता हुआ देखकर उसे दु:ख हुआ। रोहसेन के खिलौने गाड़ी को बनाने के लिए बसंत सेना ने स्वयं के सोने के गहने को दे दिया। इस नाटक के चरित्र प्राय: साधारण लोग ही है। उनके जीवन का सुख-दुख ही नाटक में दिखाया गया है।

विशाखदत्त द्वारा लिखे गए नाटक मुद्राराक्षस और देवीचन्द्रगुप्तम दोनों काफी प्रसिद्ध है। नन्द राजा धननन्द को पराजित कर चन्द्रगुप्त मौर्य का सिंहासन को दखल करने की घटना ही मुद्राराक्षस नाटक की मूल विषय वस्तु है। गुप्त वंश के राजा रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के साथ शक राजा के युद्ध को लेकर ही देवीचन्द्रगुप्तम लिखा गया था। इससे यह समझा जाता है कि उस समय ऐतिहासिक घटना को लेकर भी साहित्य लिखा जाता था।

गुप्त युग में संस्कृत भाषा में गद्य लिखने की परम्परा का प्रचलन देखने को मिलता है। लेकिन वे सारे गद्य पालि भाषा में लिखी गई गद्य के जैसा सरल नहीं था। दण्डी द्वारा लिखा गया 'दशकुमार चरित' संस्कृत गद्य में लिखा गया एक प्रसिद्ध पुस्तक है। भर्तुहरि इस समय के प्रसिद्ध व्याकरणविद और साहित्यकार थे। अमरसिंह का संकलन किया हुआ अमरकोष इस काल का अभिधान था। सम्राट और राजा भी लेखनी को लेकर चर्चा करते थे। कहा जाता है कि हर्षवर्धन स्वयं तीन नाटक लिखे । वे है— नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका।

चिकित्सा विषय को लेकर पुस्तक लिखने की परम्परा गुप्त युग में आरम्भ हुआ। वागभट इस समय के प्रसिद्ध लेखक थे। पशु चिकित्सा को लेकर कुछ पुस्तक लिखी गई थी। गणित और ज्योतिष विज्ञान विषय के कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तक गुप्त युग में लिखा गया था।

ईसा के षष्ठ शताब्दी के लगभग तमिल क्षेत्र में आर्य का प्रभाव विशेष रूप से देखने को मिलता है। जिसके फलस्वरूप तमिल भाषा में भी संस्कृत की तरह लम्बी कविता लिखने की परम्परा शुरु हुई। इस लम्बी कविता को तमिल साहित्य का महाकाव्य कहा जाता था। ऐसा ही दो महाकाव्य शिलप्पादिकारम और मेनिमेखलाई था। तमिल कवि रामायण का अनुवाद किया। कम्बन रामायण का कहानी इस प्रसंग में कहा जाता है। लेकिन कम्बन अपने रामायण में कुछ नयी कहानी को जोड़े थे। वहाँ पर राम की अपेक्षा रावण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गए।

कुछ बातें
साहित्य की नीतिशिक्षा

सही-गलत पर विचार करने के लिए प्राचीन काल में एक प्रकार की पुस्तक लिखी जाती थी। उन पुस्तकों में मनुष्य और विभिन्न पशु-पक्षियों का चरित्र रहता था। उनकी बातचीत के जरिए ही कहानी बनती थी। विभिन्न घटनाओं में कैसा आचरण करना उचित है, वही कहानी की बातें होती थी। इसलिए इस प्रकार की कहानी पुस्तकों को नीतिशिक्षा का संकलन कहा जा सकता है।

संस्कृत भाषा में लिखी गई पंचतंत्र वैसी ही एक नीति परक कहानी का संकलन है। सम्भवत: ईसा के प्रथम और द्वितीय शताब्दी के लगभग इन कहानियों का संकलन किया गया था। पंचतंत्र की मूल रचना पायी नहीं गयी। कहा जाता है कि एक राजा अपने पुत्रों द्वारा डाँटने के पश्चात दु:ख मिला। उस समय पण्डित विष्णुशर्मा के पास पुत्रों को पढ़ने के लिए भेजा। विष्णु शर्मा विभिन्न नीति परक कहानी के जरिए छ: महीने राजा के पुत्र को शिक्षा दिए थे। वास्तव में कहानी छोटे बच्चों के लिए लिखा गया था। लेकिन उसके जरिए सबके लिए विभिन्न प्रकार का वक्तव्य था। पंचतंत्र जैसे विभिन्न कहानी संकलन में नीति शिक्षा दिया जाता था। जैन और बौद्ध साहित्य में भी इस प्रकार की नीति शिक्षा मूलक रचना का भी प्रचलन था। बैद्धजातक इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। तमिल साहित्य में भी नीति शिक्षा के बारें में जानकारी मिलती है।

कुछ बातें
कालिदास

प्राचीन भारतीय उपमहादेश के प्रसिद्ध साहित्यकार कालिदास थे। लेकिन वे किस समय काल के थे, उसको लेकर वितर्क है। पूरी तरह से यह कहा जाता है कि यह गुप्त युग के साहित्यकार थे। कालिदास के जीवन को लेकर अनेक प्रकार की कथा प्रचलित है। कालिदास काव्य और नाटक दोनों लिखते थे। मेघदूतम, कुमारसम्भवम उनकी द्वारा लिखी दो प्रसिद्ध काव्य है। अभिज्ञान शकुंतलम, मालविका-ग्निमित्रम इत्यादि उनका प्रसिद्ध नाटक है। उनकी रचना में उस काल समाज और प्रवृति के विभिन्न पहलू को देखने को मिलता है।

८.३ प्राचीन भारतीय उपमहादेश में विज्ञान चर्चा

विज्ञान का मतलब है किसी विशेष विषय के प्रति ज्ञान अर्जन करना। प्रयुक्ति का मतलब है— प्रयोग करना। विज्ञान में विभिन्न प्रकार के कुछ ज्ञान रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग करने की जरुरत है। जैसे :- घर बनाने के लिए ज्यामिती की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। इसलिए घर बनाने का कार्य प्रयुक्ति का एक भाग है। विज्ञान और प्रयुक्ति के साथ समाज का सम्बंध है। अलग-अलग समाज के लिए अलग-अलग विज्ञान और प्रयुक्ति की जरुरत पड़ती है। मान लीजिए, एक समाज का व्यक्ति धातु को अलग करना नहीं जानता है। इस समाज में धातु विज्ञान और धातु प्रयुक्ति की जरुरत नहीं पड़ती है। प्राचीन भारतीय उपमहादेश में हड़प्पा और वैदिक समाज में विज्ञान और प्रयुक्ति की चर्चा होती थी। यह सारी आलोचना पहले हुई। ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी के लगभग से आलोचना शुरु किया जा सकता है।

कुछ बातें

लक्ष्मण का शक्ति सेल

रामायण में एक कहानी है। रावण के साथ युद्ध में शक्ति सेल अस्त्र के आघात से लक्ष्मण अज्ञान (अचेत) हो गया था। विशल्यकरणी एक औषधि पेड़ है। औषधि को ढूंढने के लिए हनुमान गन्धमादन पर्वत पर गए। लेकिन विशल्यकरणी पेड़ को पहचान न पाने के कारण हनुमान पूरा पहाड़ ही उठाकर ले आया। विशल्यकरणी लगाने के फलस्वरूप लक्ष्मण स्वस्थ्य हो गए। विशल्यकरणी की बातों का मतलब है विशेष रूप से शल्यकरण के बाद (ऑपरेशन के बाद) जो औषधि लगायी जाती है। वास्तव में यह कहानी होने के बावजूद चिकित्सा प्रसंग जरुरी है।

प्राचीन भारतीय उपमहादेश में विज्ञान, प्रयुक्ति और कारीगरी के विभिन्न पहलू

- चिकित्सा विज्ञान और प्राणी विज्ञान
- गणित, ज्योतिष विज्ञान और ज्योतिष
- धातु विज्ञान और रसायन विज्ञान
- कृषि विज्ञान
- स्थापत्य विज्ञान और कारीगरी विज्ञान

परवर्ती वैदिक और बौद्ध साहित्य में विभिन्न औषधि और ऑपरेशन की बाते है। चरक साहित्य में प्राय: सात सौ औषधि पेड़-पौधो के बारें में जानकारी मिलती है। इस पुस्तक में रोग के विभिन्न पहलू को लेकर आलोचना की गई है। एक आदर्श अस्पाताल कैसा होना चाहिए, उसका विवरण भी चरक संहिता में मिलता है। हड्डी टूट जाने पर, अथवा नाक,कान इत्यादि कट जाने पर उसे जोड़ने एवं ठीक करने के कार्य में शल्य चिकित्सक काफी निपुण थे। इस विद्या में शुश्रुत काफी प्रसिद्ध थे।

कुछ बातें
जीवक

जीवक बुद्ध के समय काल के एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे। वे बिम्बिसार का राजबैध थे। उनका जन्म राजगृह में होने के बावजूद वे तक्षशिला जाकर गुरु आत्रय से शिक्षा प्राप्त किए थे।

शिक्षा पूरी होने के बाद गुरु ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि आस-पास के क्षेत्र से औषधि पेड़-पौधों को इकट्ठा करके लाओं। निर्दिष्ट समय के बाद जीवक को छोड़कर सभी नमूना को इकट्ठा करके वापस आ गए। कुछ देर बाद जीवक खाली हाथ ही लौटा, उसे देखकर गुरु आश्चर्यचकित हो गए। इसका कारण पूछने पर जीवक ने कहा, औषधी गुणहीन कोई भी पेड़-पौधा उसकी नजर में नहीं आया। इस उत्तर को सुनकर गुरु काफी प्रसन्न हुए। वे समझ गए कि औषधि उद्भिज अथवा औषधि के सम्बंध में जीवक की शिक्षा पूर्ण हुई। जीवक राजा बिम्बिसार और गौतम बुद्ध को कईबार कठिन रोग से मुक्ति दिलवाया था।

जाति-भेद की प्रथा कठोर होने के कारण चिकित्सा-विज्ञान की चर्चा में समस्या उत्पन्न हुई थी। कहा जाता था कि पूर्व जन्म में पुण्य करने पर ही बाद के जन्म में रोग से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार की बातें चिकित्सा विज्ञान की विरोधी थी। रोग को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार के खाद्यों के बारें में कहा गया, लेकिन वे सारे खाद्यों में अधिकांशत: धर्मशास्त्र जैसा ही खाने पर प्रतिबंध था। फलस्वरूप धर्मशास्त्र के साथ चिकित्सा विज्ञान का विभिन्न समय पर विरोध होता रहता था। शुश्रुत संहिता के चिकित्सा विज्ञान का महत्त्वपूर्ण भाग शववाल्वच्छेद अथवा मरे हुए को काटना। धर्मशास्त्र के मतानुसार शव अथवा मृत शरीर को छुना निषेध था। फलस्वरूप मरे हुए को काटना निषेध होने के कारण शरीरविद्या और शल्य चिकित्सा की चर्चा धीरे-धीरे कम होता गया। वागभट् के बाद से शल्यचिकित्सा के सम्बंध में वैसा उत्साह नहीं था। इसके अलावा चिकित्सक रोगियों में किसी प्रकार का भेद-भाव अर्थात कौन ब्राह्मण है या शुद्र है वे इसे नहीं मानते थे। फलस्वरूप प्रचलित वर्णाश्रम प्रथा के साथ चिकित्सा विद्या में विरोध तैयार हुआ।

???

सोचकर देखो

बौद्ध मतानुसार चरक प्रथम कनिष्क के समय के व्यक्ति थे। तो क्या चरक सहिता क्या किसी चरक नामक व्यक्ति द्वारा लिखा गया है? चरक शब्द का अर्थ है- जो घूमते रहते है। वेद की एक शाखा में चारण वैद्य अथवा घूमते रहने का कार्य चिकित्सकों का था. तो क्या चरक संहिता घूमते रहने वाले चिकित्सकों की अभिज्ञता (अनुभव) का संकलन हैं?

शुश्रुत किस काल के व्यक्ति थे उसकी निश्चित जानकारी नहीं मिलती हैं। शुश्रुत का अर्थ है- जो व्यक्ति अच्छी तरह से सुनते थे। तो क्या शुश्रुत संहिता भी क्या एक प्रकार से चारण बैध की अभिज्ञता का संकलन है?

प्राचीन भारत में ज्योतिष विज्ञान, गणित और ज्योतिषचर्चा काफी दिनों से एक साथ चल रहा था। जैन और बौद्ध भी गणित चर्चा करते थे। उनके धर्म ग्रंथ से इस विषय पर आलोचना मिलती हैं। अंक गणित, बीजगणित और ज्यामिती को मिलाकर बौद्ध ने गणित विज्ञान को बनाया। जैन उसे संख्यायन कहते थे। उस समय पढ़ाई-लिखाई में गणित का स्थान सबसे प्रमुख था। महावीर और गौतम बुद्ध दोनों ही गणित की चर्चा किए थे। ईसा के प्रथम शताब्दी में बौद्ध पण्डित नागार्जुन एक प्रसिद्ध गणितविद थे।

गुप्त युग में ज्योतिष विज्ञान और गणित में काफी उन्नति हुई थी। लेकिन गुप्त युग में ज्योतिष विज्ञान में अधिकांशतः ज्योतिषचर्चा के कार्य में प्रयोग होता था। आर्यभट्ट ने गणित को एक अलग चर्चा का विषय बनाया था। आर्यभटीय पुस्तक में गणित समय और ग्रह-नक्षत्र विषय को लेकर आर्यभट्ट ने आलोचना की है। उस पुस्तक में संख्या के हिसाब से शून्य का प्रयोग उन्होंने किया। उस चर्चा से ही दशमलव की धारणा का आरम्भ हुआ। आर्यभट्ट ने कहा था पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने के फलस्वरूप ही चन्द्रग्रहण होता है।

आर्यभट्ट के परवर्तीकाल में बराहमिहिर ज्योतिष विज्ञान के प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। सूर्य सिद्धान्त और पंच सिद्धान्तिका पुस्तक में बराहमिहिर ने पुरानी अवधारणा को काफी बदल दिया था। वर्षा का परिमाण और उसके आगामी लक्षण क्या-क्या है, उसे लेकर वे आलोचना किए। वही भूकम्प के पहले विभिन्न प्राकृतिक लक्षण विषयक आलोचना भी बराहमिहिर के लेखों में पाया जाता है। बराहमिहिर के परवर्ती समय में ब्रह्मगुप्त एक प्रसिद्ध गणितविद और ज्योतिषविज्ञानी थे। उसके हाथ में प्राचीन भारत में गणित सबसे ज्यादा विकसित हुआ है। ब्रह्मसिद्धान्त उनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है।

चित्र ८.१ :
मेहरौली का लोहा स्तम्भ

प्राचीन भारत में खनिज और धातु विज्ञान की भी काफी उन्नति हुई थी। विभिन्न धातु के अस्त्र-शस्त्र, मुद्रा, गहना और मूर्ति इसका प्रमाण है। धातु विज्ञान के उन्नति का उदाहरण मेहरौली के लोहे का स्तम्भ है। स्तम्भ में आज तक जंग (मुर्च्छा) नहीं लगा है। लेकिन धातु विज्ञान के सम्बंध में प्राचीन लेख पत्र विशेष रूप से नहीं मिला। धातु को गलाने का कार्य रसायन का ज्ञान छोड़ना सम्भव नहीं था। विभिन्न औषधि बनाने में

भी रसायन विज्ञान का प्रयोग होता था। साथ ही साथ सुगंधित द्रव्य और खाद्य बनाने में भी रसायन विज्ञान का प्रयोग होता था।

प्राचीन भारतीय समाज में कृषि ही अधिकांश लोगों की जीविकापार्जन का प्रधान साधन था। इसलिए कृषि कार्य और पेड़ पौधो को लेकर आलोचना विज्ञान चर्चा के अन्तर्गत आता था। कृषि विज्ञान को लेकर कृषि पराशर ग्रंथ में आलोचना किया गया था। कृषि के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी लेकर वैज्ञानिक आलोचना प्राचीन भारत में होता था।

ईंट, पत्थर और धातु का प्रयोग प्राचीन भारत में प्रयुक्ति और विज्ञान चर्चा के विभिन्न क्षेत्रों में देखा गया। उसके साथ ही विभिन्न प्रकार के यंत्र तैयार करने का कौशल भी था। उससे ही कारीगर विज्ञान की उन्नति स्पष्ट होती है। ऑपरेशन के आवश्यक यंत्र चिकित्सक स्वयं बनाते थे। दक्ष कारीगरों को विशेषकर कामार के ऊपर निर्भर करना पड़ता था। सुश्रुत संहिता में कहा गया कि दक्ष कामार के साथ चिकित्सक को आलोचना करना होगा। प्रयोजनीय यंत्र कैसा होगा, उसे कारीगर को समझा देना होगा। उसी के अनुसार कारीगर यंत्र तैयार कर देंगे। धातु और कीमती पत्थर पर विचार और परख करना भी विज्ञान का अंश समझा जाता था। खनिज और पत्थर विषय पर चर्चा भी विज्ञान के अन्तर्गत आता था। विभिन्न प्रकार का धातु मिलाना एवं अलग करने पर भी चर्चा होती थी।

सुश्रुत संहिता में कारीगरों एवं हाथ के कार्य की प्रशंसा की जाती थी। कहा जाता था कि हाथ ही प्रधान यंत्र है। लेकिन धर्मशास्त्र में कारीगरों के कार्य को छोटा दिखाया गया। जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे कारीगरी शिल्प चर्चा, विज्ञान चर्चा से अलग हो गया। लेकिन स्थापत्य बनाने का कारीगरी शिल्प भी नष्ट नहीं हुआ। धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिकांशत: स्थापत्य बनाया जाता था। फलस्वरूप वे मंदिर और मठ था। उत्तर और दक्षिण भारत में इसी प्रकार के स्थापत्य का निर्माण हुआ था।

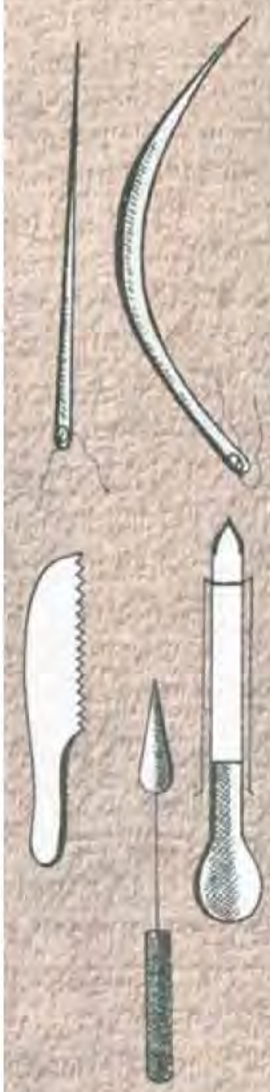

चित्र ८.२ : सुश्रुत संहिता के अनुसार शल्य चिकित्सा के कुछ यंत्र।

कुछ बातें
प्राचीन भारत की परिवेश चिन्ता

प्राचीन भारतीय उपमहादेश में परिवेश चिन्ता का प्रधान विषय वन, पैड़-पौधे और पशु-पक्षी था। वन से विभिन्न प्रकार की सम्पद मिलती थी। फलस्वरूप वनों के प्रति शासकों को विशेष ध्यान देना पड़ता था। अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के वन विषय पर आलोचना हुआ है। वनों का नुकसान करने पर दण्ड देने की बात भी कहा गया था। सम्राट अशोक कुछ पशु-पक्षियों को मारने पर पाबंदी लगाया था।

???

सोचकर देखो

प्राकृतिक परिवेश को नष्ट करने के लिए कौन उत्तरदायी है? आज परिवेश को बचाने के लिए आपलोग दल बनाकर क्या-क्या कर सकते हो उसकी तालिका बनाओं।

ईसा पूर्व के षष्ठ शताब्दी के लगभग कृषि कार्य और नगर बस्ती बढ़ते गया। फलस्वरूप जंगल की कटाई शुरु हुई। वैदिक साहित्य में देखा जाता है कि ग्राम जान-पहचान का क्षेत्र था, वही दूसरी ओर जंगल अपरिचित था। जंगल में रहने वाले मनुष्य अदभुत थे। इसलिए जंगलवासियों को हमेशा नीचा करके दिखाया गया है। महाकाव्य में बतलाया गया है कि राजपरिवार के अगर किसी सदस्य को मुसीबत में फसाने के लिए जंगल में भेजा जाता था। वनों के पशु-पक्षी के शिकार का अनेक उदाहरण लेखों में है। जंगल को जलाने की घटना का जिक्र वहाँ मिलता है। राक्षस भी वन में ही रहते थे। वे ऋषियों की रक्षा करते थे। नगर जितना विकसित होता गया उतना ही जंगल कम होते गया। इसलिए विभिन्न समय पर पेड़ को बचाने के लिए विभिन्न उपाय बनाए जाते थे।

रोजमर्रा के जीवन में कृषि और विभिन्न धार्मिक कार्य में जल भी था। इसलिए जल को पकड़कर रखना, जल सिंचाई और जलाशय बनाने का प्रयास किया जाता था। धनी व्यक्ति स्वयं जलाशय बनवा देते थे। लेकिन आज की तुलना में उस समय की जनसंख्या काफी कम थी। फलस्वरूप परिवेश का ऊपरी दबाव कम ही पड़ता था।

८.४ प्राचीन भारतीय उपमहादेश की शिल्प चर्चा

आदिमानव पहले गुफा में रहते थे। बाद में वे गुफाओं की दीवार पर चित्र बनाने लगे। जिससे दीवार देखने में सुन्दर लगता था। बाद में मनुष्य घर बनाना शुरु किया। आवश्यकतानुसार लकड़ी, पत्थर, मिट्टी एवं ईंट से विभिन्न प्रकार का भाष्कर्य भी एवं चित्र भी बनाया। इन सब को मिलाकर ही प्राचीन काल में शिल्प चर्चा होता था। उसके साथ प्रत्येक प्रकार के कारीगरी शिल्प का भी प्रचलन था।

प्राचीन समाज के स्थापत्य मूलत: दो प्रकार के कार्यो के लिए बनाया जाता था। धार्मिक आचरण-कार्यक्रम के लिए स्थापत्य बनाने की परम्परा थी। भाष्कर्य और दीवार पर बनाए गए चित्रों में धार्मिक विषय के विभिन्न पहलू देखने को मिला। इसके अलावा राजनैतिक और सामाजिक जरुरत के लिए भी स्थापत्य बनाया जाता था। विशाल इमारत को शासक की क्षमता को दिखाने के लिए बनवाया जाता था। घर, प्रासाद इत्यादि स्थापत्य व्यक्तिगत व्यवहार के लिए था। धार्मिक कारण से विभिन्न प्रकार के स्थापत्य सभी प्रकार के मनुष्य प्रयोग कर सकते थे। व्यापारी, व्यवसायी स्थापत्य के लिए अर्थदान करते थे। कभी-कभी तो साधारण लोग स्तूप अथवा मंदिर बनाने में भी सहायता करते थे।

मौर्य युग की शिल्प चर्चा

हड़प्पा सभ्यता के बाद भारतीय उपमहादेश में मौर्य युग में शिल्प का उदाहरण देखने को मिलता है। मौर्य युग के शिल्प में पत्थर का ज्यादा प्रयोग होता था। इस शिल्प का अधिकांश भाग निदर्शन, भाष्कर्य, स्थापत्य का उदाहरण काफी कम था।

अशोक और उसके परवर्ती मौर्य सम्राट आजीवकों के लिए गुफावास बनवा दिए थे। पहाड़ को काटकर कृत्रिम गुफा बनाया जाता था। उसी गुफा के भीतर लोग रहते थे, इसीलिए उसे गुफावास कहा जाता था। कहा जाता है कि सम्राट अशोक अनेक स्तूप बौद्धों के लिए बनवायें थे। पहले पहल तो स्तूप मिट्टी से बनता था। सम्राट अशोक के शासन काल में अनेक स्तूपों के ऊपर ईंट का प्रयोग आरम्भ हुआ। फलस्वरूप स्तूप काफी मजबूत एवं शक्तिशाली हो गया था। सम्राट अशोक के शासन काल में ही सारनाथ और साँची स्तूप को पुनः बनाया गया।

चित्र ८.२ : धमक स्तूप सारनाथ

स्तूप का विवर्तन : मौर्य से कुषाण युग

नीचे दिए गए स्तूपों पर विशेष ध्यान दो। उनमें क्या-क्या समानता और असमानता देखने को मिलता है, उसे लिखों।

मौर्य युग का स्तूप — इन्दो ग्रीक युग का स्तूप — कुषाण युग का स्तूप

चित्र ८.४ :
अशोक स्तम्भ, सारनाथ

मौर्य शिल्प का महत्त्वपूर्ण उदाहरण अशोक के शासनकाल में बनाया गया पत्थर का स्तम्भ है। स्तम्भ के ऊपर कभी-कभी लेख की खुदाई की जाती थी। एक पत्थर से स्तम्भ बनता था। अशोक स्तम्भ अधिकांशतः चॉक-खड़ी जैसा देखने में है। स्तम्भ की नींव (भीत) जमीन में गाड़ा रहता था। बिना किसी सहारे के ही स्तम्भ सीधा खड़ा रहता था। केवल मात्र एक ही पत्थर को काटकर ही बनाया जाता था, इसलिए स्तम्भों को मूलतः भाष्कर्य कहा जा सकता है। स्तम्भ के एकदम ऊपर एक प्राणी की मूर्ति बैठायी जाती थी। सिंह, हाथी, साँड़ इत्यादि प्राणी की मूर्ति इन क्षेत्रों में प्रयोग होता था। इस प्रकार के पत्थर का स्तम्भ मौर्य युग के पहले नहीं देखा गया। ऐसा ही एक प्रसिद्ध अशोक स्तम्भ सारनाथ में है।

चित्र ८.५ :
अशोक स्तम्भ, रामपुर्वा

मौर्य युग के शिल्प में मनुष्य की मूर्ति विशेष रूप से देखने को नहीं मिली। मौर्य शिल्प मूलतः शासकों के पृष्ठपोषकता में बना था। जन साधारण के जीवन-यापन के साथ मौर्य शिल्प का विशेष योगदान नहीं था। इसलिए मौर्य शिल्प की छाप परवर्ती समय के शिल्प में विशेष देखने को नहीं मिला।

सुंग-कुषाण-सतवाहन युग की शिल्प चर्चा

मौर्य के परवर्ती युग में भाष्कर्य बनाने का कार्य पत्थर के साथ-साथ जली हुई मिट्टी का व्यापक प्रयोग देखने को मिलता है। फलस्वरूप उस समय शिल्पचर्चा पूरी तरह से शासकों के अनुग्रह के ऊपर निर्भरशील नहीं था। सुंग, कुषाण और सतवाहन के समय साधारण जीवन का प्रभाव शिल्प के ऊपर पड़ा था। लेकिन धार्मिक ध्यान-सोच-विचार के साथ भी शिल्प का सम्पर्क था। इस समय धार्मिक स्थापत्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उदाहरण स्तूप, चैता और विहार था। प्रधानतः बौद्धधर्म के चर्चा के साथ ही यह स्थापत्य शिल्प जुड़ा हुआ है। लेकिन जैन धर्म में स्तूप बनाने का उदाहरण है। ब्राह्मण धर्म के स्थापत्य का उदाहरण इस युग में काफी सामान्य था।

सुंग-कुषाण युग के अधिकांश क्षेत्र में भाष्कर्य का विषय बुद्ध का जीवन और बौद्ध धर्म था। इस युग में शिल्पों का राजदरबार में प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को नहीं मिला। इसलिए प्रकृति एवं रोजमर्रा के जीवन के विभिन्न पहलू भाष्कर्य शिल्प बना था। तोरण के भाष्कर्य में अधिकांश समय एक ही प्रकार की कहानी कही गयी।

सुंग-कुषाण युग गन्धार और मथुरा की शिल्प-नीति का बहुत नाम था। बुद्ध का जीवन और बौद्ध-धर्म इन दोनों शिल्पकार का विषय था। गन्धार के भाष्कर्य प्रधानता गिर्फ और रोंमन का प्रभाव देखा जाता था। मथूरा रीति भाष्कर्य लाल चूना पत्थर का अधिक व्यवहार होता था।

चित्र ८.६ :
सुंग युग में जली हुई मिट्टी के भाष्कर्य, चन्द्रकेतुगढ़।

चित्र ८.७ :
भारहुतर का भाष्कर्य

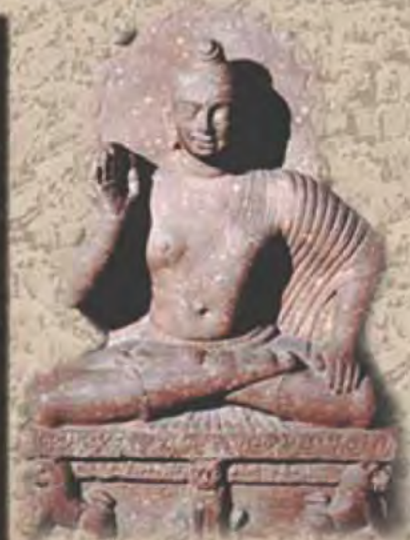

चित्र ८.८ :
गौतम बुद्ध मथुरा शैली

चित्र ८.९ :
अमरावती का भाष्कर्य

चित्र ८.१० : गौतम बुद्ध का घर छोड़कर चले जाने का दृश्य, गांधार भाष्कर्य

कुछ बातें
स्तूप–चैता–विहार

कहा जाता है कि गौतम बुद्ध अपने देहावशेष के ऊपर स्तूप बनाने का निर्देश दिए थे। अर्द्ध–गोलाकार मिट्टी का टीला ही मौर्य युग के आगे का स्तूप था। मौर्य युग के परवर्ती समय में स्तूप बनाने की संख्या काफी बढ़ गयी थी।

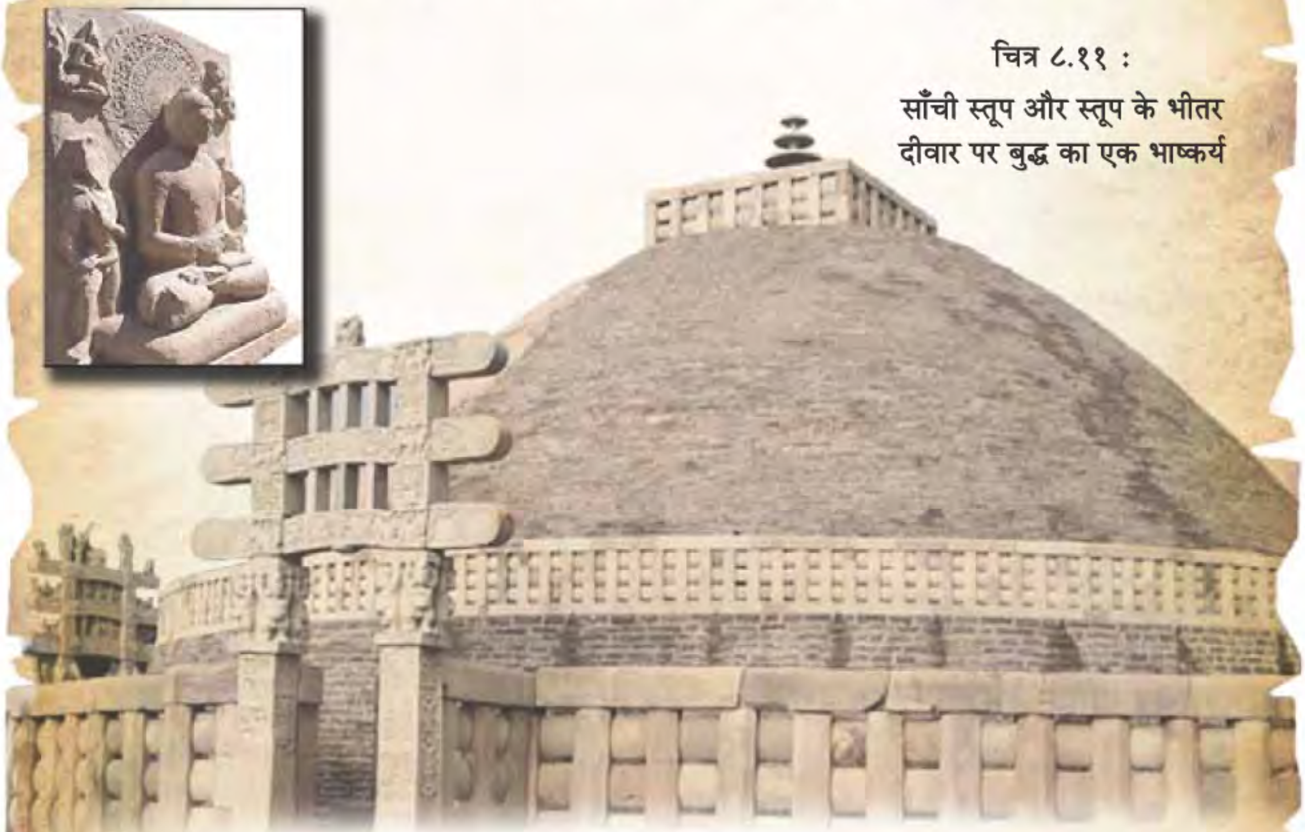

चित्र ८.११ : साँची स्तूप और स्तूप के भीतर दीवार पर बुद्ध का एक भाष्कर्य

स्तूप के चारों ओर बड़ा दरवाजा रहता था, उसे तोरण कहा जाता था। तोरणों पर भाष्कर्य की खुदाई किया जाता था। स्तूप के चारों तरफ घुम–घुम कर उपासना करने के लिए रास्ता भी रहता था। शासक और धनी व्यक्तियों के प्रयास से स्तूप बनाया जाता था। भारहुत, साँची और अमरावती स्तूपों में स्थापत्य के रूप में प्रसिद्ध था।

स्तूप के साथ–साथ **चैता** भी बनाया जाता था। प्रत्यक्ष तौर पर पहाड़ को काटकर गुफावास के रूप में ही अधिकांशत: चैता बनाया जाता था। चैता का आकार लम्बाई के आकार का होता था। चैता का शेष प्रांत में उपासना के लिए एक स्तूप रहता था। सतवाहन युग में नासिक, पितलखोरा, कार्ले इत्यादि क्षेत्र में चैता बनाया गया था।

बौद्ध विहार अथवा संघाराम स्थापत्य शिल्प का उदाहरण है। बौद्ध भिक्षुओं की रहने और पढ़ाई के लिए ही विहार बनाया जाता था। विहार वास्तव में कुछ गुफाओं का समष्टि था। परवर्ती काल में ईंट से विहार बनाया जाता था।

चित्र ८.१२ :
अजंता का चैता गुफा

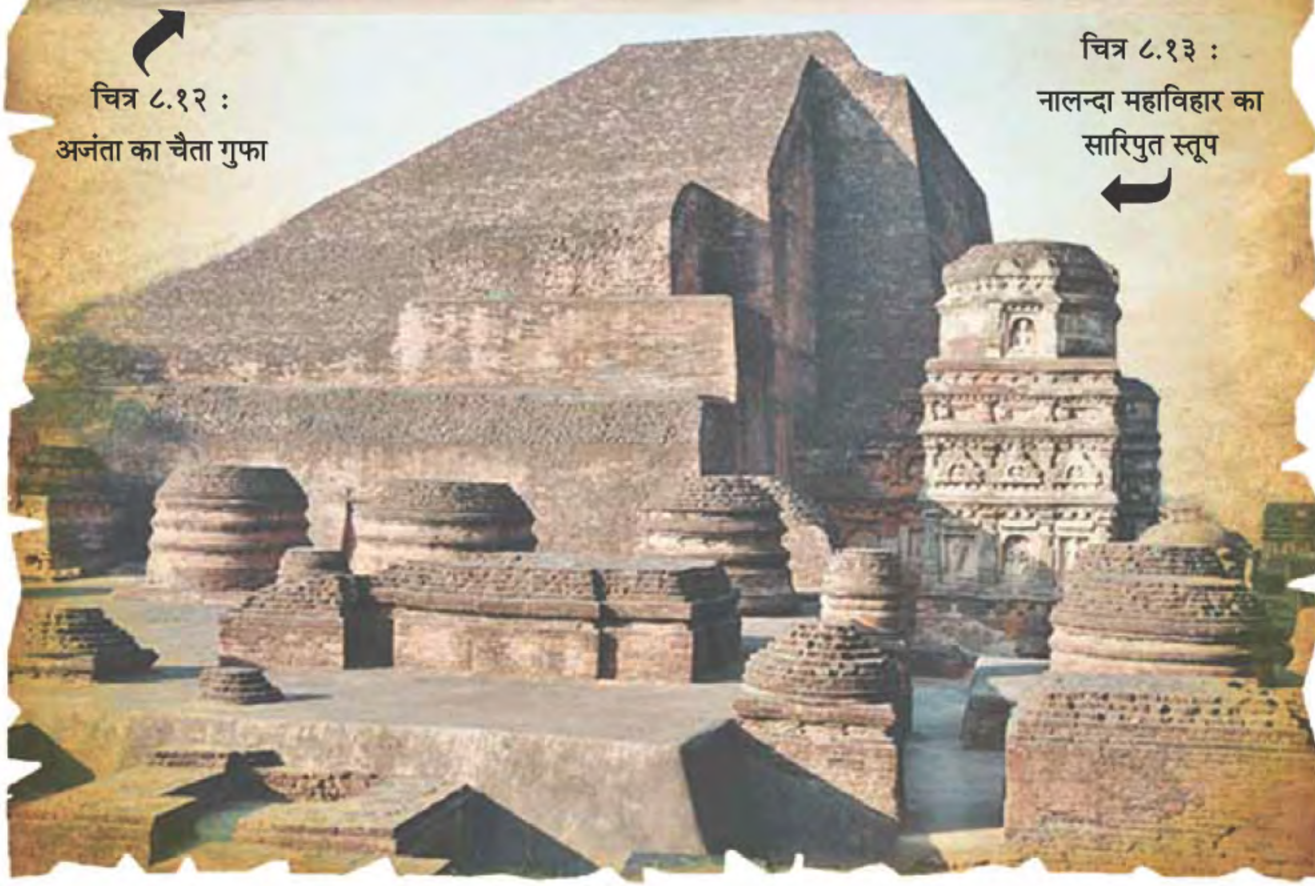

चित्र ८.१३ :
नालन्दा महाविहार का
सारिपुत स्तूप

गुप्त और पल्लव काल में शिल्प चर्चा

गुप्त काल में शिल्प चर्चा के साथ धार्मिक सोच-विचार का सम्बंध देखने को मिलता है। पत्थर के साथ-साथ जली हुई मिट्टी का प्रयोग इस समय भाष्कर्य में देखने को मिलता है।

स्तूप और चैता बनाना गुप्त काल में ही आरम्भ हो गया था। सारनाथ का धामेक स्तूप पहले ईंट से बनाया गया था। इस काल में उसके ऊपर पत्थर का आस्तरण दिया गया। गुप्त काल में प्रथम स्थापत्य के रूप में मंदिर बनाना आरम्भ हुआ। मंदिर कभी ईंट तो कभी पत्थर से बनाया जाता था। इस काल के मंदिरों में देवघर का दशावतार मंदिर प्रसिद्ध था। साथ ही साथ पहाड़ और पत्थर काटकर मंदिर बनाने का प्रचलन था। पल्लव के शासन काल में महाबलीपुरम पत्थर को काटकर रथ जैसा दिखने वाला मंदिर बना था। गुप्त काल में शिल्प के साथ धर्म का सम्बंध कापी स्पष्ट था।

गुप्त युग और पल्लव युग के मंदिरों के दीवारों पर विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्ति की खुदाई की गयी थी। जैसे कैलाश मंदिर में रामायण का पैनल, दशावतार मंदिर का भाष्कर्य। गुप्त युग में चित्र शिल्प का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण मध्य भारत की अजंता गुफा के चित्र है। विभिन्न पेड़-पौधे और मनुष्य का चित्र वहाँ पर है। विभिन्न प्रकार के चित्र अजंता की गुफा में देखने को मिलता है। चित्र को बनाने के लिए रंग विभिन्न पत्थर, मिट्टी और पेड़-पौधों के उपादान से बनाया जाता था। अजंता के अलावा एलोरा एवं बाघ गुफा में भी कुछ चित्र पाए गये है।

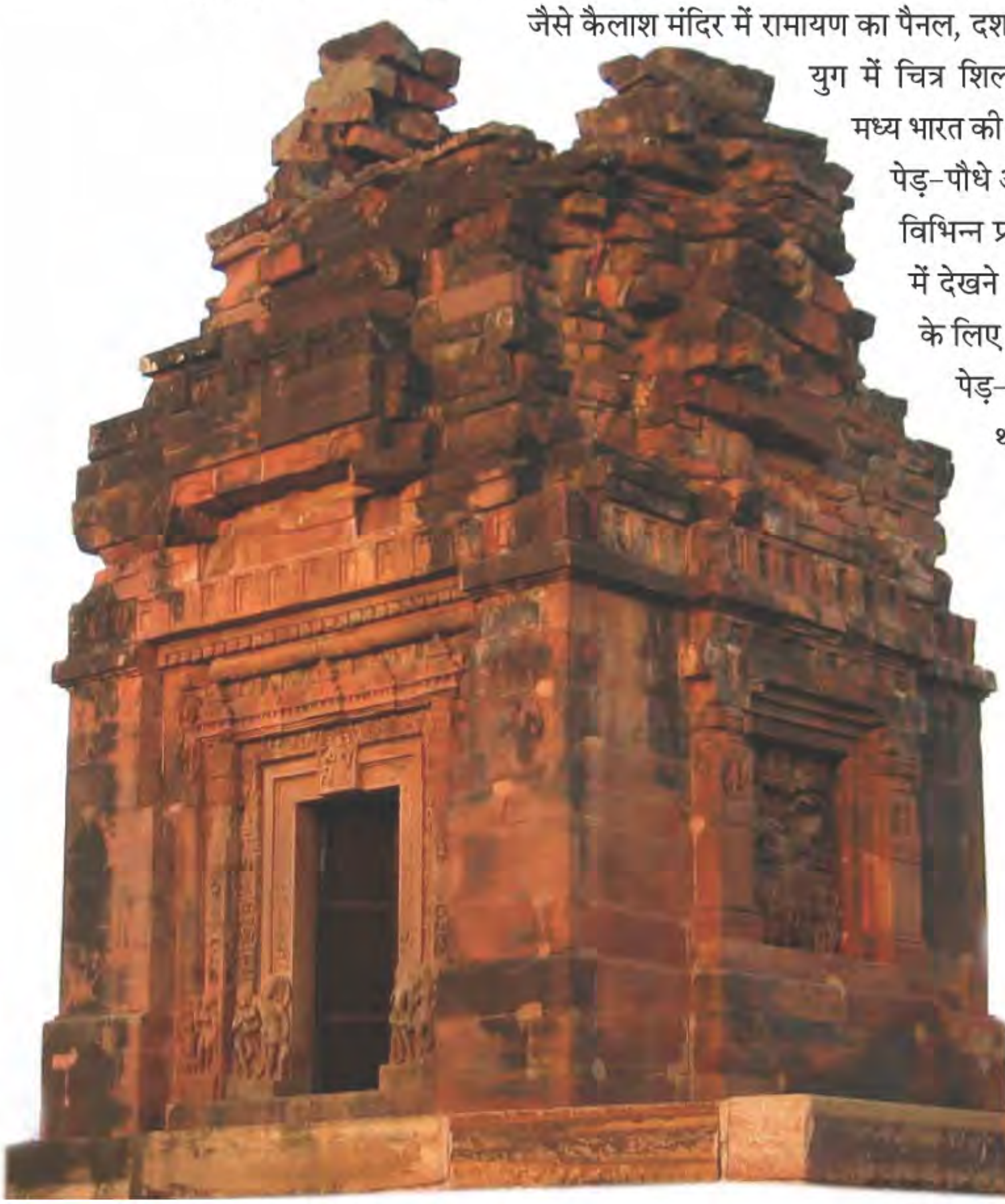

चित्र ८.१४ :
दशावतार मंदिर, देवघर

चित्र ८.१५ : बौद्ध भिक्षु, अजंता गुफा का चित्र

चित्र ८.१६ : एलोरा गुफा का चित्र

कुछ बातें

चन्द्रकेतुगढ़

पश्चिम बंगाल के उत्तर २४ परगना जिला के बेड़ाचापा में प्राचीन बंगाल के प्राचीन स्थल चन्द्रकेतुगढ़ का ध्वंशावशेष पाया गया। चन्द्रकेतुगढ़ विद्याघरी नदी के जरिए गंगा के साथ जुड़ा हुआ था। यह एक व्यापार का केन्द्र था। वही दूसरी ओर समृद्ध जनपद था। यहाँ पर मौर्य के समय के पहले से ही (अनुमानिक ईसा पूर्व ६००-७०० ईसा पूर्व ईसवी तक) पाल-सेन के समय तक (अनुमानिक ७५०-१२५० ईसा के बाद तक) का समय काल के विभिन्न पुरातत्व का निर्देशन पाया गया। जैसे विभिन्न प्रकार की मिट्टी के बर्तन सीलमोहर, मूर्ति इत्यादि। यहाँ पर टेराकोटा अथवा जली हुई मिट्टी से बनी मूर्ति पायी गयी। जिनमें नारी मूर्ति की संख्या ज्यादा है।

चित्र ८.१७ :
जली हुई मिट्टी का भाष्कर्य, चन्द्रकेतुगढ़

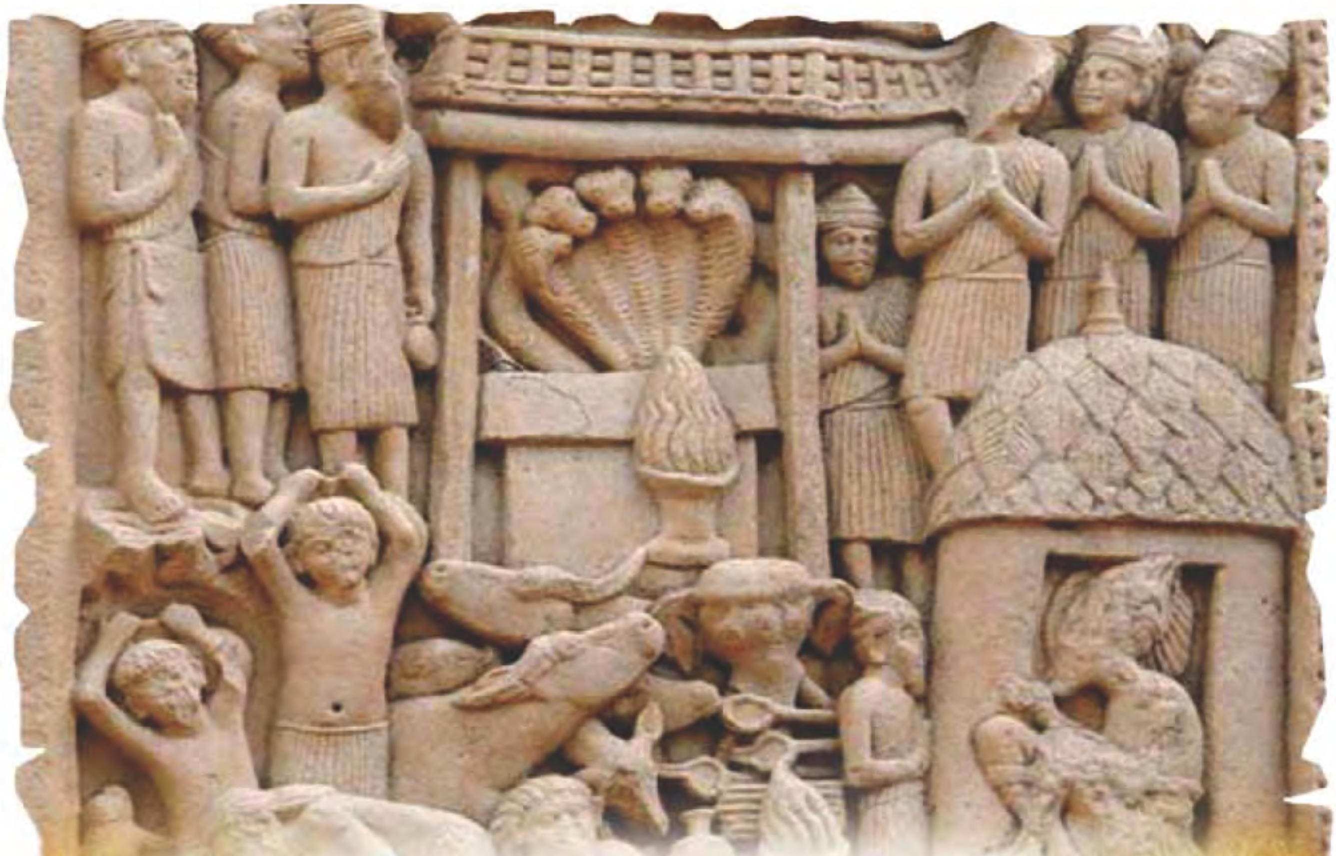

चित्र ८.१९ : सुंग युग का राजपरिवार टेराकोटा, बंगाल, ईसा के बाद प्रथम शताब्दी

चित्र १.१८ : और ८.२० : साँची स्तूप के बाँयी ओर तोरण के ऊपर भाष्कर्य

सोचकर देखो ढूढ़कर देखो

१। बेमेल शब्दों को ढूढ़कर निकालो :

१.१) नालन्दा, तक्षशिला, वलभी, पाटलिपुत्र।

१.२) ब्राह्मी, संस्कृत, खरोष्ट, देवनागरी।

१.३) रत्नावली, मृच्छकटिकम, अर्थशास्त्र, अभिज्ञान शकुनतलम।

२। नीचे दिए गए वाक्यों में कौन सही एवं गलत है उसे लिखो :

२.१) नालन्दा महाविहार में केवल ब्राह्मण छात्र ही पढ़ सकता था।

२.२) कम्ब के रामायण में राम को बड़ा दिखाया गया।

२.३) वागभट् एक चिकित्सक थे।

२.४) कुषाण के समय ही गांधार शिल्प का विकास हुआ था।

३। 'क' स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ को मिलाकर लिखो :

क-स्तम्भ	ख-स्तम्भ
महाबलीपुरम	कुषाण युग
गांधार शिल्प रीति	नागार्जुन
गणित विद	तामिल महाकाव्य
मनिमेखलाई	गुफा का चित्र
अजंता	रथ जैसा मंदिर

४। अपनी भाषा में सोचकर लिखो (तीन / चार लाईन) :

४.१) प्राचीन काल में बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के साथ आज की शिक्षा व्यवस्था के साथ समानता-असमानता को अपनी भाषा में लिखो।

४.२) चरक संहिता का आदर्श अस्पाताल कैसा होगा, वह कहा गया है। आपके अनुसार एक अच्छा अस्पाताल कैसा होना चाहिए?

४.३) विहार और स्तूप में क्या अंतर है, उसे लिखिए।

५। स्वयं करो :

मिट्टी / थर्मोकोल से चैता / विहार / स्तूप का मॉडल बनाओं।

१

भारत और समकालीन वहिर्विश्व

ईसा के बाद सप्तम शताब्दी के प्रथम भाग तक

रूबी के घर जाने में हमेशा सभी तैयार रहते थे। रूबी के दादाजी बहुत प्रकार की कहानी कहते हैं। मजे का खेल भी सीखाते हैं। कुछ दिनों से दादाजी उन्हें साथ में लेकर मजे का खेल, खेल रहे है। एक बड़ा पृथ्वी का मानचित्र फर्श पर बिछा दिया जाता था।

उसमें बहुत सारे स्थानों के नाम थे। उसमें नदी–पहाड़ सब कुछ था। अब सभी कुछ दलों में बट गए। इसके बाद एक दल दूसरे दल को एक नाम कहा। उस नाम को मानचित्र में ढूढ़ना पड़ता था। ढूढ़ने पर प्वाइंट मिलता था और नहीं ढूढ़ पाने पर प्वाइंट काटा जाता था। इस तरह से ही खेल चलता रहा। सभी मशगुल होकर खेल रहे थे और खेल के अंत में बहुत कुछ सीखा गया और खेल भी हुआ।

एक दिन खेल के बीच में सुरैया ने दादाजी से प्रश्न की। अच्छा दादाजी इस मानचित्र में इतना देश, क्या प्राचीन युग में था ? दादाजी ने कहा, पृथ्वी का मानचित्र बार–बार परिवर्तित हुआ है। जिन देशों को अभी मानचित्र में देख रही हो वह प्राचीन युग में नहीं था। यहाँ के अनेक देश और अंचल मिलकर उस युग की एक सभ्यता बनी थी। उन सभ्यताओं के मध्य सम्पर्क भी था। प्राचीन युग में भारतीय उपमहादेश के सभ्यता के बारें में तो जानती हो, इस पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न सभ्यता के बारें में कुछ जानने की जरूरत है। इन सभ्यताओं के साथ भारतीय उपमहादेश की सभ्यताओं का सम्पर्क विभिन्न प्रकार से हुआ।

दूसरे दिन इतिहास की कक्षा में पलाश ने शिक्षिका को दादाजी द्वारा कही गई बातों को कहा। शिक्षिका ने उसकी बात सुनकर कहा, हड़प्पा सभ्यता के साथ इस समय के दूसरे सभ्यता के साथ सम्पर्क की बाते आप पहले ही जान चुके हो। वह सम्पर्क परवर्ती समय में भी बरकरार था। लेकिन सम्पर्क का विभिन्न पहलू था। इसके बाद शिक्षिका ने ब्लैक बोर्ड पर एक तालिका का चित्र बनाई।

मानचित्र. ९.१ : प्राचीन विश्व की

प्राचीन मेसोपोटामियाँ का क्षेत्र और सुमेर बेबीलान इत्यादि सभ्यता

प्राचीन मिश्र का क्षेत्र और मिश्र की सभ्यता

प्राचीन पारस साम्राज्य

कुछ सभ्यता

प्राचीन चीन की सभ्यता

प्राचीन ग्रीक सभ्यता

प्राचीन रोम की सभ्यता

कुछ बातें

एक नजर में प्राचीन विश्व की विभिन्न सभ्यता

❒टाइग्रिस और यूफ्रेरिस नदी के मध्य भाग के क्षेत्र को ग्रीक मेसोपोटामियाँ कहता था। इस शब्द का अर्थ है दो नदियों का मध्यवर्ती देश। ❒ प्राचीन काल में इस क्षेत्र का एक भाग सुमेरीय सभ्यता का था। ❒ सुमेर की लिपि को अंग्रेजी में किउनिफर्म कहा जाता था। ❒ सुमेर के लोग गणित ज्योतिषविज्ञान और विभिन्न ज्ञान विज्ञान की चर्चा करते थे। ❒ सुमेर के लोग ही सबसे पहले लकड़ी के चक्के का प्रयोग करना आरम्भ किया। ❒ सुमेर के अलावा मेसोपोटामियाँ की एक प्रसिद्ध सभ्यता बेबीलॉन की सभ्यता है। बेबीलॉन के राजा हामूरावी सबसे पहले लिखित कानून आरभ्म किया था।

❍ उत्तर-पूर्व अफ्रीका के नील नदी के किनारे पहले से ही प्राचीन मिश्र की सभ्यता थी। ग्रीक ऐतिहासिक हेरोडोटस ने मिश्र को नील नदी का दान कहा था। ❍ मिश्र के शासक को फाराओ भी कहा जाता था। उनके मृत शरीर को रखने के लिए पिरामिड बनाया जाता था। ❍ मिश्र में पापिरस पेड़ के छाल पर लिखना शुरू हुआ। पापिरस से ही कागज के अंग्रेजी शब्द पेपर आया है। ❍ वर्ण और चित्र को मिलाकर मिश्र में एक प्रकार के लेख का प्रयोग होता था। उसे मिश्र की हायरोग्लीफ लिपि कहा जाता था। ❍ मिश्र का लापिस लाजुली पत्थर भारतीय उपमहादेश में निर्यात किया जाता था।

❒ एशिया महादेश के पूर्व में हांगहो और ईयांग-सिकिंयांग नदी की अववाहिका प्राचीन चीन की सभ्यता थी। ❒ प्रथम कागज बनाने एवं लकड़ी के अक्षर बनाकर छापे का कौशल चीन में ही आरम्भ हुआ। ❒ बाहरी आक्रमण रोकने के लिए चीन के शासक दीवार से चीन को घेरकर रखा था। उस विशाल दीवार को एक साथ चीन का प्राचीर कहा जाता है। ❒ चीन में बारूद का प्रयोग होता था।

❍ पहाड़ से घिरे ग्रीस में अनेक छोटे-छोटे राष्ट्र बने। उन सभी राष्ट्रों को नगर राष्ट्र अथवा पलिस कहा जाता था। पलिसों में एथेंस और स्पार्टा प्रसिद्ध था। उसके साथ पारसी साम्राज्य का युद्ध हुआ था। उस युद्ध की बात ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस के लेख में मिलता है। ❍ एथेंस और स्पार्टा आपस में भी युद्ध किए थे। ग्रीक इतिहासकार थुकीडाईडीस उस युद्ध की बातों को लिखा था। ❍ प्राचीन ग्रीक सभ्यता में विज्ञान, इतिहास, गणित और विभिन्न ज्ञान विज्ञान की चर्चा होती थी। पारसीक और दूसरी सभ्यता की छाप ग्रीक सभ्यता पर भी पड़ा था।

❒ पारस उपसागर के उत्तर में विशाल पारसिक साम्राज्य का गठन हुआ। साम्राज्य के साथ-साथ पारसिक संस्कृति भी विभिन्न क्षेत्रों में फैल गयी थी। ❒ कुरूष और प्रथम दरायबौष दोनों प्रसिद्ध पारसिक सम्राट थे।

❍ भू मध्य सागर के इटली घाटी को केन्द्र कर प्राचीन रोमन सभ्यता थी। धीरे-धीरे रोमन विशाल साम्राज्य को बनाया। ❍ ग्रीस और दूसरे सभ्यता का प्रभाव रोम की सभ्यता पर पड़ा। रोम में राजनीति, कानून, शिल्प-स्थापत्य इत्यादि विषयों की काफी उन्नति हुई थी। ❍ रोम के राजकर्मचारी के आदेश पर ही जेरूजालम में यीशु को ईसाई क्रुश से बांधा गया।

इन सभ्यताओं के साथ प्राचीन भारतीय उपमहादेश का राजनैतिक, अर्थनैतिक और सांस्कृतिक सम्पर्क था।

९.१ भारत और वहिर्विश्व के बीच सम्पर्क के साधन

प्राचीन भारतीय उपमहादेश के मानचित्र पर ध्यान दो। देखोगे कि उत्तर-पश्चिम की ओर कुछ गिरि पथ (पर्वत पथ) है। उत्तर-पश्चिम में इसी गिरि पथ के जरिए ही पश्चिम और मध्य एशिया के साथ उपमहादेश का सम्पर्क था। दूसरी ओर हिमालय पर्वत श्रेणी के गिरि पथ से चीन और तिब्बत के साथ सम्पर्क बरकरार था। विशेष करके उत्तर-पश्चिम गिरि पथ के जरिए ही विदेशी उपमहादेश में आए। इस रास्ते के जरिए ही व्यापार-वाणिज्य होता था। सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी होता था। इसके अलावा समुद्र पथ से भी राजनैतिक, अर्थनैतिक और सांस्कृतिक विनिमय होता था।

९.१.१ राजनैतिक सम्पर्क का माध्यम

भारतीय उपमहादेश में इन्दों-ईरानी का आगमन के बारें में पहले ही आलोचना हुआ है। भौगोलिक कारण से ही उत्तर-पश्चिम भाग के स्थल पथ से ही अधिकांशतः विदेशी भारतीय उपमहादेश में आए थे। इनमें से सबसे प्रमुख पारसियन थे।

भारतीय उपमहादेश और पारस का सम्पर्क

उपमहादेश के उत्तर-पश्चिम की ओर गांधार था। गांधार के जरिए ही पारसिक साम्राज्य के साथ उपमहादेश का सम्पर्क स्थापित हुआ था। ईसा पू० षष्ठ शताब्दी के द्वितीय भाग में पारस इखामनीषी शासक गांधार अभियान चलाया था। उनमें श्रेष्ठ सम्राट दरायबौष अथवा दरायुष प्रथम था। (ईसा० पू० ५२२-४८६ तक) उनका शासन गांधार के अलावा उपमहादेश के कुछ भागों में फैल गया था। उनके एक लेख में 'हिदुष' शब्द का वर्णन मिलता है। सिन्धु नदी से ही यह शब्द बना था। ऐसा लगता है कि निम्न सिंधु इलाका दयारबौष के शासन के अन्तर्गत था।

ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस के लेख से जानकारी मिलती है कि इन्दूस अथवा इण्डिया पारसिक साम्राज्य का एक प्रदेश अथवा साट्रॉपी था। दरायबौष निम्न सिंधु इलाको में सम्पर्क व्यवस्था के ऊपर शासन कायम करने के लिए ही इस क्षेत्र पर जीत हासिल किए। उत्तर-पश्चिम भारत और उपमहादेश के उत्तर-पश्चिम भाग में पारसिक साम्राज्य के साथ काफी दिनों से जुड़े हुए थे।

चित्र ९.१ :
नक्स-इ-रूस्तम का चित्र। यहाँ पर पारसिक सम्राट दरायबौष प्रथम की समाधि।

पारसिक शासक दरायबौष तृतीय (ईसा० पू० ३३६-३३० तक) के शासन काल में अलेकजेण्डर पारस अभियान किया, जिसमें पारसिक हार गए। फलस्वरूप इखामनीषी का साम्राज्य नष्ट हो गया। गांधार और निम्न सिंधु क्षेत्र में पारसिक का कोई अधिकार नहीं रह गया।

चित्र ९.२ : पार्सिपोलीस नगर का ध्वंशावशेष

उपमहादेश के कुछ भाग में ही पारसिक का शासन था। लेकिन भारतीय उपमहादेश की राजनीति और संस्कृति में उसके विभिन्न प्रकार के प्रभाव को देखा जाता है। इखामनीषी प्रादेशिक शासक के रूप में साट्रपदों पर नियुक्ति करते थे। परवर्ती समय में शक और कुषाण शासक भी साट्राप व्यवस्था को बरकरार रखा। उसके समय साट्राप क्षत्रीय हो गए थे। इसके अलावा शासक प्रत्यक्ष अपनी प्रजा के सामने सरकारी आदेश-निर्देश का प्रचार लेख के माध्यम से करते थे। बाद में मौर्य सम्राट अशोक प्राय: इसी तरह से साम्राज्य के बारे में लेख के माध्यम से व्यक्त करते थे।

भारतीय उपमहादेश और ग्रीस का सम्पर्क

ग्रीक शासक अलेकजेण्डर पूरी दूनिया में एक विशाल साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए पारसिकों के साथ उनका युद्ध हुआ। पारसिक को पराजित कर अलेकजेण्डर भारतीय उपमहादेश पहुँचा। उपमहादेश में पारसिक का साम्राज्य अलेकजेण्डर के अभियान के कारण समाप्त हो गया। इस विषय पर पहले ही आलोचना हुई है। अलेकजेण्डर अधिक दिनों तक उपमहादेश में नहीं था। फलस्वरूप इस अभियान का गंभीर प्रभाव भारतीय उपमहादेश में ज्यादा नहीं पड़ा। अलेकजेण्डर के अभियान के विरूद्ध कुछ शासक लड़ाई किए थे और कुछ शासक उनकी मदद भी की। तक्षशिला का राजा आम्भीक उसकी मदद की थी। लेकिन अलेकजेण्डर के अभियान के फलस्वरूप छोटी-छोटी शक्तियाँ निश्चित हो गयी थी। जिसके कारण मगध को क्षमता विस्तार करना सहज हो गया।

चित्र ९.३ : अलेकजेण्डर की एक सोने की मुद्रा का दोनों ओर।

भारतीय उपमहादेश और मध्य एशिया के साथ सम्पर्क

मौर्य शासक के अंतिम समय में भारतीय उपमहादेश के इतिहास में कुछ बदलाव आया था। पश्चिम एशिया और मध्य एशिया के साथ उपमहादेश की राजनीति और शासन जुड़ रहा था। उपमहादेश के उत्तर और उत्तर-पश्चिम भाग में ग्रीक, शक-पल्लवों का शासन देखने को मिला। पुषमित्र सुंग के समय ही ग्रीक राजा कुछ क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाया था। इन ग्रीक राजाओं में अधिकांशत: वाक्ट्रीया का निवासी था। उपमहादेश का उत्तर-पश्चिम सीमांत ही वाल्हीक अथवा वाकट्रीया था। यह हिन्दुकश पर्वतमाला के उत्तर-पश्चिम अर्थात् अभी के आफगानिस्तान का उत्तर-पूर्व का क्षेत्र था।

वह वाकट्रीया ईसा०पू० के चौथी शताब्दी के अंत तक ग्रीक शासक सेल्यूकस के अधीन था। वाकट्रीया ग्रीक राजा को ही पुराण साहित्य में यवन कहा जाता था। उत्तर-पश्चिम सीमांत का क्षेत्र, गांधार, तक्षशिला तक वाकट्रीया ग्रीक शासन था। उपमहादेश में इस ग्रीक शासक को वाकट्रीय ग्रीक अथवा इन्दो-ग्रीक शासक कहा जाता था।

चित्र : ९.४ : ग्रीक शासक सेल्यूकस की मुद्रा।

कुछ बातें

मीनान्दार

इस समय इन्दो-ग्रीक राजाओं में सबसे अधिक मीनान्दार प्रसिद्ध थे। वाकट्रीया इलाका में उनका शासन था। प्राचीन गांधार और गान्धार क्षेत्र मीनान्दार का शासन था। वाकट्रीया का कुछ भाग और उत्तर-पश्चिम इलाका का सीमांत इलाका का कुछ भाग उसके अधीन था। बौद्ध साहित्य में वे मिलिन्द के नाम से परिचित था। बौद्ध भिक्षु नागसेन के प्रभाव से मीनान्दार बौद्ध धर्म को अपनाया। नागसेन को मीनान्दार ने कुछ प्रश्न किया था। उसी बातचीत से मिलिन्दपत्रहों अथवा मिलिन्द प्रश्न पुस्तक में है। इस पुस्तक से ही जानकारी मिलती है कि मीनान्दार की राजधानी साकल अथवा अभी पाकिस्तान का सियालकोट था। वे बौद्धधर्म को फैलाने का प्रयास किए।

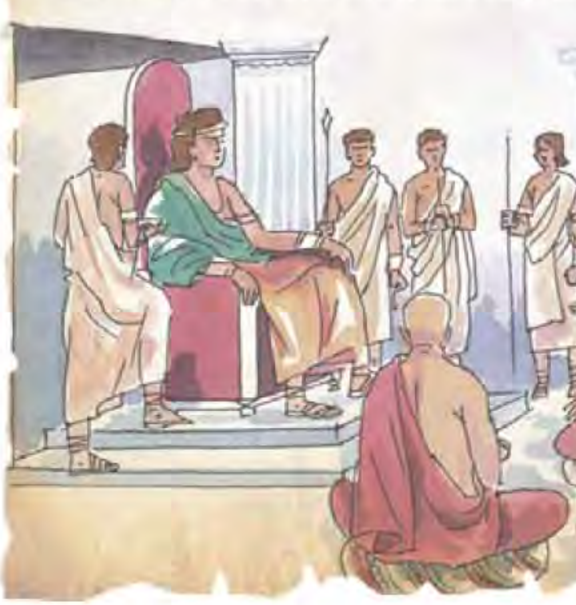

चित्र : ९.५ : ग्रीक शासक मीनान्दार की मुद्रा।

ईसा०पू० १३० वर्ष के लगभग मध्य एशिया में यायावर समूह के आक्रमण से वाक्ट्रीयार ग्रीक शासन समाप्त हुआ था। इस समूह के प्रधान स्काईथीयरा था। उपमहादेश में वे सेकवा शक के नाम से परिचित था और इयुर-झी अथवा कुषाण। मध्य एशिया के तृणभूमि से पश्चिम की ओर आगे बढ़ाकर वे वाकट्रीया पहुँचे थे। काश्मीर, सिंधु नदी के पश्चिम के किनारे का इलाका और तक्षशिला शको के दखल में था। वही दूसरी ओर ईसा०पू० के प्रथम शताब्दी के प्रथम में काबुल का इलाका पार्थीयदेरों के हाथों में चला गया। पार्थीयरा ईरान से उपमहादेश आया था। पार्थीयर उपमहादेश पलहव नाम से परिचित था।

शक शासन के लिए पल्हव शासक बाधा उत्पन्न करते थे। पल्हव राजा गन्डोफारनेस अनुमानिक २० अथवा २१ ईसा के बाद शासन शुरु किया। सम्भवतः शको को पराजित कर प्राचीन गांधार का एक भाग उन्होंने दखल किया। उत्तर-पश्चिम के क्षेत्र से लेकर पंजाब का कुछ भाग एवं पूरा सिंधु घाटी गन्डोफारनेस के अधीन था। फलस्वरूप विशाल क्षेत्र के शासक के रूप में वे स्वयं मुद्रा में राजाधिराज उपाधि का प्रयोग करते थे। उसके शासन में सेन्ट थामस ईसाई धर्म के प्रचार के लिए उपमहादेश आए थे। कुषाण शासन शुरू होने के फलस्वरूप शक और पल्लवों की क्षमता कम हो गया। मूलतः पश्चिम भारत और दक्षिणात्य उत्तर-पश्चिम भाग तक शक शासन टीका हुआ था।

उपमहादेश और बाहर की दुनिया के मध्य सम्पर्क का एक माध्यम दूत विनिमय भी था। मूलतः मौर्य सम्राट के समय से ही दूत विनिमय आरम्भ हुआ था। वे दूत अधिकांशतः अपनी अभिज्ञता लिखकर रखे थे।

ग्रीक शासक सेल्यूकस का दूत मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा में गया था। इसी समय सेल्यूकस का दूत बनकर मौर्य के दरबार में डायामकास गया था। मिश्र का शासक टलेमी डायोनिसियास को दूत के रूप में मौर्य के पास भेजा था। मौर्य सम्राट भी अपने दूत को विदेशी शासकों की सभा में भेजते थे।

बिन्दुसार के साथ सीरिया का शासक एन्टीकास प्रथम का सम्पर्क था। बिन्दुसार ग्रीक राजा से कुछ वस्तु और एक पण्डित भी मांगे थे। सीरिया के शासक सभी वस्तुएं भेजने के बावजूद पण्डित नहीं भेजे। यह घटना वास्तव में कितना सच है इसपर प्रश्न चिह्न लगा है? लेकिन समझा जाता है कि पश्चिम एशिया ग्रीकों के संग मौर्य अच्छा सम्पर्क बरकरार रखने का प्रयास किया था?

सम्राट अशोक उपमहादेश के बाहर बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। सीरिया मिश्र, मासीडन, सिंहल इत्यादि जगहों पर अशोक दूत भेजे थे। राजगृह में पाये गए लेख से हर्षवर्द्धन के समय चीन के साथ दूत विनियम के विषय में जानकारी मिलती है।

कुछ बातें

हुण आक्रमण

अनुमानिक ४५८ ईसा० के बाद सम्भवत: उत्तर-पश्चिम की ओर जाकर हुण भारतीय उपमहादेश का अभियान किया था। उस समय स्कन्दगुप्त का शासन काल था। वे हुण अभियान को सफलता पूर्वक रोक पाने में सफल हुए थे। इसके बाद काफी दिनों तक हुण अभियान उपमहादेश में नहीं हुआ था। पंचम शताब्दी के अंत में और षष्ठ शताब्दी के प्रथम में हुण पुन: शक्तिशाली हुआ। उस समय उसके नेता तोरमान और मिहिरकुल थे। उपमहादेश के कुछ क्षेत्रों में तोरमान का शासन था। तोरमान का पुत्र मिहिरकुल (५२०-५३५ ईसा के बाद) क्षमतावान शासक था। हुण गुप्त शासन के लिए समस्या उत्पन्न कर रहा था। हुण शासन के फलस्वरूप उत्तर-पश्चिम भारत के साथ मध्य एशिया के स्थल-वाणिज्य में समस्या देखा गया।

याद रखो

शक शासक प्रथम अय एक साल आरम्भ किया था। वह साल विक्रमी के नाम से परिचित है कान्धार से उत्तर-पश्चिम के सीमांत क्षेत्र में प्रथम अय का अधिकार था। धीरे-धीरे शक शासन उत्तर भारत में एवं गंगा घाटी में फैल गया।

९.२.१ अर्थनैतिक सम्पर्क का माध्यम

ईसा० पू० के साँतवी से लेकर उपमहादेश के साथ बाहर के देशों से वाणिज्यिक सम्पर्क था। ईसा०पू० २०० से ईसा के बाद ३०० साल के मध्य ही वह वाणिज्यिक सम्पर्क सबसे अधिक बढ़ा था। दक्षिण एशिया के साथ मध्य और पश्चिम एशिया एवं भू-मध्य सागरीय अंचल में लेन-देन चलता था। जल मार्ग और स्थल मार्ग से यह सम्पर्क होता था। रोम साम्राज्य और भू-मध्य सागर के पूर्व की ओर चीन और भारत में विभिन्न वस्तुओं की मांग थी। इनमें सबसे अधिक चीनी रेशम का महत्त्व था। ताकलामकान की मरूभूमि को नजरअंदाज करके दोनों रास्तों से चीनी रेशम को ले जाया जाता था। यह दोनों रास्ता काशगढ़ में जाकर मिलता था। वहाँ से विभिन्न रास्तों का अतिक्रमण करके रेशम भू-मध्य सागर के पूर्व की ओर के इलाकों की ओर पहुँच जाता था। रेशम इस स्थल मार्ग का प्रधान वाणिज्य द्रव्य था। लेकिन इस समय रेशम मार्ग नामक कोई भी नाम नहीं था। कुछ समय के बाद अर्थात् ईसा के बाद उन्नीसवीं शताब्दी में इस मार्ग को रेशम पथ कहा जाता था। इस विशाल अंचल का कुछ भाग एक समय पार्थियों के कब्जे में था। बाद में कुषाण वाक्ट्रीया पर कब्जा किया। जिसके कारण रेशम पत्थर का एक शाखा दक्षिण एशिया के साथ जुड़ गया। रेशम वाणिज्य से कुषाण शासक काफी शुल्क की अदाएगी करते थे। इस व्यापार के साथ युक्त विभिन्न क्षेत्र के लोग उपमहादेश के उत्तर और उत्तर-पश्चिम प्रांत में इक्ट्ठा होते थे।

चित्र ९.६ :

इयुमेन के नजदीक गोवी मरूभूमि क्षेत्र में रेशम पत्थर का एक शुल्क केन्द्र।

कुछ बातें

पेरिप्लास और मौसुमी हवा

भारत महासागर, अरब सागर और पारस उपसागर को प्राचीन ग्रीक और रोमन भूगोल में इरिथ्रियान सागर कहा जाता था। उसी इरिथ्रियान सागर में यातायात और वाणिज्य विषय पर एक पुस्तक लिखा गया था। उसके नाम पर पेरिप्लास ऑफद इरिथ्रियान सी। पेरिप्लास का दो मतलब है। जलयान में घुमते रहना और जल मार्ग से यातायात का वर्णन करना। इस तरह से देखने पर पुस्तक का नाम हिन्दी के अनुसार इरिथ्रियान सागर भ्रमण। पुस्तक के लेखक के बारे में जानकारी नहीं मिली। पुस्तक ग्रीक भाषा में लिखा गया था। पुस्तक का लेखक एक ग्रीक, जो मिश्र में रहते थे।

पुस्तक को लेखक ने अपने अनुभव के आधार पर ही लिखा। इसलिए पुस्तक में इरिथ्रियान सागर का बन्दरगाह और व्यापार–वाणिज्य के विभिन्न विषयों के बारे में वर्णन है। व्यापारियों की सुविधा के लिए पुस्तक को लिखा गया था। ईसा के बाद के प्रथम शताब्दी के मध्य का समय इस पुस्तक में लिखा गया था, ऐसा प्रतीत होता है। इसके साथ विभिन्न क्षेत्रों के मनुष्य, समाज, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी विषय की भी विभिन्न बातें है। यह पुस्तक ईसा के बाद प्रथम शताब्दी के लगभग अर्थनीति, इतिहास जानना जरूरी साहित्यिक उपादान है। ईसा०पू० के प्रथम शताब्दी के अंत में दक्षिण–पश्चिम और उत्तर–पूर्व मौसुमी हवा के बारें में और अधिक धारणाएं निर्मित हुआ। इस हवा की सहायता से ही इरिथ्रियान सागर में यातायात और वाणिज्य सहज रूप से होता था।

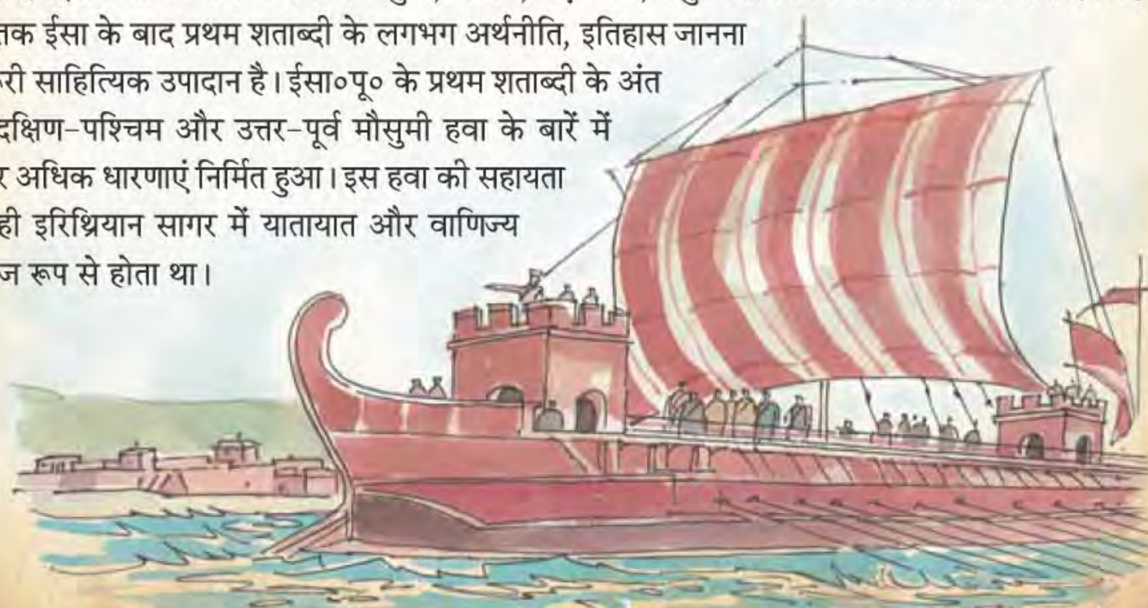

समुद्र में वाणिज्य भारतीय उपमहादेश के दोनों घाटी के बन्दरगाहों में महत्त्वपूर्ण था। पश्चिम बन्दरगाहों के साथ रोमन का व्यापार चलता था। पश्चिम घाटी का महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह नर्मदा नदी के मुहाने का भृगुकच्छ। अत्तर में कौंकण घाटी में कुछ बन्दरगाह भी था। उनमें से कल्याण बन्दरगाह प्रसिद्ध थे। शक शासक नहपान इस बन्दरगाह का अवरोध किया था। मालावार घाटी के बन्दरगाहों से गोलमरीच और दूसरों मसाले का भी वाणिज्य होता था। यहाँ के तमिलनाडु घाटी में कुछ सुन्दर बन्दरगाह था। कावेरी–द्वीप इलाको में प्रसिद्ध बन्दरगाह काबेरीपट्नम था। आंधघाटी के कुछ बन्दरगाहों में जानकारी मिली वहाँ पर सभ्यता जहाज बनाने एवं जहाज में बंदरगाहों वहाँ पर सम्भवत: जहाज छोड़ने लायक जगह थी। दक्षिण–पश्चिम एशिया के साथ सम्पर्क का क्षेत्र पूरा पूर्व घाटी का महत्त्व था।

कुछ बातें

बन्दरगाह-नगर : ताम्रलिप्त

प्राचीन भारतीय उपमहादेश में एक परिचित बन्दरगाह ताम्रलिप्त था। ताम्र लिप्ति दामलिप्त इत्यादि नाम से भी इस नगर का परिचय दिया जाता था। विदेशी लेखों के वर्णन में तामालितेस (ग्रीक) नाम भी पाया जाता है। ईसा के बाद सप्तम-अष्टम शताब्दी तक इस सामुद्रिक बन्दरगाह पर क्रिया-कलाप जारी था। सुयान जांग ने कहा था, ताम्रलिप्त समुद्र एक खाड़ी के ऊपर है। वहाँ पर स्थल मार्ग और जल मार्ग आकर मिला है। सम्भवत: वही वहाँ की पूर्व मेदिनीपुर तमलुक के आस-पास था। इस बन्दरगाह से फाहियान जहाज पर चढ़े थे। स्थल मार्ग से भी ताम्रलिप्त यातायात करना सहज था। व्यापार के अलावा ताम्रलिप्त मगर पढ़ाई-लिखाई के कारण भी विख्यात था। लेकिन नदियों के सुखने के कारण बन्दरगाह नगर का महत्त्व कम होता गया। नगर के रूप में भी उसकी ख्याति नष्ट हुई।

???

सोचकर देखो

इस पूरे पुस्तक में प्राचीन बंगाल के किन-किन क्षेत्रों का नाम है। उसकी एक तालिका बनाओ। यह क्षेत्र किन-किन कारणों से प्रसिद्ध था?

९.१.३ सांस्कृतिक सम्पर्क का माध्यम

उपमहादेश के साथ बाहर के विभिन्न क्षेत्रों के साथ एक और माध्यम सांस्कृतिक विनियम था। विभिन्न जाति-उपजाति से घुलने-मिलने के माध्यम से सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित होता था। जिसके परिणामस्वरूप उपमहादेश की संस्कृति में विभिन्न वैचित्र्य तैयार हुआ था। साथ ही साथ यह जाति-उपजाति में अधिकांशत: उपमहादेश के समाज और संस्कृति में घुल-मिल गया था।

पारसिक साम्राज्य के अधीन इलाकों में आरामीय भाषा और लिपि का प्रचलन था। उपमहादेश के उत्तर-पश्चिम के भाग में इस भाषा और लिपि का प्रयोग होता था। परवर्ती काल में सम्राट अशोक इस अंचल में आरामीय भाषा और लिपि का प्रयोग किए। इस आरामीय लिपि से ही सम्भवत: खरोष्ठी लिपि बना था। दोनों ही लिपि दाहिने ओर से बाँयी ओर लिखा जाता था। पारासिक शासक ऊँचे पत्थर का स्तम्भ बनाते थे। सम्भवत: उसका प्रभाव मौर्य शासक का ऊँचे पत्थर के स्तम्भ बनाने की भावना पर प्रभाव पड़ा था। अलेकजेण्डर पारसिक साम्राज्य पार्सिपोलिस नगरी को ध्वंश कर दिए। जिसके परिणाम स्वरूप पारसिक शिल्पी में अधिकांशत: उपमहादेश में चले आने के लिए बाध्य हुए। इन शिल्पी के हाथों से ही इन्दों पारमिक स्थापत्य शुल्क शुरू हुआ था।

अलेकजेण्डर भारतीय उपमहादेश में कुछ नगर बनवाया था। मौर्य साम्राज्य के समय भी वह नगर था। वे ग्रीक में रहते थे। धीरे-धीरे ग्रीक उपमहादेश की जीवन यात्रा और संस्कृति के साथ घुल-मिल गया।

वे बौद्ध धर्म की चर्चा भी करते थे। दूसरी और ग्रीक से नये प्रकार की मुद्रा तैयार करना उपमहादेश के लोग सीखे थे। इन्दों-ग्रीक उपमहादेश में सोने की मुद्रा चालू किए। विज्ञान विशेषकर गणित और ज्योतिष विज्ञान की चर्चा के क्षेत्र में भी ग्रीक और भारतीय सोच-विचार का विनिमय देखने को मिलता है। इसके अलावा ग्रीक प्रभावित शिल्प की चर्चा भी शुरू हुआ था। जिसका प्रमुख उदाहरण गांधार शिल्प है।

कुछ बातें

गांधार शिल्प

गांधार प्रदेश में विभिन्न कारणों से विभिन्न जातियों को घुलने-मिलने का अवसर था। इसी मेल-मिलाप के कारण इसका प्रभाव शिल्प पर भी पड़ा था। पहले बुद्ध की मूर्ति बनाना और पूजा करना निषिद्ध था। गांधार के शिल्पी नए प्रकार की बुद्ध मूर्ति तैयार की। नाक टिकालो, तने भौंहे और अधखुली आँखे मूर्तियों की विशेषता थी। मूर्ति के पैरों के जूते रोमन जूता जैसा देखने में लगता था। सोनाली रंग का प्रयोग मूर्ति में किया जाता था। सब मिलाकर गांधार शिल्प में ग्रीक और रोमन शिल्प का प्रभाव देखा जाता है। लेकिन गांधार मूर्ति के पीछे सोच-विचर भारतीय परम्परा की थी। साथ ही साथ इतनी और मध्य एशिया के शिल्प का प्रभाव गांधार शिल्प पर भी पड़ा था। गांधार क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति के कारण विभिन्न शिल्प का प्रभाव वहाँ पर घुल-मिल गया था।

चित्र ९.७: गौतम बुद्ध, गांधार शैली

शक शासक विभिन्न प्रकार की चाँदी मुद्रा का प्रचलन शुरू किया था। कुछ मुद्रा ग्रीक और प्राकृत दोनों ही लिपि में लिखा जाता था। शक शासक स्वयं की मुद्रा में राजाधिराज की उपाधि का प्रयोग करते थे। इस उपाधि को याद रखने की जरूरत है। राजाधिराज से ही यह उपाधि आई। शक शासक रूद्रदामन का जुनागढ़ प्रशस्ति संस्कृत भाषा में रचित पहला बड़ा लेख है। इसके पहले के सभी लेख प्राकृत भाषा में ही रचित है।

शक-पल्लव और कुषाण जीवन यापन के विभिन्न उपादान उपमहादेश के जीवन यापन का प्रभाव छोड़ा था और वे भी उपमहादेश में समाज-संस्कृति, धर्म से बहुत कुछ लिया था। युद्धरीति, पोशाक, घर-द्वार और संस्कृति इत्यादि सभी कुछ में वही विनियम का उदाहरण मिलता है।

शक-पल्लव युद्ध घोड़े के प्रयोग को काफी उन्नत किया था। पल्लव दौड़ते हुए घोड़े की पीठ पर बैठकर पीछे घुमकर तीर चलाने के तरीके को आरम्भ किया। उपमहादेश के घोड़े का लगाम और जीत का प्रयोग शक-पल्लवों ने आरम्भ किया। कुषाण भी घोड़े पर सवार होकर युद्ध करने में काफी माहिर थे।

शक-कुषाण उपमहादेश में विभिन्न प्रकार के पोशाक को चालू किए। जैसे :- कुर्ता, पैजामा, लम्बा जोब्बा, बेल्ट जूता इत्यादि। शक और कुषाण के शासन काल में नगरों की दीवार ईंट से बनाया जाता था। इसके अलावा एक प्रकार की लाल मिट्टी का बर्त्तन बनाने की पद्धति मध्य एशिया से उपमहादेश में आया।

मध्य एशिया से आए ये सारे शासक अधिकांशत: विष्णु के उपासक बन गए। कुछ ने बौद्ध धर्म को ग्रहण किया। कुषाण शिव, विष्णु और गौतम बुद्ध की उपासना किए थे। कुषाणों की मुद्रा में ग्रीक, रोमन और भारतीय विभिन्न देव-देवी मूर्ति की खुदाई की गयी थी। पहले गौतम बुद्ध का किसी भी प्रकार की मूर्ति पूजा नहीं होता था। बुद्ध के किसी प्रतीक और चिह्न को सामने रखकर पूजा की जाती थी।

उपमहादेश के नाटक चर्चा पर भी ग्रीक प्रभाव पड़ा था। नाटक का मंच बनाना पर्दा का प्रयोग इत्यादि क्षेत्र में वही प्रभाव दिखाई पड़ा। नाटक के पर्दा को संस्कृत में यवनिका कहा जाता था। ग्रीक ने ही पर्दा फेकने की प्रथा आरम्भ की थी। उनके यवन नाम से ही यवनिका शब्द तैयार हुआ था। साहित्य चर्चा के प्रति भी शासक काफी उत्साही थे।

धीरे-धीरे सारी विदेशी जाति-उपजाति उपमहादेश के समाज में घुल मिल गया। उनके क्षत्रिय अथवा योद्धा श्रेणी देखने में प्रतीत होता है। लेकिन ब्राह्मण के आँखों में नीची श्रेणी का क्षत्रिय था।

बौद्ध धर्म भारतीय उपमहादेश के साथ बाहर की दुनिया से सम्पर्क का एक और माध्यम था। अनेक पण्डित शिक्षक उपमहादेश से विभिन्न देशों में जाते, उन्हें शिक्षा देते थे। बौद्ध धर्म और शिक्षा चर्चा करने के लिए बाहर से भी विद्यार्थी आते थे। इन सभी देशों में से चीन देश में बौद्ध धर्म और शिक्षा की चर्चा सबसे जनप्रिय थी। ईसा के बाद चतुर्थ शताब्दी से ही चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ा।

भारतीय उपमहादेश के काश्मीर क्षेत्र में बौद्ध धर्म और शिक्षा पर चर्चा होती थी। काश्मीरी बौद्ध पण्डित वृद्धयश ऐसे ही एक व्यक्ति थे। पढ़ाई पूरी करने के बाद वे मध्य एशिया के काशगढ़ में चले गए। कुमार जीव के साथ उसका सम्पर्क था। पण्डित परमार्थ भी चीन पढ़ाई के सिलसिले में गया था। अनेक बौद्ध साहित्य को साथ में लेकर ५४६ ईसा० पू० में वे भी चीन पहुँचे। जीवन के अंतिम समय में वहाँ से ही बौद्ध धर्म और शिक्षा पर चर्चा कर रहे थे।

कुछ बातें

ज्योतिष विज्ञान चर्चा का विनियम

भारतीय, ग्रीक बेबीलॉन और रोमन पर ज्योतिष चर्चा का प्रभाव एक दूसरे पर डाला था। ज्योतिष विज्ञान की चर्चा का एक प्रसिद्ध पुस्तक यवनजातक था। पुस्तक वास्तव में ग्रीक भाषा में लिखा गया था। अनुमानिक १५० ईसा के बाद के लगभग उसे संस्कृत में अनुवाद किया गया। इसलिए उसके नाम में यवन शब्द का उल्लेख देखने को मिलता है। इससे ही ग्रीक और भारतीय विज्ञान में लेन-देन के बारें में समझा जाता है। बराह मिहिर का पंचासिद्धान्तिका पुस्तक में यह प्रभाव देखने को मिलता है। वहाँ पर बराहमिहिर ज्योतिष विज्ञान के विषय में पौलिश और रोमक सिद्धान्तों की आलोचना हुई। पौलिश सिद्धान्त ग्रीस और रोमक सिद्धान्त रोम से आया था।

कुछ बातें

कुमारजीव

चित्र ९.८ :
कुमारजीव की मूर्ति, किजिला गुफा, कूची प्रदेश, चीन

कुमारजीव के पिता बाबा कुमारायन कूची में चले गए थे। कूची के राजा उसे राजगुरू का पद दिए। कुमारजीव के जन्म के बाद उसकी माँ जीव बौद्ध हो गई। फलस्वरूप नौ वर्ष कुमारजीव (३४२ ईसा० पू० — ४१३ ईसा० पू०) माँ के साथ काश्मीर चले गए। वहाँ पर अपने मित्रों से बौद्ध धर्म और साहित्य विषय पर पढ़ाई की। पढ़ाई पूरी होने के बाद मध्य एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में कुमारजीव घूमे। इतने दिनों में वे पण्डित के रूप में भी काफी प्रसिद्ध हो गए। कुछ दिनों के बाद चीनी शासक ने कूची पर आक्रमण किया। कुमारजीव उस समय कूची में था। ३८५ ईसा०पू० में कुमारजीव को कूची से कान सु प्रदेश में ले जाया गया। चीन सम्राट के अनुरोध से ४०१ ईसा०पू० में वे चीन की राजधानी गए। परवर्ती ग्यारह वर्ष कुमारजीव चीन की राजधानी में ही था। बौद्ध धर्म विषयक पढ़ाई में ही उनका जीवन व्यतीत हुआ था संस्कृत और चीनी दोनो भाषाओं में कुमारजीव दक्ष थे। फलस्वरूप अनुवाद का कार्य वे सहज ही कर सकते थे। चीन में बौद्ध धर्म दर्शन प्रचार के क्षेत्र में कुमारजीव की भूमिका विख्यात है।

भारत से चीन में शिक्षकों को यातायात करने के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति और बौद्ध धर्म के विषय में चीन का उत्साह बढ़ा। उसी उत्साह के फलस्वरूप ही कुछ लोग भारत आने लगे। ये भारत में पढ़ाई किए थे। इसके अलावा विभिन्न बौद्ध धर्म केन्द्रों को घुमकर भी देखा था। ताऊ-नान नामक एक चीनी पण्डित बौद्ध सन्यासियों को भारत आने का उत्साह दिए थे। इसी को आधार पर फाहियान भारत आए। ३९९ईसा०पू० के बाद पाँच सन्यासी समेत फाहियान भारत पहुँचे। वे काश्मीर होते हुए भारतीय उपमहादेश में आए। बाद में उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों को घुमकर देखा। तीन साल तक पाटलिपुत्र से बौद्ध धर्म और संस्कृत, साहित्य चर्चा फाहियान ने किया। दो वर्ष तक वे ताम्रलिप्त में भी थे। अपना अनुभव फो-कूयो -कि पुस्तक में उन्होंने लिखा। देश लौटते समय भारत और सिंहल से अनेक बौद्ध मालाएं फाहियान ले गए।

फाहियान के बाद अनेक पण्डित चीन से उपमहादेश में पढ़ने के लिए आये थे। उनमें से अधिकांशत: नालन्दा महाविहार में पढ़ाई करते थे। बौद्ध धर्म और साहित्य के साथ-साथ ब्राह्मण धर्म विषय की भी चर्चा होती थी। इसके अलावा चिकित्सा विषयक शिक्षा वे लेते थे।

ईसा० के बाद सप्तम शताब्दी के प्रथम में ही चीन से सुयान जंग उपमहादेश में आए थे। ६३० ईसा० पू० के लगभग वे उपमहादेश पहुँचे। हर्षवर्द्धन उस समय कन्नौज पर शासन कर रहा था। परवर्ती चौदह वर्ष विभिन्न क्षेत्र सुयान जांग घुमते-फिरत रहे। नालन्दा महाविहार के पण्डित शीलभद्र के यहाँ वे पढ़ाई करते थे।

मानचित्र ९.२ :

फाहियान और सुयान जांग के भारतीय उपमहादेश का भ्रमण पथ

सोचकर लिखो ढूंढ़कर लिखो

१. **बेमेल शब्दों को ढूढ़कर निकालो :**

१.१ भृगुकच्छ, कल्याण, सोपारा, ताम्रलिप्त।

१.२ वृद्धयश, कुमारजीव, परमार्थ, सुयान जांग।

१.३ अलेकजेण्डर, सेल्यूकस, कनिष्क, मीनान्दार।

२. **'क' स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ को मिलकर लिखो :**

'क' स्तम्भ	'ख' स्तम्भ
नक्स-ई-रूस्तम	सीरिया
भृगुकच्छ	प्रथम दरायबौष
प्रथम आन्टिकस	नर्मदा नदी

३. **सठीक शब्दों का चुनाव करके रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :**

३.१ हेरोडोटस के अनुसार इन्दस पारसिक साम्राज्य का एक .... (प्रदेश / देश / जिला) था।

३.२ इन्दो-ग्रीक को कहा जाता .... (शकदेव / वाकट्रीया अधिवासी / कुषाण)

२.३ सेन्ट थामस ईसाई धर्म के प्रचार के लिए भारतीय उपमहादेश में .... (अलेकजेण्डर / मीनान्दार / गन्डोफारनेस) के शासन काल में आए।

४. **अपनी भाषा में सोचकर लिखो (तीन / चार लाईन) :**

४.१ अलेकजेण्डर द्वारा भारतीय उपमहादेश के अभियान के अन्तर्गत मौर्य साम्राज्य के विस्तार में क्या कोई प्रभाव पड़ा था ?

४.२ शक-कुषाण आने के पहले भारतीय उपमहादेश के समाज और संस्कृति के क्या-क्या विषय देखने को मिलता है।

४.३ प्राचीन भारतीय उपमहादेश के साथ दूसरे क्षेत्र के सम्पर्क के क्षेत्र में पढ़ाई की क्या-क्या भूमिका थी ?

५. **स्वयं करो :**

५.१ नौव अध्याय में मुद्रा के चित्रों के साथ षष्ठ अध्याय के मुद्रा के साथ क्या समानता और असमानता है उसे ढूढ़कर लिखो।

५.२ ९.२ मानचित्र को ध्यानपूर्वक देखो। फाहियान और सुयान जांग भारतीय उपमहादेश के किस-किस जगह पर गए थे। किस-किस स्थान पर दोनों लोग गए थे ? उसकी एक तालिका बनाओ।

आपका पन्ना

इतिहास पढ़ने का पहला अनुभव कैसा लगा ? कितना आनन्द, कितना मजा आया, पुराने दिनों की बातों को जानकर ? और क्या–क्या रहने पर और अधिक मजा और आनन्दपूर्वक इतिहास को जाना जाता। आपलोग उन सभी भावना को इस पन्नें में लिखकर रखो वर्ष के अंत में ....

सीखने की पद्धति

- पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद द्वारा अनुमोदित विद्यालयों में षष्ठ श्रेणी में अलग विषय के रूप में इतिहास की चर्चा शुरु होगी। उसी के अनुसार पढ़ने-पढ़ाने के लिए **'अतीत और परंपरा'** पुस्तक छात्र-छात्राओं एवं शिक्षक-शिक्षिकाओं के सामने प्रस्तुत किया गया है।
- विगत् २००५ साल में बने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (नेशनल करिकूलम फ्रेमवर्क २००५) के निर्देशानुसार इस पुस्तक के विषय को प्रस्तुत किया गया है। यथासम्भव सरल भाषा में, चित्र एवं मानचित्र के सहयोग से भारतीय उपमहादेश के प्राचीन युग के इतिहास (प्रागैतिहासिक युग से अनुमानत: ईसा के साँतवी शताब्दी के प्रथमार्द्ध तक) के विभिन्न पक्षों की इस पुस्तक में समीक्षा की गई हैं।
- इस पुस्तक को नौ अध्याय में विभाजित किया गया है। विद्यार्थी प्रथम से लेकर नवम अध्याय तक धारावाहिक तरीके से इस पुस्तक का अध्ययन करेंगे अथवा विषय के साथ सामंजस्य बरकरार रखकर दूसरे तरह से भी अध्यायों को सजा सकते है। पुस्तक में मूल उच्चारण की ओर दृष्टि रखते हुए विभिन्न स्थान और व्यक्ति का नाम एवं सिंधु नदी के पाँच नदियों का नाम का प्रयोग किया गया है। आवश्यकतानुसार छात्र-छात्राएं द्वारा परिचित दूसरे नामों को भी कहा जा सकता है। जैसे :-

  (क) इन्दास/ सिन्धु, झीलम/ वितस्ता, चिनाव/ चन्द्रभाग, सतलज/ शतद्रू/ रावी/ ईरावती, वियास/ विपाशा। (ख) मूल चीनी भाषा को बरकरार रखने के लिए निम्नलिखित नामों का प्रयोग किया गया। जैसे:- फाहियान/ फासियॉन, हिवेन सांग/ सुयान जांग। (ग) छात्र-छात्राओं को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसके लिए प्राक, ऋक इत्यादि शब्दों में हल्न्त (्) चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है।
- पुस्तक में भूल कथा विवरणों के साथ ८५ 'कुछ बातें' शीर्षक में अलग से विभिन्न तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसे जिज्ञासु विद्यार्थियों को विषय के प्रति आकृष्ट करने के उद्देश्य से रखा गया है। शिक्षक-शिक्षिकाएँ इनके सहयोग से विद्यार्थियों को विषयों के प्रति ध्यान आकृष्ट कर सकेंगे, उनकी कल्पना शक्ति को विकसित कर सकेंगे। फिर भी, निरंतर मूल्यांकन के लिए साधारणत: इसको छोड़ देना ही अच्छा है। इन हिस्सों से मूल्यांकन के लिए प्रश्न नहीं रखा जा सकेगा। कक्षा-कक्ष में कल्पनात्मक एवं तुलनात्मक समीक्षा करते समय इसका उपयोग किया जा सकता है। इनमें २१, ३९, ५२, ५६, ७४, ९२, १०८, ११२, १२१ एवं १४४ पृष्ठों की 'कुछ बातें' हिस्सों को बुनियाद के रूप में ग्रहण करना होगा।
- इस पुस्तक में जितने भी चित्र दिए गए है, उनमें से कोई भी विच्छिन्न नहीं है। चित्र को हमेशा विषय-वस्तु के साथ मिलाकर पढ़ना होगा, क्योंकि पुस्तक में दिए गए सारे चित्र पाठ्य विषय-वस्तु का ही अंग है।
- पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में मानचित्र का प्रयोग किया गया है। इससे एक-एक युग की राजनीतिक, अर्थनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति को समझने में आसानी होगी।
- इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अंग उसका साल-तारीख है। इसीलिए विद्यार्थियों को (प्रथम अध्याय) प्राथमिक लेकिन विस्तारित एवं सहज बोध की अवधारणा दी गई है। इस पुस्तक में विद्यार्थियों को नीरस रूप से साल-तारीख याद कराने के ऊपर जोर नहीं दिया गया है। राजा-बादशाहों के नामों की तालिका विद्यार्थी याद करेंगे, ऐसा भी कोई दावा हमारा नहीं है। साधारणत: शासकों के वंशो का विशद एवं धारावाहिक इतिहास के विवरण को यहाँ पर अलग रखा गया है। लेकिन कालक्रमानुसार इतिहास परिवर्तन

की एक अवधारणा विद्यार्थियों में उत्पन्न हो इसके लिए किसी एक कालपर्व की मूल बिन्दुओं को यहाँ पर चिन्हित किया गया है।

- कुछ पृष्ठों की एक ओर विद्यार्थियों के लिए स्थान रखा गया है। पाठ्य विषय के प्रति उनकी क्या सोच हैं वे स्वयं के सोच को वहाँ पर लिखेंगे। आशा करता हूँ कि शिक्षक-शिक्षिकाए प्रथम दिन ही कक्षा-कक्ष में इस विषय से विद्यार्थियों को अवगत कराएंगे।
- द्वितीय अध्याय में आदिमानव के विभिन्न प्रकार शीर्षक 'कुछ बातें' से मनुष्य के विवर्तन के चार मूल पर्व की बातों का उल्लेख है। लेकिन इन पर्वो के मध्य में और भी कई पर्व है। आग्रही विद्यार्थी आवश्यकतानुसार शिक्षक/ शिक्षिकाओं से उस पर्वो को अत्यधिक सहजता एवं सरलता से ज्ञात कर पाएंगे।
- आवश्यकतानुसार विद्यालय के किसी निर्दिष्ट स्थान/ श्रेणी कक्ष में इतिहास का मानचित्र, चार्ट और तालिका, मॉडल, चित्र संग्रह करके उन सबके बारें में आलोचना किया जा सकता हैं। सुविधा अनुसार विद्यार्थियों को विभिन्न सूत्रों के जरिए चित्र संग्रह/ विवरण प्रदर्शन करके छात्रों को उत्साहित किया जा सकता है।
- विद्यार्थियों के मन में स्थापत्य-भाष्कर्य-शिल्प के सम्बंध में उत्साह उत्पन्न करने के लिए स्थानीय ऐतिहासिक स्थान और प्राचीन स्थल एवं आवश्यकतानुसार संग्राहलय (म्यूजियम) इत्यादि स्थानों पर ले जाया जा सकता है।
- पुस्तक के विभिन्न अध्यायों के विषय को लेकर कक्षा में विद्यार्थियों के मध्य वाद-विवाद प्रतियोगिता, आलोचना सभा का आयोजन किया जा सकता है।
- पठन-पाठन का एक महत्त्वपूर्ण अंग वर्षभर सम्पूर्ण मूल्यांकन (CCE) के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार के कृताली और अभिनय तथ्य सृजनशील प्रश्नो का चयन करना है। अध्याय में 'सोचकर देखो' शीर्षक एवं अध्याय के अंत में 'सोचकर देखों', 'ढूंढकर देखो' के अन्तर्गत स्वयं करो शीर्षक से कृताली (Activities) श्रेणी कक्ष में प्रस्तुतिकालीन मूल्यांकन (Formative Evaluation) कार्य में प्रयोग करना होगा। प्रत्येक अध्याय के अंत में अध्याय हेतु 'खोजकर देखों', ढूढ़कर देखो' दिया गया है, जिससे शिक्षक/ शिक्षिकाएं स्वयं ही संभावित प्रश्नों को बना सकेंगे। यह अभ्यास सिर्फ इस कार्य की ओर निर्देश देती है। मानचित्र एवं चित्रों के माध्यम से भी विद्यार्थियों से प्रश्न पूछा जा सकता है। प्रथम अध्याय से कोई भी प्रश्न इसमें नहीं रखा गया है। मूल्यांकन करते समय इस अध्याय से कोई भी प्रश्न नहीं पूछा जा सकता है। विद्यार्थियों के पर्यवेक्षण क्षमता को कार्य में लगाकर वर्तमान सूत्र के आधार पर अतीत की किसी विषय के बारें में जानकारी प्राप्त किया जा सकता है।
- नीचे पर्यायक्रमिक मूल्यांकन का नमूना पाठ्य-सूची में दिया गया। आवश्यकतानुसार इस पाठ्य सूची में शिक्षक/शिक्षिकाएं निर्दिष्ट परिस्थिति के सापेक्ष में कुछ परिवर्तन कर सकते है। प्रत्येक पर्व के मध्य पाठ-विषय सीखन और सम्पूर्ण मूल्यांकन हेतु पर्वो (अध्याय) का विभाजन किया गया है। प्रथम पर्यायक्रमिक मूल्यांकन : प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्याय। द्वितीय पर्यायक्रमिक मूल्यांकन : चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम अध्याय। तृतीय पर्यायक्रमिक मूल्यांकन : अष्टम और नवन अध्याय। (इस क्षेत्र में पूर्व के पर्यायक्रमिक सीखन सामर्थ्य के परवर्ती सामर्थ्य मूल्यांकन का विचार करना होगा)। वि० सू : (१) प्रथम अध्याय से पर्यायक्रमिक मूल्यांकन के लिए किसी भी प्रकार का प्रश्न नहीं पूछा जा सकता है। (२) सप्तम अध्याय में सीखन-शिक्षण द्वितीय पर्यायक्रमिक मूल्यांकन के बीच किया जा सकता है। लेकिन इस अध्याय से प्रश्न तृतीय पर्यायक्रमिक मूल्यांकन के लिए करना होगा।